सोनगढ़-समीक्षा

प्रकाशक .

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा
ऐशबाग, लखनऊ 4.

लेखक :

नीरज जैन
शान्ति सदन, सतना, (म० प्र०) 485001

प्रथम संस्करण .

दस हजार प्रतियाँ
श्री महावीर जयन्ती वीर स० 2515
31-3-1988

मूल्य · पाँच रुपये मात्र (5-00)

मुद्रक :

प्रियका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रकाशन विभाग की स्थापना महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी ने मुझे प्रकाशनमंत्री बनाते हुए सन् 1982 मे की थी। पाँच वर्षों मे प्रकाशन विभाग पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है जिनमे स्कूली बच्चो के लिये पाठ्य क्रम की पुस्तको के अलावा परमपूज्य आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी द्वारा रचित 'नैतिक शिक्षाप्रद कहानिया' सात भाग, परमपूज्य आर्यिका विशुद्धमती माताजी द्वारा अनुवादित ग्रथराज 'तिलोय-पण्णत्ति' तीनो भाग एवं धर्मदिवाकर पडित सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर द्वारा रचित साहित्य तथा दो प्रकार के पूजा-पाठ सग्रह आदि प्रमुख हैं।

वर्तमान मे कतिपय एकान्तवादियो द्वारा जिनागम की मनमानी व्याख्याए और निर्ग्रन्थ गुरुओ की अवमानना का अभियान चलाया जा रहा है। कपोल-कल्पित तीर्थंकर सूर्यकीर्ति की मूर्तिया स्थापित की जा रही हैं। इन सब बातो का तर्क-पूर्ण विरोध करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् श्री नीरज जी ने 'सूर्यकीर्ति का सूरज डूब गया' शीर्षक से एक लेखमाला चलाई थी जो अट्ठाईस किस्तो मे जैनगजट मे प्रकाशित होती रही। अपने अथक परिश्रम से उन्होने इस विषय मे सारी वास्तविकताए समाज के सामने रखकर श्लाघनीय कार्य किया है। उसके लिए समाज उनका आभारी रहेगा।

इस लेखमाला की उपयोगिता को ध्यान मे रखते हुए महासभा ने उनका पुस्तकाकार सकलन प्रकाशित करने का सकल्प किया। लेखक ने हमारा अनुरोध स्वीकार करके लेखो को पुन सस्कारित किया और उनमे आवश्यक परिवर्द्धन किया। यह 'सोनगढ-समीक्षा' वही सकलन है। इसमे लेखक ने एकान्त-पोषक कानजी भक्तो की अनियन्त्रित महत्त्वाकाक्षाओ को तथा उनकी कथनी और करनी की विसगतियो को आक्षेप

रहित किन्तु तथ्य-पूरक भाषा मे विस्तारपूर्वक अंकित किया है। श्री कहानजी का तथा कथित अध्यात्मवाद आज भी कई जगह सामाजिक अशान्ति का कारण बना हुआ है। आशा है इस तटस्थ-विश्लेषण से ऐसे एकान्तवादियो को पुन विचार का अवसर मिलेगा और वे अनेकान्त को अपना सकेंगे।

इस पुस्तक का प्रकाशन आदरणीय श्री निर्मलकुमारजी सेठी द्वारा सचालित 'सेठी ट्रस्ट' की ओर से हुआ है, इसके लिए हम सेठी परिवार एव उनके ट्रस्ट के अत्यत आभारी है। उन्हे धन्यवाद देते है।

राजकुमार सेठी
प्रकाशन मंत्री :
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

सादर निवेदन

आप से—

दिगम्बर जैन समाज के इतिहास में अनेक ऐसे अवसर आये हैं जब किसी घटना को छोटी मानकर, सामाजिक एकता या शान्ति के नाम पर हमने बर्दाश्त कर लिया, परतु बाद मे अपनी उस तदा-कथित उदारता का या उस प्रमाद का बहुत अधिक मूल्य हमें चुकाना पडा। अपने अनेक तीर्थ और मदिर हमने अपनी इसी दिखाऊ सहिष्णुता और अकर्मण्य-उदासीनता के कारण अपने हाथो से खो दिये।

सोनगढ विचारधारा के रूप मे आज फिर एक ऐसी ही चुनौती हमारे सामने है। अनोखी, मनगढन्त और निपट एकात मान्यताओं का पोषक एक चौथा सम्प्रदाय वहा जन्म ले चुका है और बढ रहा है। इस मान्यता के अनुसार नया, विवक्षा-विहीन आगम रचा जा रहा है, नये कल्पित आराध्य गढे जा रहे हैं और नियोजित ढग से हमारे मुनिराजो की अव-मानना तथा मार्ग की अप्रभावना के उपाय किये जा रहे हैं। समाज मे जगह-जगह फूट और बिखराव के बीज बोये जा रहे हैं।

सोनगढ की ऐकातिकी प्ररूपणाओ के कारण प्रारभ से ही दिगम्बर जैन समाज मे जो विघटन हो रहा है उससे आप परिचित हैं। दुर्भाग्य है कि श्रीकहानजी के मरणोपरांत वहा से सीधे गृहीत मिथ्यात्व का बिगुल बजाकर हमारी आचार्य-प्ररूपित परपरा को लुप्त या भ्रष्ट करने का कुचक्र ही चल पडा है। मुनि-निंदा का अभियान चलाया जा रहा है और जिनवाणी तथा जिनेन्द्र के बारे मे अनेक विसगतिया उपजाकर जिनाय-तनो को अनायतन बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

हम सब जानते हैं कि तीर्थंकर प्रतिमाओ की स्थापना के बारे में आचार्यों ने जो विधि-विधान निर्धारित किये हैं उनमे दो प्रमुख बधन लगाये हैं—

1 स्थापना केवल प्रगट पर्याय या गत पर्याय की ही हो सकती है। अनागत या अप्रगट पर्याय की स्थापना नही की जा सकती। भावी तीर्थंकरो की पूजा तो हो सकती है परन्तु वेदी पर उनकी मूर्तिया नहीं

पधराई जा सकती ।

2. तीर्थंकरो की स्थापना उनके अपने क्षेत्र मे ही होती है। विदेह क्षेत्रों के तीर्थंकर भरत क्षेत्र मे या यहा के तीर्थंकर वहा स्थापित नहीं किये जाते । इसीलिए एकाध अपवाद को छोडकर, पच्चीस सौ वर्षो के इतिहास मे और पुराणकथाओ मे कही भी विदेह के सीमधर आदि भगवतो के मदिर या मूर्तिया बनाने की परपरा हमारे देश मे नही मिलती ।

श्रीकहानजी के जीव की सूर्यकीर्ति के रूप मे या धातकीखण्ड के भावी तीर्थंकर के रूप मे स्थापना और प्रतिष्ठा आगम मे इन दोनो नियमो का उल्लघन करती हैं और हमारी प्रचलित परम्परा के विरुद्ध हैं, इसलिये समस्त दिगम्बर जैन समाज ने और आगम के ज्ञाता विद्वानो ने उसे अमान्य करके हर स्तर पर उसका विरोध किया।

कुछ लोग अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए समाज को धोखा देकर या छल-छद करके, हठपूर्वक ये प्रतिष्ठायें करते रहे और करा रहे हैं । कुछ ने इसी बहाने अपने आप को सूर्यकीर्ति के साथ गणधर आदि के रूप मे समवसरण मे भी स्थापित कर लिया है । कुछ लोग प्रच्छन्न रूप से इस मिथ्या-अनुष्ठान को समर्थन देते रहे। इस तरह जैनो मे यह एक चौथा सम्प्रदाय पनपने लगा ।

इस षडयन्त्र को उजागर करने के लिए, समाज को वास्तविकता से अवगत कराने के लिए और आगम की मर्यादाओ को रेखाकित करने के लिए, मैंने एक लेखमाला प्रारम्भ की थी जो प्राय. एक वर्ष तक जैन-गजट मे छपती रही। अनेक मित्रो का आग्रह था अत उसी लम्बी लेखमाला का यह सवर्द्धित और सस्कारित रूप आज आपके हाथ मे है, उद्धरणो और सदर्भों के साथ।

समय की माग है कि दिगम्बर जैन समाज इन परिस्थितियो के प्रति सतर्क और सावधान होकर आगम की मर्यादा के अनुसार अपना दृष्टि-कोण निर्धारित करे, अन्यथा समाज मे भ्रम, बिखराव और वैमनस्य के ऐसे विष-वृक्ष पनपने की आशका है जिनके हानिकर फल हमारी आने वाली पीढियो को भी विषाक्त करते रहेगे । कभी-कभी छोटी-सी दिखने

वाली भूल के भी भयकर और दूरगामी परिणाम होते है। इतिहास इसकी गवाही देता है—

तवारीखो मे कुछ ऐसे भी मंजर हमने देखे हैं,
कि लम्हो ने खता की और सदियो ने सजा पाई।

—इतिहास मे ऐसे भी अवसर आये हैं जब
क्षणो की भूल के लिये
शताब्दियो को दण्ड भुगतना पडा है।

कही पुन. हमसे ऐसी कोई भूल न हो जाये इसके लिए पिछले चालीस वर्षों मे हमारे मनीषी, सत और दूरदर्शी विचारक विद्वान् लगातार हमे सावधान करते रहे हैं। उन्ही प्रयासो का एक सक्षिप्त-सा परिचय इन पृष्ठो मे कराने का प्रयास मैंने किया है। विचार और निर्णय तो स्वयं आपको ही करना है।

मेरा अनुरोध विद्वान् मित्रो से—

हमे वस्तु-स्वरूप का जो ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा अपनी बात को दूसरो तक पहुचाने मे समर्थ जो प्रभावक वाणी, या लेखनी हमे मिली है, उसके साथ एक बहुत बडी जिम्मेवारी भी हम पर आती है। वह यही कि हम सम्यक् ज्ञान के प्रसार-प्रचार मे ही सलग्न हो। जब कही कुछ भी मिथ्यात्व-प्रेरित, या आगम के प्रतिकूल घटित होता दिखे, तब वही और उसी समय पूरी शक्ति के साथ उसका विरोध करके समाज को आगाह करना हमारा कर्त्तव्य है।

धर्म और उसकी साधना के सदर्भ मे समाज को सही दिशा देना विद्वानो का दायित्व है। भय, आशा, स्नेह और लोभ के सारे प्रलोभनो को जीतकर माता जिनवाणी का सम्यक् कीर्तिगान हमारा कर्त्तव्य है। जिन्होने जिनवाणी के साथ छल किया, जीतेजी उनकी वाणी छिन गई और कुमरण के माध्यम से उन्हें दुर्गतिवास ही करना पडा। अनेक उदाहरण हमारे सामने है। अत किसी और के लिए नही, स्वय अपने कल्याण के लिए, आर्ष मार्ग पर अडिग बने रहना बहुत आवश्यक है। यह कोई उपदेश नही है, मात्र निवेदन है।

मुमुक्ष भाई-बहिनो से—

मुझे विश्वास है कि आत्म-कल्याण की ललक आपके मन मे है। मै यह

भी जानता हू कि कोई भौतिक प्रलोभन आपको खीचकर इस ओर नही लाया है। तभी तो परिग्रह की चकाचोंध और विषय-वासनाओ के बीच भी आप तत्व-ज्ञान का पुरुषार्थ करना चाह रहे है। जीवन के उत्कर्ष के लिए यह शुभ सकेत है। इस सकल्प का लाभ उठाना ही चाहिये।

यह मानुष-पर्याय, सुकुल और 'सुनिवौ जिनवानी', इन तीन का सयोग अति दुर्लभ कहा गया है। न जाने कितने भवो के सचित पुण्य के फल-स्वरूप हमे यह सुयोग मिला है। एक बार छूट जाने पर इसका पुन प्राप्त होना बहुत कठिन है। इसलिये बडा जरूरी है कि हम आगम पथ पर सावधान होकर चले। स्याद्वाद और अनेकान्त जैनागम के प्राण हैं। उनकी अवहेलना घोर पाप है। यदि किसी पूर्वाग्रह के कारण, या किसी भ्रम वश या मान कषाय के कारण हमारी मान्यता मे कही कोई भूल रह गई, तो आज उस मिथ्या धारणा के हामी चाहे जितने मिल जाये, उसका फल भोगते समय यह आत्मा अकेला ही होगा। अनादिकाल से यही हो रहा है।

मेरा अनुरोध है कि समता-पूर्वक इस पुस्तक को पढें। शान्तचित्त से इस पर विचार करे और अपने लिये स्वय, स्वतत्र बुद्धि से करणीय और अकरणीय का निर्णय करे। राजनीति की आँच पर, हठाग्रह की कडाही मे, सम्प्रदाय भावना से छोका हुआ किताबी ज्ञान, मच पर तालिया पिटवा सकता है परन्तु आत्म-कल्याण की मजिल तक पहुचाने मे वह अकिंचित्कर ही रहेगा, कार्यकारी नही होगा। वह आपको और आपके श्रोता-समुदाय को भी दिग्भ्रमित ही करेगा। जिसने अपने आग्रह छोडकर माता जिनवाणी की शरण गही है, कल्याण की प्राप्ति उसी ने की है।

इतना और कि इस आलेख की रचना से लेकर प्रकाशन तक अनेक मित्रो का सहयोग रहा है। प्रो. नरेन्द्र प्रकाशजी, श्री निर्मल कुमारजी सेठी और श्री निर्वाणचन्द्र जी उनमे प्रमुख हैं। उन सबका आभार मानना मेरा कर्त्तव्य हैं।

शान्ति-सदन, सतना शुभानुध्यायी,
श्री महावीर जयंती/88.

प्रस्तावना

प्रवुद्ध जैन पाठको मे कौन है, जो श्री नीरज जी के नाम से सुपरिचित न हो। समाज मे वे एक सिद्धहस्त लेखक, कवि वक्ता और पुरातत्वविद के रूप मे लोकप्रिय हैं। जैन पत्रो मे समय-समय पर प्रकाशित उनके खोजपूर्ण लेखो को वडे चाव से पढा जाता रहा है। 'गोमटेश गाथा' और 'महोत्सव दर्शन' जैसी उनकी वहुचर्चित कृतियो के भाषाशिल्प, शव्द-सयोजन और कल्पना कौशल ने हजारो पाठको का मन मोह लिया है। उनकी यह नवीन कृति आपके हाथ मे है। हमारा विश्वास है कि इसको भी उनकी पूर्व कृतियो के समान ही सवका भरपूर प्यार मिलेगा।

सोनगढ सौराष्ट्र प्रदेश के एक स्थान विशेष का नाम है, जो श्री कानजीस्वामी के अनोखे व्यक्तित्व के कारण सारे देश मे प्रसिद्ध हो गया है। नि सन्देह स्वामी जी इस सदी के एक प्रभावक पुरुष थे। उनका पुण्योदय वडा प्रवल था लेकिन उन्होंने उसका उपयोग इस तरह किया जिससे उनकी छवि एक मसीहा, अवतार या सिद्ध पुरुष के रूप मे उभर-कर समाज के सामने आ सके। उनकी इस अमर्यादित महत्त्वाकाक्षा ने अनेक धार्मिक विसगतियो और पाखण्डो को जन्म दिया। स्वय स्वामीजी ने और उनके वाद उनके अनुयायियो ने, उस पाखण्ड को धर्म के रूप मे भुनाने की निरन्तर सुनियोजित कोशिशें की, जिनकी वजह से वह अनोखा व्यक्तित्व सदा-सदा के लिये विवादास्पद बनकर रह गया।

स्वामीजी अपने को दिगम्वर जैन कहते थे किन्तु उनकी अनेक मान्यतायें दिगम्वर जैन धर्म के अनुकूल नही थी। शरीर की क्रिया को जड की क्रिया कहकर उन्होने प्रच्छन्न रूप से भोगवाद का समर्थन किया। उनके द्वारा सयम अथवा व्रत रूप व्यवहार चारित्र की अवाछनीय उपेक्षा की गई तथा स्वय को 'अव्रती' कहने और कहलवाने मे उन्होने सदैव गौरव का अनुभव किया। कभी-किसी अनुयायी को व्रत-धारण की प्रेरणा भी उन्होंने नही दी। एकान्त के साचे मे ढले उनके विचारो से असयम को-

पोषण और प्रोत्साहन मिलता रहा। पापभीरु धार्मिक समाज इस वैचारिक स्वेच्छाचारिता को कैसे बर्दाश्त करता। परिणामस्वरूप उनके जीवन-काल में ही उनके विरोध मे एक आधी-सी उठ खडी हुई। उस समय के प्राय' सभी मनीषियो/विचारको ने उनकी ऐकान्तिक प्ररूपणाओ का विरोध किया।

श्री कानजीस्वामी को इस युग के एक आध्यात्मिक प्रवक्ता के रूप मे चित्रित किया जाता है किन्तु उनका अध्यात्म केवल शब्दो तक ही सीमित रहा है, आचरण के स्तर पर कभी उमकी कोई झलक देखने को नहीं मिली। यह सिद्धान्त की वात है कि अध्यात्म की गगा जिन लोगो के शरीर मे ही अटककर रह जाती है, वे कभी उसके द्वारा आत्मा को प्रक्षालित नही कर पाते। वे इतने मुविधाभोगी हो जाते हैं कि जरा-सी असुविधा उनके चित्त को विचलित कर देती है। ऐसे लोग अध्यात्म के प्रयोगात्मक पक्ष, सयम-धारण से, हमेशा कतराते रहते है। स्वामीजी भी शब्दो के स्तर पर आत्मजीवी किन्तु आचरण के स्तर पर शरीरजीवी वने रहे। शब्दो के स्तर पर आत्मजीवी वने रहना भी उनकी एक विवशता थी, क्योंकि आत्मजीवी कहलाये विना कोई भी उन्हे सत्पुरुप, सद्गुरुदेव व सन्त-महात्मा मानने को तैयार नही होता।

आज देश मे उनके हजारो ऐसे भी अनुयायी हैं, जो स्वय उन्ही की भाति वात।नुकूलित कमरो मे, फोम के गद्दो पर वैठकर जिनवाणी का स्वाध्याय करते हुए, अपने को मुमुक्षु कहते हैं तथा दिन-रात वीतरागता का राग अलापते हुए भी सत्ता, सम्पत्ति और अधिकार की दौड मे किसी से पीछे नहीं हैं। उनका धर्म भी व्यापार का ही पर्याय वन कर रह गया है। वे सभी सराग चारित्र को सर्वथा हेय मानते हैं। किन्तु हमारी श्रमण संस्कृति तो त्याग प्रधान रही है। यहा का ममाज सदियो से सयम, सदाचार और साधुता का पुजारी रहा है। सयम-शून्य आत्मा की कोरी कयनी को उसने कभी महत्त्व नही दिया। सोनगढ-विचार-धारा के तीव्र विरोध के पीछे यह एक वडा कारण रहा है।

सोनगढ-खेमे की खामियो और खोटो पर वहुत-सा साहित्य अव तक प्रकाश मे आ चुका है। जैन धर्म और दर्शन के शीर्षस्थ विद्वानो ने स्वामी जी के सिद्धान्तविरुद्ध मन्तव्यो से असहमति व्यक्त करने के लिए अपनी

लेखनी उठाई और अकाट्य आगम-प्रमाणो के साथ उनके विचारो की कमियो और कमजोरियो को प्रकट किया। प्रश्न यह है कि उन सशक्त कृतियो के रहते हुए भी श्री नीरज जी के सामने एक नई लेखमाला लिखने की क्या आवश्यकता आ पडी। इसका उत्तर पाने के लिए श्रीकानजीस्वामी के जीवन-काल और उनके अवसान के वाद फैलाये गये ढकोसलो पर एक सरसरी दृष्टि डालनी होगी।

सोनगढ से स्वामीजी के वारे मे अनेक कपोल-कल्पित घोषणाए प्रचारित हुई। कहा गया कि वह पूर्व भव मे विदेहक्षेत्र मे राजकुमार की पर्याय मे थे तथा जव कुन्दकुन्दाचार्य भगवान् सीमन्धर के समवशरण मे पहुचे तव वह वहा उपस्थित थे। उस समय भगवान् की दिव्यध्वनि मे यह प्रसारित हुआ था कि वे भावी तीर्थंकर होगे। उनकी वर्तमान भक्त-मण्डली मे चम्पावेन अनन्यतम है। वह भी इस घटना की साक्षी के रूप मे वहा मौजूद थी। इस भव मे उन्हे जातिस्मरण-ज्ञान हुआ, जिसमे ये सव घटनाए झलकी हे। स्वामीजी ने भी सिद्ध-साधक वनकर अपने प्रवचनो मे चम्पावहिन की वातो की पुष्टि की। शेखचिल्लियो जैसी ये वेतुकी एव हास्यास्पद वाते सुन-सुनकर प्रवुद्ध वर्ग चिन्तित और क्षुब्ध होता रहा।

'वक्तु प्रमाणात् वचन प्रमाणम्' के अनुसार वचनो की प्रामाणिकता वक्ता की प्रामाणिकता पर निर्भर है। इस तरह की वेसिरपैर की वातो से सोनगढ के इस प्रवक्ता की प्रामाणिकता पर भी प्रश्नचिह्न लग गया। उनके अस्पताल मे कुमरण के वाद भावी तीर्थंकर के रूप मे उनकी मूर्ति-प्रतिष्ठा से तो धर्मप्राण समाज मे गहरा क्षोभ उत्पन्न हो गया। इस कुत्सित प्रयास के विरोध मे जो जोरदार आन्दोलन चला, वह सदी के जैन इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है।

स्वामीजी के अन्धभक्तो पर इस विरोध का कोई प्रभाव नही था। सोनगढ के ब्र० चन्दूलाल खीमचन्द झोवालिया ने इस प्रकरण मे कुछ गप्पे और जोड दी। उन्होने एक पत्रक मे लिखा है—"स्वामीजी मरकर अभी सनतकुमार देव हुए है। वहा से चलकर मनुष्य होकर वह मुनि वनेंगे। फिर अहमिन्द्र का भव धारण करेगे। इस प्रकार चौवीस सागर तक आनन्द भोगने के वाद वह सूर्यकीर्ति तीर्थंकर के रूप मे धातकीखण्ड द्वीप मे

कर देती है। उत्तर प्रदेश मुमुक्षु मण्डल आगरा के अध्यक्ष श्री पदमचन्द जैन और वम्बई के प० कान्तिलाल ईश्वरलाल शाह तथा महा समिति और महासभा के कर्णधारो के मध्य हुआ पत्र-व्यवहार पहली बार प्रकाश मे आया है। भविष्य मे भी वास्तविकता के आकलन मे उनसे बडी मदद मिलेगी। यह पुस्तक धर्म की प्रभावना मे सक्षम सिद्ध होगी, इसमे सन्देह नही। लेखक ने जहा-जहा कानजी-मत का खण्डन किया है, वहा-वहां उसका प्रयोजन स्व-मत (जिनमत) के उद्‌घाटन का ही मुख्यत रहा है।

अन्त मे हम यह कहकर अपनी लेखनी को विराम देते हैं कि जिस प्रकार नक्शे पर अकित किये हुये सुमुद्र पर कोई जहाज नही तैर सकता और न उसके पहाडो से टकरा कर वर्षा हो सकती है, उसी प्रकार सोनगढ के प्रवक्ताओ के छपे हुए ग्रथो और रटे हुए शब्दो की त्रिकाल-शुद्ध आत्मा से जीवन की आकुलता भी नही मिट सकती। निराकुलता का या सुख का मार्ग पाने के लिए, इन तथाकथित आत्मवादियो के मुखौटो के पीछे-छिपी असलियत को पहचानना ही होगा। इस पहिचान मे यह पुस्तक आपकी सहायक वनने की योग्यता रखती है। परिष्कृत भाषा, सुष्ठु वाक्य-विन्यास और साहित्यिक आभा इस कृति की अपनी विशेषता है। एक वार इसे पढिए तो सही।

फिरोजावाद
मार्च, 1988

नरेन्द्र प्रकाश जैन
सपादक—जैनगजट,

अनुक्रमणिका

आत्म-कथ्य

यह क्रिया नहीं . मात्र प्रक्रिया है

यह प्रश्न उठाना अनुचित नही होगा कि मुझे यह आलेख लिखने और प्रकाशित कराने की क्या आवश्यकता थी ? आपसे पहले मेरे मन मे भी यह प्रश्न कई बार उठा है। बारह साल पहले सोनगढ-यात्रा के सस्मरण लिपिबद्ध करने के अलावा, मन को मथने वाले कई अवसर आये तव भी, मैंने कभी सोनगढ या कहानपथ के वारे मे अपनी लेखनी नही चलाई। फिर अब यह लम्बी लेख माला क्यो ? सोनगढ विचारधारा से प्रभावित मेरे कहानपथी मित्रो को तो विशेष अधिकार है यह पूछने का कि उनके इतिहास की, और उनकी गतिविधियो की समीक्षा करने की मुझे क्या आवश्यकता थी, यह सब मैंने क्यो लिखा ?

ऐसे मित्रो के किसी भी प्रश्न का उत्तर देना बहुत आसान है। हजारो-हजार प्रश्नो का उत्तर एक ही वाक्य में दिया जा सकता है कि—"सर्वज्ञ के ज्ञान मे ऐसा ही झलका था" या "ऐसा होना ही था।" पर विश्वास रखिये, ऐसा पलायनवादी उत्तर देकर मै प्रश्न से भागने का कौशल नही दिखाऊंगा। फिर भी उत्तर सक्षिप्त और सीधा है कि—"आपने मुझे यह सरस आलेख लिखने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया है।"

कुछ उदाहरण : कुछ सवाल

ऊपर जो बात कही गई है उसे ठीक-ठीक समझने के लिये कुछ उदाहरण देख लेना ठीक होगा। समाज के अमगल को धोने वाली ऐसी आठ मगल—प्रतिक्रियाए उदाहरण के लिये हम यहां प्रस्तुत कर रहे है।

1. आपने अपने मन्दिरो मे नियम बनाये और बोर्ड लगाये—
"इस मदिर मे सिर्फ सोनगढ या श्री टोडरमल-स्मारक से प्रकाशित ग्रन्थ ही रखे जायेगे। सिर्फ उन्ही का पठन-पाठन हो सकेगा।" इस बारे मे आपने आगम की आन नही मानी।

* आचार्यो ने आदेश दिये, मुनियो ने समझाना चाहा। आपने उन्हे ढोगी और द्रव्यलिगी कहकर अनसुना कर दिया।
* विद्वानो ने विरोध किया।

आपने कुछ को खरीदकर पाकेट मे रखा, जो बिके नहीं उनकी उपेक्षा की गई। तब समाज ने घोषित कर दिया—

"हमारे मदिर मे सोनगढ से या श्री टोडरमल स्मारक से प्रकाशित साहित्य न रखा जा सकेगा, न उसका पठन-पाठन हो सकेगा।"

—*मैं पूछना चाहता हू कि इसमे बुरा मानने की क्या बात है ?*

× × ×

2. आपने बदिश लगाई—

—"हमारे मदिर मे केवल निश्चय-नय के आधार पर ही प्रवचन होगा और यहा हमारे प्रवचनकार ही प्रवचन कर सकेंगे।

* समाज ने बदिश लगा दी—

—"हमारे मदिर मे एकान्त का पोषण करने वाला प्रवचन नही होगा और सोनगढ-पथ के प्रवचनकारो को यहाँ गादी

पर नही बैठने दिया जायेगा।"

—मेरी समझ से इसमे अनुचित तो कुछ नहीं हैं। यह तो व्यवहार की बात है।

× × ×

3. आपने बार-बार लिखा-और कहा—

—"जिनवाणी जड़ द्रव्य है। उसकी आराधना से किसी का कोई उपकार होने वाला नही है। जिनवाणी का राग पर स्त्री के राग के समान ही बध कराने वाला है।"

* इतना ही नही, आपने मलाड के मन्दिर में पहले से रखे हुए भारतीय-ज्ञानपीठ और जीवराज-ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित बाईस आगम-ग्रन्थो को अनादरपूर्वक अपने मदिर से निकाल फेंका।

* समाज ने नैनवा मे आपकी उन एकान्त-पोषक पुस्तकों को, जिनमे यह सब लिखा था, और जिन्हे आप जिनवाणी का दर्जा दिलाना चाहते थे, समारोह-पूर्वक उठाया और खण्डित मूर्तियो की तरह जल मे विसर्जित कर दिया। भविष्य के लिये भी ऐसे साहित्य को मदिर मे नही रखने का निर्णय ले लिया।"

—मैं नहीं समझ पाता कि इसमे अनीति क्या हुई?
यह तो मिथ्यात्व का प्रायश्चित ही हुआ।
अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का यही कारगर उपाय था।

× × ×

4. —"आपने असत्य-भाषण करने वाली एक अव्रती महिला को "धर्म की शोभा" तथा मुनियो-आर्यिकाओं से श्रेष्ठ" कह कर उसके वचनो को "दिव्य-ध्वनि का मत्र" बताया। उसके तलुवे चाटने का श्रावको को परामर्श दिया।"

—"अब आप ही बताइये, समाज इसे मायाचार और पाखण्ड से कम क्या कह सकती थी ? मेरे मत से यह तो अल्पतम प्रतिक्रिया है।

× × ×

5. आपने अपने अव्रती और असयमी गुरुदेव को 'सदगुरुदेव' 'परमगुरु' "सप्तम गुणस्थानवर्ती-भावलिंगी मुनि' और 'सम्यक् चारित्र के स्तम्भ' जैसे महान सम्वोधन देकर चारित्र का मखौल उडाया और साधु परमेष्ठी की अविनय का पाप किया।(चित्र आगे देखें)

* समाज ने श्री कहानजी को "जैसे वे नही थे" वैसा मानने से इन्कार कर दिया। आपके सवस्त्र परमगुरु समाज की समझ मे नही आये।

—मै कहना चाहता हू कि आपके लिये इसमे नाराजी की तो कोई वात ही नही थी। आखिर आप क्या अपेक्षा करते थे ?

× × ×

6 आपने परमपूज्य दिगम्बर मुनिराजो के लिये बहुत से अपशब्द कहे और लिखे। भाति-भाति से उनका तिरस्कार किया ओर यह घोषणा करने मे अपनी महत्ता समझी कि —"इस युग मे कोई सच्चा मुनि है ही नही, हम किसी मुनि को नमस्कार नही करते।"

* समाज ने आपके सद्‌गुरुदेव का स्वागत-सत्कार करने से इकार कर दिया। प्रवास मे उन्हे काले झण्डे दिखाये और पथराव करके उन्हे अपने नगर से भगा दिया। वे भाग भी गये।

—मुझे लगता है यह तो वाजिब ही था। इससे आपकी भाषा में भी परिष्कार हुआ है।

× × ×

7 आपने श्री कहानजी को कल्पित तीर्थंकर बनाकर मदिरो मे उनकी मूर्तियाँ बिठाना प्रारम्भ कर दिया। इसके लिये आपके प्रतिष्ठाचार्य आधी रात मे भी अनुष्ठान कराने लगे। आप इस कपट और मिथ्यात्व का खण्डन करने के बजाय उसका प्रच्छन्न पोषण करते रहे।

* —"समाज ने हर स्तर पर सूर्यकीर्ति का विरोध किया। आवाज उठाई कि ऐसे क्रिया-विहोन आगम-विरोधी प्रतिष्ठाचार्यों को मान्यता नही दी जायेगी। उनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओं को भी, सदोष प्रतिष्ठित होने के कारण, मदिरो मे बिठाने की अनुमति नही दी जायेगी।"

* —इसी कारण समाज ने यह भी सकल्प लिया कि यदि कहीं छल-बल से सूर्यकीर्ति की मूर्ति रख दी गई हो तो उसे, जैसे बने तैसे, जिनायतन से हटा दिया जायेगा। एक कपोल-कल्पित स्थापना को अपने आराध्य के समकक्ष बिठाना किसी भी हालत मे बर्दाश्त नही किया जायेगा।

* —इसीलिये समाज ने यह भी निर्णय लिया है कि जिस प्रतिमा पर "कानजीस्वामी आम्नास" अथवा "श्रीकानजी सदुपदेशात्" जैसी प्रशस्ति अकित की गई हो, या किसी भी रूप मे श्रीकहानजी का नाम अकित किया गया होगा, ऐसी मूर्ति को कही किसो तीर्थ, मदिर या चैत्यालय मे स्थान नही दिया जायेगा।"

—मैं समझता हू यह तो सर्वथा नीति-सम्मत है।
यादृश देवता यस्य पूजा भवति तादृशी। जैसा देव, वैसी पूजा।

× × ×

8 आपने अपनी संस्थाओ की नियमावली मे लिखा—

—"वीतराग धर्म को जैसा परमपूज्य सदगुरुदेव श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रतिपादित किया गया है वैसा—जो स्वीकार करता हो, उसे ही हमारे मदिर में आने की पात्रता और अधिकार होगा, अन्य को नही।"

* —इसकी प्रतिक्रिया मे समाज को यह निर्णय लेना चाहिये था कि—"हमारा धर्म वह है जो वीतराग, सर्वज्ञ, हितैषी, आप्त की दिव्य-ध्वनि से प्रतिपादित होकर, आचार्य परम्परा से हमे प्राप्त हुआ है। अत. उस आचार्य परम्परा मे जिनकी आस्था नही है, जो एक अव्रती अल्पज्ञानी और सरागी व्यक्ति द्वारा प्रतिपादित किसी पृथक धर्म को मानते हैं, ऐसे व्यक्तियो को हमारे पारम्परिक मदिरो मे प्रवेश करने की पात्रता या अधिकार नहीं है।" परन्तु—

दिगम्बर जैन समाज ने अब तक ऐसा कोई निर्णय नहीं लिया।
यह समाज की उदारता और वात्सल्य का प्रमाण है।
आपको छूट है—अपने सदगुरुदेव मे श्रद्धा रखते हुए भी,
अलग देव-गुरु-शास्त्र मानते हुए भी,
अपने पारम्परिक मदिरों मे आइये और हमारी
मूल आम्नाय के अनुसार—
भगवान जिनेन्द्र का दर्शन-पूजन कीजिये, आपका स्वागत है।
जिनबिम्ब के दर्शनों का निमित्त पाकर
कुटिल से कुटिल उपादान भी सुलटे हैं, सुलटते रहेंगे।
कुनय आधारित एकान्त को छोडकर
सर्वज्ञ-प्रणीत दिगम्बर जैन धर्म पर
जिस दिन जिसकी आस्था टिक जायेगी
उसके लिये वही 'मगल-प्रभात' होगा।
हमारी शुभ-कामनाए आपके साथ हैं।

ऐसी घटनाए केवल आठ ही नही है। वे अस्सी या आठ सौ भी गिनाई जा सकती है। एकान्त के हठाग्रह को लेकर गाव-गाव की अपनी अलग कहानी है। समय-समय पर प्रकाशित उनके प्रमाण उपलब्ध है। आप भी यदि जानना चाहते है तो कृपया ... पृष्ठ ... पलटिये।

शांति सदन सतना
31 अक्टूबर '87
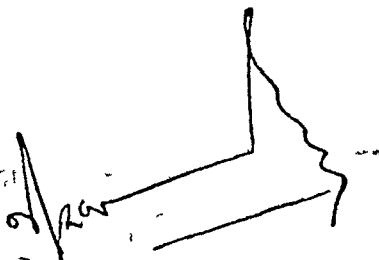
जो बिन ज्ञान क्रिया अवगा है,
जो बिन क्रिया मोक्ष फल चाहै।
जो बिन मोक्ष कहै,मैं "मुखिया"
सो अजान मूढन को मुखिया।

—कविवर बनारसीदास

व्यवहारपराचीनो निश्चयं यश्चिकीर्षति,
बीजादिना विना मूढ. स सस्यानि सिसृक्षति ।

—प आशाधर

—अनगार धर्मामृत १/१००

व्यवहार की उपेक्षा करके
जो निश्चय की अभिलाषा करता है,
वह मूर्ख, खेत-पानी और बीज के बिना ही
फसल उगाना चाहता है ।

सोनगढ़-समीक्षा

सूर्यकीर्ति की परिकल्पना

सन् 1981 के उस अमगल दिवस को, बम्बई महानगरी के घोर व्याकुलता भरे वातावरण मे, जसलोक अस्पताल के बैड पर अन्तिम सास लेने के पूर्व, श्री कहानजी ने सोचा भी नही होगा कि उनके जाते ही, उनकी साधना-भूमि से गृहीत मिथ्यात्व की ऐसी भयकर आधी चलेगी, जो अपने साथ हजारो तथा-कथित मुमुक्षजनो की आस्था को सूखे पत्ते-सा उड़ा ले जायेगी। उनकी मायाविनी आराधिका चम्पा-बहिन उसी भूमि से, केवलि-श्रुत-सघ और देव, चारो के अवर्णवाद का लम्बा और भ्रामक सिलसिला प्रारम्भ करने मे जरा भी विलम्ब नही करेगी। खुद उन्हे भी सूर्यकीर्ति के नाम से तीर्थंकर घोषित कर दिया जायेगा।

अवर्णवाद की उसी आधी ने आजकल पूरी दिगम्बर जैन समाज को आदोलित कर रखा है। अनेक निहित-स्वार्थी जनो द्वारा लगाई जा रही सामाजिक विद्वेष और बिखराव की आग, इस आधी मे कई गुने वेग से सुलग रही है। सबसे बडी चिन्ता की बात यह है कि ऐसे लोगो का दुराग्रह अभी भी ढीला नही पडा है। ऐसा लगता है कि कुछ लोग अभी भी नियोजित रूप से

सूर्यकीर्ति की महत्ता को, और उसकी स्थापना के प्रयासो को उचित ठहराने की कोशिश कर रहे है।

1984 के अन्त से ही सोनगढ मे भावी तीर्थंकर के रूप मे, सूर्यकीर्ति नाम से श्री कहानजी की मूर्ति स्थापित करने की तैयारिया कर ली गई थी। सोनगढ के कर्त्ता-धर्ता समाज के विरोध का पूर्वानुमान कर रहे थे इसलिये इस मिथ्यात्व-रजित सकल्प की घोषणा बहुत बाद मे, सारी तैयारिया पूर्ण कर लेने के बाद ही की गई। उनका डर ठीक ही था। योजना घोषित होते ही सारी दिगम्बर जैन समाज मे खलबली मच गई। चारो ओर से विरोध के स्वर उभरने लगे। जनवरी-फरवरी 85 मे, सोनगढ मे प्रतिष्ठा के पूर्व से ही, समाज का विरोध भी सामने आने लगा था।

दिगम्बर जन महासमिति, दिगम्बर जन महासभा भारत-वर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी आदि जैन समाज की सभी प्रमुख संस्थाओ ने जोरदार शब्दो मे सूर्यकीर्ति की मूर्ति का विरोध किया। पूज्य आचार्यो, मुनियो और विद्वानो एव प्रतिष्ठा-चार्यो ने एक स्वर से इसे सिद्धान्त-विरोधी, आगम-विरोधी और परम्पर ओ के प्रतिकूल निरूपित करते हुवे इसकी स्थापना का निषेध किया। समाज के अति वरिष्ठ और प्रतिष्ठित जनो का एक प्रतिनिधि-मण्डल भी सोनगढ तक गया। न्यायालय के दरवाजे भी खटखटाये गये। परन्तु सूर्यकीर्ति का उन्माद न रुकना था, न रूका। स्वामित्व के मद मे चूर कतिपय हठधर्मी एकान्त-वादियो ने अपने ही साधर्मी भाइयो के साथ छल-बल का बर्ताव करके सोनगढ के आसपास, तथा बम्बई आदि कुछ स्थानो पर, इस पाखण्ड की प्रतिष्ठा करके अपने ही धर्मायतनो को अनायतन मे परिवर्तित कर लिया। कई जगह ऐसा करने की योजनाए अभी भी बनाई जा रही हैं।

इस बीच इस प्रकरण पर जैन पत्रो मे खब लिखा गया। प्राय-सभी समाज जनो ने अपनी-अपनो विज्ञप्तिया देकर तथा सूचनाए आदि निकालकर इसका विरोध किया। मै समाज का एक अदना-सा सदस्य हू और मार्ग-दर्शन या निर्देश देने की योग्यता अपने मे नही पाता इसलिए मैंने इस सबध मे अपनी लेखनी नही चलाई। उन्ही दिनो मुझे बाहर एक गोष्ठी मे सूर्य-कीर्ति पर ही बोलने के लिये आमन्त्रित किया गया और मेरे उस भाषण के आधार पर एक लेख प्रो. नरेन्द्र प्रकाश जी ने जैन-गजट के 26-11-85 के अक मे प्रकाशित किया। यह लेख छपते ही मेरे पास इस विषय मे बराबर लिखते रहने के लिये अनेक मित्रो के पत्र आये, परन्तु कुछ समयाभाव के कारण और कुछ अनिच्छा के कारण मैं आगे कुछ लिख नही पाया।

दुर्भाग्य की वात है कि इधर कुछ समय से कुछ तथा-कथित विद्वानो के द्वारा पुन सूर्यकीर्ति की वकालत अपने लेखो मे करना प्रारम्भ किया गया है। अव जब मीठे जहर की तरह उस मिथ्यात्व-पोषक सकल्प को "आगमानुसारी" और 'औचित्यपूर्ण' ठहराने का प्रयास पुन प्रारम्भ हो रहा है, तब मुझे लगता है कि चुप वैठे रहना पाप होगा।

वास्तविकता तो यह है कि श्री कहानजी के जाने के बाद सोनगढ का मुलम्मा बहुत जल्द उतर गया है। स्वय उन्ही के अनुयायियो के पराक्रम से, अनेक प्रकाशनो के रूप मे, वहा की सारी सडाध सडको पर बिखर गई है। माना जाता है कि सोनगढ की आतरिक परिस्थितियो की मेरे पास कुछ अधिक जानकारी है। इस सबध मे मार्च 1974 के जैन-सन्देश मे छपे मेरे लेख की बहुत चर्चा रही है। 'सोनगढ के सस्मरण' शीर्षक से प्रकाशित इस आलेख को वाद मे शास्त्री परिषद् ने पुस्तका-कार प्रकाशित किया था। मै समझता हू कि मेरा वह लेख आज

भी न केवल प्रासगिक है, वरन् उसमे आज की स्थितियो का स्पप्ट पूर्वानुमान विद्यमान है। कुछ और भी मैटर मेरी डायरी के पन्नो पर हो सकता है। इसलिए वर्तमान स्थिति मे इस सवध मे मेरे पास जो कहने को है, उसे विस्तार से लिपिवद्ध करके समाज क सम्मुख रखना मुझे उचित और आवश्यक लग रहा है।

इस लेखन के पूर्व अपने कई मित्रो की प्रतिक्रिया का मैं अनुमान कर पा रहा हू। इस वारे मे अपनी मन स्थिति प्रकट करने के लिए मुझे एक शेर याद आ रहा है जिसे यहा उद्धृत करके मैं आगे वढूगा—

हमे मालूम है इसके लिए वो क्या सजा देगे,
मगर जैसे भी हो हम आज उनको आइना दिखा देंगे।

यहा यह याद दिलाने की आवश्यकता नही है कि जब सूर्यकीर्ति की स्थापना के प्रयास किए गए थे तब समाज ने एक स्वर से जोरदार आवाज मे उसका विरोध किया था और प्राय सभी ने उस स्थापना को मिथ्यात्व-पोषक, आगम विरोधी और परम्पराओ के विरुद्ध निरूपित किया था। टोडरमल स्मारक जयपुर के प्रवक्ता और प्रकाशन अवश्य, विरोध मे सक्रिय होने से वचते रहे। परन्तु विरोध की उस प्रवल आधी के सामने किसी की यह हिम्मत नही हुई कि वह उस पाखण्ड के समर्थन मे कुछ कहे या लिखे। पर अव, जवकि स्थापना के प्रयास कुछ ढीले है और इसीलिए विरोध के स्वर भी मद से लग रहे है, तव कुछ लोग पुन एक षड्यत्र रच रहे है। अव विद्वत्ता का लवादा ओढकर अपने लेखो के वहाने से सूर्यकीर्ति की स्थापना को आगमानुसारी सिद्ध करने और परम्परा के अनुरूप बताने की कोशिश प्रारम्भ की गई है। यदि अभी ही ऐसे कुत्सित प्रयासो का पर्दा फाश नही किया गया तो ऐसे आलेख समाज मे भ्रामक स्थिति का निर्माण

कर सकते है। यही सोचकर इस आलेख द्वारा मैं उस ओर समाज का ध्यान दिलाने का प्रयास कर रहा हू।

भावनगर के श्री चिरंजीलाल जी पाटनी ने अपने लेखो मे यह समर्थन प्रारम्भ किया है और जैन सन्देश मे उनका प्रकाशन धारावाहिक रूप से हुआ है। इन लेखो का तात्पर्य तो शायद शास्त्र बहिष्कार के मुद्दे को उठाकर समाज मे कडवाहट पैदा करना ही है। इसके लिए उन्होने अनेक पूर्व-प्रकाशित उदाहरण दिए हैं, परतु उसी बहाने सूर्यकीर्ति के समर्थन का प्रसग भी उन्होने जुटा लिया है। छब्बीस जून 86 के अक में कतिपय कार्यकर्ताओं को कोसते हुए पाटनी जी ने लिखा—

"दिगम्बर जैन धर्म पर अपना स्वत्वाधिकार जमाने वाले इन स्वयभू संरक्षको ने एक भावी अरहन्त भगवान के बिम्ब को, जो तत्वत जिनागम अनुवर्त्ती है, उस वीतराग दिगम्बर जैन बिम्ब का विरोध करने के लिए तो अत्यत त्वरा से, एव पूरी मुस्तैदी और तत्परता से जमीन आसमान एक कर दिया।" आदि।

पुन, 10-7-86 के जैन सन्देश मे पाटनी जी ने फिर अपनी बात का पुष्टीकरण इन शब्दो में किया—

"ध्यातव्य है कि सोनगढ मे धातकी विदेह क्षेत्रो के भविष्यत् अनन्त तीर्थंकरो की प्रतिनिधीयमान वीतरागी अर्हन्त जिन प्रतिमाजी प्रतिष्ठापित है। इसी क्रम मे उल्लेखनीय है कि भूत, वर्तमान और भविष्य के आरो की एक-एक चौवीसी की सयुक्त बहत्तर तीर्थंकरो का एक समह सूरत के भी एक दिगम्बर जैन मदिर में प्रतिष्ठापित हैं। विज्ञ पाठको के ध्यानार्थ यह भी उल्लेख कर देना उचित है कि विभिन्न क्षेत्रो से सम्बद्ध एक सौ सत्तर तीर्थंकर समूह की प्रतिमा भी प्रतिष्ठित की जाती रही है। इस प्रकार यह एक आगमिक तथ्य है कि भूत, वर्तमान और भावी

तीर्थंकरो के तथा अन्य क्षेत्रो से सबधित तीर्थकरो के स्थापित करने की परम्परा रही है।

—जैन सन्देश पृष्ठ 5-6/11-7-86

यहा यह ध्यान रखना होगा कि सोनगढ़ मे सबसे पहले एक विचारित योजना के अन्तर्गत चौबीसो तीर्थकरो की अवहेलना करके सीमधर स्वामी की मूर्ति की स्थापना प्रारम्भ की गई थी। उसी योजना के अनुसार कई जगह उनके स्वतत्र मदिर बनाकर समाज मे बिखराव के निमित्त रचे गए। स्थापित परम्पराओ के बाहर सीमधरस्वामी के मदिर बना लेने से उत्पन्न आत्म-विश्वास के आधार पर ही सूर्यकीर्ति का पाखण्ड रचा गया था।

विद्यमान बीस तीर्थंकर भगवन्तो की हम रोज पूजन करते हैं परन्तु वे भरत क्षेत्र के बाहर के है इसीलिए हमारे यहा कभी इनके मन्दिर या मूर्तिया नही बनाई गई। जहां नित्य-पूजित बीस तीर्थकरो की प्रतिमाए नही बन सकीं, वहा एक सौ सत्तर की कल्पना करना, या सीमधरस्वामी के अलग मदिरो की सयोजना करना, और इस बहाने सूर्यकीर्ति का समर्थन या औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करना, समाज के साथ बहुत ही बडा छल है। मूडबिद्री के भट्टारक स्वामीजी के शब्दो मे—"जैन सस्कृति पर यह बहुत बड़ी डकैती है।"

मजे की बात है कि अपने पूर्वाग्रहो के लिए विख्यात एक श्वेताम्बर लेखक का सहारा लेकर श्री पाटनीजी ने अपने कथन के साथ कुछ प्रमाण भी दिए है, पर उन प्रमाणो से सूर्यकीर्ति की स्थापना का औचित्य किसी भी तरह समर्थित नही होता।

हम उन सारे प्रमाणो की समीक्षा आगे चलकर करेंगे, यहां इतना कहकर ही हमे आगे बढना है कि समूह प्रतिमाओ की, और स्वतत्र मूर्तियो की परम्परा मे बहुत अन्तर है। प्रमुख बात यह है कि मूर्तिया केवल तीर्थंकर भगवतो की बनती है और वे उन्ही तीर्थंकरो के क्षेत्र मे स्थापित करके पूजी जाती है। इस

नियम पर परखने पर हमे ज्ञात होगा कि सूर्यकीर्ति की बात तो दूर है, सीमधरस्वामी की मूर्ति की स्थापना की भी हमारे पूर्व इतिहास मे कोई परम्परा नही है। जब से भारत मे मदिर-मूर्तियो का निर्माण पाया जाता है तब से, एकाध अपवाद को छोडकर, कहीं भी सीमधरस्वामी की मूर्तिया या मदिर हमारे देश मे नही बनाए गए।

दिगम्बर आम्नाय की सारी परम्पराओ को ताक पर धर-कर सोनगढ मे सूर्यकीर्ति की जो कल्पना की गई, वह न तो किसी एक दिमाग की उपज थी और न ही वह किसी एक घटना का परिणाम था। यह बात अब सिद्ध हो चुकी है कि श्री कहानजी को भगवान बनाकर उनके सहारे स्वय महतता अर्जित करने के अभिप्राय से, श्री कहानजी सहित अन्य अनेक जनो द्वारा बनाया गया यह एक दीर्घकालीन षड्यत्र था। हमे इस महान सहकारी उद्योग की असलियत समझने के लिए पहले सोनगढ का पूर्व इतिहास समझना होगा, उसके ढाचे को जानना होगा।

यदि हम उपलब्ध तथ्यो को बारीकी से देखे तो सोनगढ की स्थापना के तत्काल बाद ही वहा की अन्तरग-मण्डली का लक्ष्य सिर्फ इतना ही रहा है कि जैसे भी हो श्रीकानजी को ऐश्वर्य और देवत्व की महिमा से मण्डित करना है, और उनके सहारे इसी पर्याय मे समवसरण की रचना का अग बनकर बैठ जाना है। कहने की आवश्यकता नही कि महा मायाविनी चम्पा बहिन इस अन्तरग मण्डली की सूत्रधार रही हैं।

यह भी स्पष्ट है कि बहिनश्री ने अपना वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसका प्रमाण यह है कि जीवन के अतिम दो वर्षो तक श्री कहानजी स्वय 'बहिनश्री वचनामृत पर अपने प्रवचन देते रहे है। 'बहिनश्री वचनामृत' को पाषाणाकित कराकर सोनगढ के मदिर मे लगाने की योजना पर कार्यारम्भ हो गया है, और

फोम के आधा दर्जन गद्दो पर विराजित वहिनश्री को अर्घ्य चढाकर देवी की तरह पूजने के उपक्रम सोनगढ मे चालू हो गए है।

सद्गुरु देव खुद भटक गए थे

यह जानने का तो कोई उपाय नही है कि यश-ख्याति-लाभ पूजादि के इस दुष्चक्र मे श्री कहानजी का कितना योगदान रहा, पर अपने ही बारे मे फैलाई जाने वाली निराधार बातो का निषेध नही करना, बल्कि गाहे-ब-गाहे उसकी पुष्टि करते रहना, एक ऐसा तथ्य है जिसके रहते उन्हे 'निर्लिप्त' या 'निरपेक्ष' नही कहा जा सकता। वहिनश्री की प्रशस्ति मे प्रकाशित पुस्तक 'धन्य अवतार' पर यदि विश्वास किया जाए तो कहना पडेगा कि जो व्यक्ति अपने भक्तो को वहिनश्री के तलुवे चाटने का परामर्श दे गया हो, और उसी में विना सम्यक्दर्शन के भी जिसने भक्तो का कल्याण देखा हो, वह निश्चित ही उस माया-मूर्ति के पाखण्ड-चक्र से बाहर नही था।

अतरग-मण्डली का षड्यत्र श्री कहानजी के लिए कोई कपट-जाल नही था, वह उन्हे दिखाया गया एक ऐसा सुनहरा सपना था जिसके सर्वोच्च सिहासन पर वे स्वय अपने आपको बैठा देखने लगे थे। यही कारण था कि आजीवन उनकी कथनी और करनी के बीच विसगतियो की एक गहरी खाई बनी रही। अन्त मे अपने दुर्भाग्यपूर्ण मरण से उन्होने स्वय उस खाई को सौगुना चौड़ा करके अपने ही अनुयायियो के सामने प्रश्न चिन्ह बनाकर छोड़ दिया।

श्री कहानजी तीर्थंकर होगे यह बात स्वयं उनके मन मे इतनी गहरी पैठ रही थी कि उन्हे उसकी सत्यता मे सदेह शायद नही रह गया था। प्रश्न केवल यह था कि तीर्थंकरत्व के उस

ाभा मण्डल से वर्तमान भव को कैसे महिमा-मण्डित किया जाए। ास, यही वह प्रश्न था जिसके उत्तर में आतुर होकर, और उचित ानुचित का विवेक खोकर, सोनगढ की सारी मण्डली "जो करना ड़े सो करने के लिए" अपनी सारी शक्ति और सारे साधनो े जुट गई।

यह कहना तथ्यो को अनदेखा मानी जाएगी कि श्री कहान-ी को महिमा-मण्डित करने का प्रयास मरणोपरान्त किया ाया। वास्तविकता तो यह है कि दस-बीस सालो मे, उन्ही की ानुमोदना पूर्वक, सोनगढ मे अत्यन्त नियोजित ढग से ये प्रयास ारम्भ हो गए थे। जिन्होने इनकी वास्तविकता परख ली उनके ारा उसी समय से उन उपायो का विरोध भी किया गया परन्तु ाधी के धूल-धक्कड मे प्रात समीर के झोके अपना बोध कहा करा पाते है ?

ंकोत्कीर्ण प्रमाण

कथित और लिखित प्रमाणो की बात फिर करेगे। पहले ोनगढ मे उपलब्ध टकोत्कीर्ण प्रमाणो के सहारे हम अपनी बात ा समर्थन करेगे। ऐसे प्रमाण जो दिन की रोशनी मे प्रतिदिन हा सबकी निगाह मे आते हैं। बस इसके लिए आपको सोनगढ : मान-स्तम्भ की एक परिक्रमा करनी पडेगी।

यह फलक देखिये, कमलासन पर सीमधर स्वामी विराज-ान हैं। उनकी दिव्यध्वनि की किरणें आचार्य कुदकुंद स्वामी क पहुच रही है जिनके माध्यम से आचार्य अमृतचन्द्रदेव उस ाणी को धारण कर रहे हैं और अत मे पर्वत पर विराजमान हैं ोकहानजी, जो अमृतचन्द्राचाय महाराज से वह उपदेश ग्रहण रके सामने बैठे श्रोता समुदाय को बाट रहे है। और इसी फलक नीचे वह फलक जडा है जिसमे अनेक तीर्थंकर भगवतो के

बिम्ब, अशोक तरु और देव-विमानो के बीच उत्कीर्ण है।

अब जरा चलिए मानस्तम्भ के दूसरी ओर। सामने के फलक पर सीमधरस्वामी का समोशरण है। भगवान अधर मे विराजे है और छत्र-चमर-भामण्डल आदि की पूरी रचना है। इसके ऊपर का फलक देखिए। श्री कहानजी स्वय पदमासन बैठे है। सामने जिन-वाणी विराजमान है। पीछे दो हाथी अपनी सूड मे माला लेकर दोनो और से श्री कहानजी की अभ्यर्थना कर रहे है। भावी तीर्थंकर यहा वर्तमान तीर्थंकर के सिर पर सवार है। श्रेष्ठता स्थापित करने की लालसा को, पाषाण फलक पर अकित करके, भगवान के मानस्तम्भ मे जड दिया गया है। अब क्या उस मनो-भावना का और कोई प्रमाण चाहिए?

यह शार्टकट है

इस रचना का गणित बडा सीधा है। भगवान महावीर से जिनवाणी ग्रहण करने मे उनकी आचार्य परम्परा के सैकडो आचार्यो को बीच मे लाना पडता। तब श्रीकहानजी का नम्बर बहुत नीचे पहुच जाता। अपना क्रम ऊपर लाने का जो सरलतम उपाय था। वही उन्होने किया। वाणी सीमधरस्वामी से प्राप्त कर ली। बीच मे रहे केवल दो आचार्य, कुदकुद स्वामी और श्री अमृतचन्द्र। तब श्री कहानजी का क्रम तीर्थंकर के बाद तीसरा स्वत हो गया।

इस प्रकार जिस व्यक्ति ने अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए तीर्थंकरो के सिर पर अपनी आकृति का पाटिया जडवाया हो, और बीस-तीस वर्षो तक उसी को देख-देखकर मुदित होता रहा हो, उसके नि शकित और नि काक्षित, उपगूहन और वात्सल्य, कितने नि सत्व रहे होगे यह कल्पना का विषय नही है। अब इस पर भी कोई कहे कि—"श्रीकहानजी ख्याति-पूजा की ओर से निर्लिप्त थे, यह सब तो उनके भक्तो ने अतिशय भक्तिवश किया होगा" तो आप ही कहिए इसका क्या उत्तर दिया जाए?

अविनय अरहंतो की

भगवान जिनेन्द्र के प्रति घोर अविनय का यह आचरण इतना ही नही है। वह तो निरन्तर शुद्धात्मा का अनुभवकरने वाले स्वयभू महाप्रभ् द्वारा, सोनगढ मे पग-पग पर होता रहा है, और हो रहा है। वहा यह बहु-प्रचलित अभ्यास रहा है कि लोग मोटे सफेद कागज पर चन्दन और केशर से श्रीकहानजी के पगतल की छाप लेते थे और उसे सीमधर भगवान तथा अन्य तीर्थकरो के साथ जडकर कमरे मे लगाते थे। मान्यता तो यह भी हैं उस पगछाप को तिजोरी मे रखने पर अक्षय निधि प्राप्त होती है।

मैंने सोनगढ के अनेक विद्वान प्रवक्ताओ के घरो मे इस प्रकार के चित्र टगे देखे है जिनमे एक ही फ्रेम मे आदिनाथ और सीमधर स्वामी के चित्र है और दोनो के बीच मे श्री कहानजी के चरणो की छाप शोभा पा रही है। क्या सचमुच यह भी उनकी इच्छा के विपरीत, उनकी मरजी के खिलाफ हुआ है ? अपने आप को स्थापित करने की ऐसी कई बाते प्रारम्भ से ही उनके आचरण मे दिखाई दे रही थी इसीलिए तो सदा उनकी प्रशसा करने वाले सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्रजी ने तक एक बार 'जैन-सन्देश' के सम्पादकीय मे लिख दिया था—'स्वामीजी का यह 'पोपडम' ही एक दिन सोनगढ को ले डूबेगा।"

मेरी सोनगढ यात्रा

मैं स्वय केवल एक बार सोनगढ गया हू। परमागम मदिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर "भगवान महावीर 2500वा निर्वाण महोत्सव की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक वहां न रखी जाती तो शायद मुझे उसकी भी आवश्यकता न पडती। फिर कभी जाने का उत्साह ही नही हुआ। पर वहा की विसगतिया देखकर मेरे मन मे जो वेदना हुई उसे उसी समय मैंने लिपिबद्ध किया और

प. कलाशचन्द जी ने उसे जैन-सन्देश के दो अ को मे, 21 और 28 मार्च 1974 को, प्रकाशित किया। बाद मे शास्त्री-परिषद् ने इस लेख को अलग से पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया। उन दिनो यह आलेख बहुत चर्चित रहा और इसके लिए चारो ओर से मुझे बधाइयाँ और धमकियाँ मिलती रही।

'सोनगढ के सस्मरण' शीर्षक से प्रकाशित इस विस्तृत लेख मे मैने उस यात्रा की अपनी अनुभूतियो का अकन किया था। आज से बारह साल पूर्व, प्रथम यात्रा के तत्काल बाद मैने उस लेख मे स्पष्ट लिखा था—

"सोनगढ़ की प्रवचन पद्धति मे भक्ति को एकान्त से 'राग' 'आश्रव और बध कारक,' 'हेय' और 'अनिष्ट फलदायक' कहा जाता है। परन्तु उसी भक्ति के अतिरेक मे, भगवान् की विनय-अविनय का विवेक छोड़कर हम कैसे-कैसे कदाचरण कर बैठते है यह अनायास यहाँ देखने को मिलता है। सद्‌गुरुदेव (?) कानजी स्वामी के चरणो की छाप, जो केशर-चन्दन के घोल से कागज पर उतारी जाती है, किसी भी अनुयायी भक्त के घर तीर्थकर भगवतो के चित्र के साथ टगी देखी जा सकती है।

"सोनगढ के मानस्तम्भ मे दो ऐसे फलक मैने देखे है जिनमे ऊपर की ओर स्वामी जी को चित्रित किया गया है और उसी के नीचे फलक पर अरहत की प्रतिमाए अकित है। यह प्रभुता देखकर भोले भगत यदि स्वामीजी का चित्र अपने मदिर की वेदी पर रखकर भविष्य मे अर्घ भी चढाने लगे तो इसमे आश्चर्य न होगा।"

आज विचार करता हू कि 1974 मे भविष्य की कल्पना करते समय मै ही चूक गया। परिस्थितियो ने सिद्ध कर दिया है कि मानस्तभ मे वे फलक लगाने के समय से ही स्वय श्री कहान जी और उनकी अतरग-मडली के मन मे यह योजना थी कि एक

दिन इस प्रवुद्धात्मा को परमात्मा वनाकर स्थापित करना ही है। क्या यह इस बात का सबूत नही है कि तीर्थंकर वनने की कल्पना जब अकुरित हुई तब उसमे सर्वाधिक खाद और पानी स्वय श्री कहानजी ने दिया। बुद्धिपूर्वक और सकल्पपूर्वक यह सव प्रारभ से ही वहा होता रहा। कथनी और करनी की इसी खटकने वाली विसगति को लक्ष्य करके मैंने अपने उसी लेख मे लिखा था—

"जहाँ समयसार आदि ग्रथो से अध्यात्मरस के पान के लिए व्यक्ति हजारो मील से आता है, वहाँ उत्कृष्ट जिन मदिरो मे जिनबिम्बो का निर्माण, समारोहपूर्वक पचकल्याणक प्रतिष्ठाए, लाखो का दान देखा। जहा रात्रि-भोजन, मास का त्याग और पचाणुव्रत, ब्रह्मचर्य आदि का उपदेश व ग्रहण देखा, वहा यह भी सुना कि—"जिन पूजन, रात्रि भोजन-त्याग, महाव्रत, तीर्थ-वदना और दान आदि के कार्य धर्म नही है, अधर्म है। यह विसगति, यह विरोधाभास क्या कभी दूर होगा? कथनी और करनी के बीच इस विसगति मे भोली जनता आखिर कैसे मार्ग निर्धारित करे, यह प्रश्न छोटा भले ही लगे, पर वहुत वड़ा है।"

—जैन-सदेश, 21 मार्च 1974, पृष्ठ 407

इस प्रकार जैन शासन की पवित्रता वनाये रखने के लिये आज सूर्यकीर्ति की विषवेल का प्रतिकार करते समय, यह बात हमारे ध्यान मे रहना आवश्यक है कि यह कोई मूल-विहीन अमरवेल नही है। इसकी जडे है और वे वहुत गहरी है।

क्या है पूर्व इतिहास

जब तक हम सोनगढ की मूल सयोजना को नही समझ लेगे और सोनगढ पथियो की कार्य-पद्धति से परिचित नही हो जाएगे, तब तक सूर्य कीर्ति की स्थापना के पीछे छिपे रहस्य को नही समझ सकेगे। इसके लिए हमे सोनगढ के इतिहास को देखना-

परखना होगा और श्री कहानजी के अतीत मे झाककर उनके अभिप्राय को समझना होगा। आइये अतीत के पन्ने पलटकर हम उस मूल भावना को समझने का प्रयास करे। जिसके कारण एक नवीन पथ का उदय हुआ। एक नई विचारधारा का प्रवाह प्रगट हुआ।

चार दिन की चादनी थी

इसमे कोई सदेह नही है कि श्री कहान जी इस युग के विशिष्ट पुण्यशाली पुरुष थे। उनका व्यक्तित्व सौम्य और प्रभावशाली भी था। इसलिए जब शुद्ध आत्मा की प्रभावना को लेकर उन्होने निश्चय नय की अपनी व्याख्याए प्रस्तुत की तब उनके विचार पसन्द किए गए। श्वेताम्बर पद्धति को त्यागकर उनका सम्यक् साधना के मार्ग को अगीकार करना जैन शासन के लिए एक शुभ सकेत माना गया। दूर-दूर से लोग उनके पास पहुचने लगे और अपने स्थानो मे भी उनकी पद्धति से स्वाध्याय करने के लिए बैठने लगे। परतु वाद के वर्षो ने बता दिया कि यह सब जैन शासन के लिए एक अशुभ घटना के अतिरिक्त कुछ नही था। एक ऐसी घटना जिसने तत्वार्थ की सुगम और समतल व्याख्याओ को तरह-तरह के ऐकान्तिक और विवक्षा-विहीन तनावो से ग्रसित करके अतर्विरोधो से भर दिया। श्री कहानजी के जाने के पाच वर्षो के भीतर ही उसके दुष्परिणाम समाज के सामने नाना प्रकार के रूप धारण करके नाचने लगे है।

गुरु द्रोह से हुआ मगलाचरण

यह बडे दुर्भाग्य की बात कही जानी चाहिए कि दिगम्बर वीतरागी धर्म का मर्म समझने मे श्री कहानजी को जो साक्षात् निमित्त पडे, उन गुरु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन का सौजन्य भी श्री कहानजी ने कभी प्रदर्शित नही किया। उल्टे गुरु-द्रोह की सीढी पर पैर रखकर ही उन्होने आगे बढने का प्रयास किया।

घोर मिथ्यात्व के साथ मनुष्य पर्याय पाने पर श्री कहानजी के जीवन का वहुभाग तो ग्रहीत मिथ्यात्व की साक्षात साधना मे ही व्यतीत हुआ। उन वर्षों मे वे दण्डीस्वामी बने दर-दर घूमते रहे। बाद मे उनका भाग्य जागा और वीतराग पथ की शरण उन्हे प्राप्त हुई, तभी की यह घटना है।

उन दिनो ग्रहीत मिथ्यात्व का प्रत्यक्ष मार्ग छोडकर श्री कहानजी ने दिगम्बर जैन साहित्य का पठन-पाठन प्रारभ ही किया था। अनेक ग्रथो मे, और विशेपकर समयसार मे अर्थ की गुत्थिया उनके सामने आती थी और तब वे शकाए सोनगढ की स्वाध्याय मण्डली के कतिपय सदस्यो द्वारा अपने कलकत्ते के मित्रो को लिखी जाती थी। कलकत्ते के भाई पत्रो द्वारा, तथा कभी-कभी स्वय जाकर भी वे सारे प्रकरण ईसरी मे पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज के सम्मुख रखते थे। वर्णीजी से इस प्रकार सामने व पत्रो द्वारा उनका समाधान कराकर कलकत्ते से सोनगढ भिजवा दिया जाता था। इस प्रकार पूज्य वर्णीजी की सहायता से श्री कहानजी का समयसार का अध्ययन पूरा हुआ। इस अवदान के लिए श्री कहानजी को श्री वर्णीजी का आजीवन उपकार मानना चाहिए था।

समयसार के सदर्भ मे पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के उन पत्रो की उपयोगिता देखते हुए कलकत्ते के जिज्ञासु-मण्डल ने अपने कार्यालय 27, पोलोक स्ट्रीट से विक्रम सवत 1997 वीर स 1966 मे 'आध्यात्मिक-पत्रावलि' नाम से, उन पत्रो का संकलन प्रकाशित किया। समाधि-मरण को प्रोत्साहित करने वाले उनके कुछ और पत्रो को भी इस सकलन मे जोड लिया गया था। कलकत्ते के बाबू खेमचन्द मूलशकरजी का इस प्रकाशन मे विशेप हाथ रहा।

कलकत्ते से प्रकाशित होकर 'अध्यात्मिक-पत्रावली' की

प्रतिया सोनगढ पहुचते ही वहा उनकी बडी प्रतिष्ठा हुई । "पूज्य वर्णीजी सम्यग्दृष्टि महापुरुष है और उनके वचनो मे आगम का रस झलकता है," इस कथन के साथ सोनगढ के शास्त्र-भण्डार मे अध्यात्मिक पत्रावली की प्रतिया स्थापित की गई। मुमुक्षुजनों को निरतर उसके स्वाध्याय की प्रेरणा के साथ स्वय श्री कहान जी ने सैकडो प्रतियो का वितरण स्वहस्त से किया। सोनगढ के सभी प्रकाशनो के अत मे उन दिनो सदग्रथो की जो सूची छपती थी, उसमे भी इस 'अध्यात्मिक पत्रावलि' का समावेश किया गया।

कोई भी आस्थावान और सरलचित्त व्यक्ति ऐसे महान् ज्ञानदान के लिए पूज्य वर्णीजी का आजीवन उपकार मानता। परन्तु सोनगढ के परिकर ने यह नही किया। जैसे ही लोगो का ध्यान पूज्य वर्णीजी की ओर जाना प्रारभ हुआ, अपने गुरु के परोक्ष गुरु का दर्शन करने के लिए कुछ लोग ईसरी की तरफ आकर्पित हुए, वैसे ही सोनगढ की अतरग मडली का माथा ठनक गया।

फिर एक सुनियोजित पड्यत्र के अतर्गत पूज्य वर्णीजी को वहा श्रीविहीन बनाने की कोशिशे की गई। यहा तक कि उन्हे मिथ्यादृष्टी तक कहा और लिखा गया। वर्णीजी के वारे मे सोनगढ की मडली ने जो लिखा और प्रकाशित किया उसे पढकर उनके किसी भो भक्त का खून खौल जाएगा। उनके पत्रो का वह सकलन—'अध्यात्मिक पत्रावलि' भी इसी षड्यत्र मे गायब कर दी गई। गाव-गाव से उसकी प्रतिया एकत्र करके सोनगढ मे उनकी होली जलाई गई। इस प्रकार 'गुरु-द्रोह' की दक्षिणा के साथ श्री कहानजी ने समयसार का पहला पाठ पढा।

सन् 1968 मे किसी प्रकार अध्यात्मिक पत्रावलि की एक प्रति प्राप्त करके मैने वर्णी-स्नातक परिषद् के लिए श्री गणेशप्रशाद वर्णी ग्रथमाला से उस पुस्तिका का प्रकाशन किया।

इस आवृत्ति की प्रस्तावना मे मैने यह सारी कथा लगभग इन्ही शब्दो मे लिखी है। पुस्तक की प्रतिया सोनगढ के जिम्मेदार जनो को मैने स्वय भेजी और उन्हे चुनौती दी कि यदि इसमे कुछ भी गलत या असत्य हो तो वे मुझे सूचित कर, मै उसका सुधार करूगा। परतु किसी को भी उस कथन का विरोध करने का साहस नही हुआ।

इस प्रकार अपने आपको 'स्वय-वुद्ध' के रूप मे स्थापित करने के अभिप्राय से जिसने सिद्धात के पठन को लेकर इतना बडा छल किया हो उसे क्या कहे? "नहि कृतमुपकार साधवा विस्मरन्ति" के नीति वाक्य को अगूठा दिखाकर जिसने "परात्मनिन्दाप्रशसे" का निकृष्ट उदाहरण अपने आपको वना लिया हो, उसे किस आधार पर सम्यग्दृष्टी और मुमुक्षु साधक स्वीकार किया जाय?

विसंगतियो के वीस सूत्र

यदि उसे पथ कहा जा सके तो 'सोनगढ-पथ' अपने जन्म-काल से ही अनेक विसगतियो का गढ वना रहा है। वहा पठन-पाठन की वहुलता को देखकर यह तो नही कहा जा सकता कि उन्हे कुछ भ्रम रहे होगे। वस यही कहा जा सकता है कि प्रारम्भ से ही उन्होने अपने चलने के लिए अलग और अनोखे मार्ग चुनने की कोशिश की। वर्द्धमानप्रभु के शासन के सारे पारम्परिक व्यवहारो और मर्यादाओ को तोडकर उन्होने साधना के वाजार मे अपना अलग सिक्का चलाने का पग-पग पर प्रयास किया।

सोनगढ के इन अलगाववादी प्रयासो का सबसे बडा दुष्फल यह हुआ कि इस कलिकाल मे रत्नत्रय के तीनो समर्थ निमित्तो की, देव-शास्त्र और गुरु की, उनके द्वारा घोर अवहेलना होती

रही। इनतीनो को उन्होने मोक्षमार्ग का निमित्तवनाने की वजाय अपनी प्रभुता के पोपण का निमित्त बनाया और वार-वार इन पूज्य नामो का दुरुपयोग किया। विसगतियो के सदर्भ मे सोनगढ का वीस सूत्रीय कार्यक्रम इस प्रकार रहा—

1 भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त वर्तमान चौवीस जिनेन्द्रो की उपेक्षा करके श्री कहानजी ने, एक विशिष्ट अभिप्राय से विदेह के सीमधर भगवा न को अपना आराध्य वनाया। उनको मतिया और मन्दिर स्थापित किये जवकि इतिहास मे ऐसी स्थापना को कोई परम्परा नही थी। तीर्थकरो के मन्दिर और मूर्तिया उन्ही के क्षेत्रो मे वनाई जाती हैं, उसके वाहर नही।

2 प्रारम्भ मे श्वेताम्वर परम्परा के अनुरूप सीमधरदेव की प्रतिमाओ मे होठ लाल रग से और नेत्र काले रग से रगने की पद्धति अपनाई। वाद मे प्रतिष्ठाचार्यो और विद्वानो की आपत्ति पर वह पद्धति वद की गई।

3 अपनी महत्ता स्थापित करने के लिए जातिस्मरण के नाटकीय छल-छन्दो का सहारा लिया और असभव चमत्कार फैलाने के प्रयास किए।

4 अपनी महत्ता जताने के लिए सोनगढ के मानस्तभ मे भगवान के फलक के ऊपर अपना स्वय का फलक अपनी आखो के सामने लगवाया और स्वय उसकी परिक्रमा करके आनन्द विभोर होते रहे। बार-बार ध्यान दिलाने पर भी, भगवान की साक्षात् अविनय का वह फलक हटाना या वदलवाना उन्होने स्वीकार नही किया। आज भी वह सोनगढ के मानस्तम्भ मे देखा जा सकता है।

5 अपने चरणो की छाप बडे गौरव के साथ प्रदान करते रहे। यह जानते हुए भी कि गुरु मूढता से ग्रसित उनके भक्त उन

छापो को भगवान के चित्रो के साथ एक ही फ्रेम मे जडकर कमरो मे सजाते है। लौकिक लाभ की आकाक्षाओ से उसे तिजोरी मे रखते है। यह पोपडम नही तो और क्या था ?

6 जिनवाणी के बारे मे श्री कहानजी द्वारा जो विसगतिया चलाई गई, वे सर्वविदित है। इने-गिने आचार्यो को लेकर शेष सभी आचार्यो की अवहेलना की गई। जिन्हे मान्य किया गया, उनका भी समग्र लेखन कभी नही पढा गया।

7 समयसार के सदर्भ मे आचार्य जिनसेन महाराज को सदा अमान्य किया गया।

8 द्रव्यसग्रह इष्ट रहा परन्तु गोमटसार को अनदेखा किया गया। यहा तक कि पण्डित प्रवर टोडरमलजी ने गोमटसार, लब्धिसार और क्षपणासार की टीकाए—वचनिकाए लिखी थी उनका भी कभी प्रचार-प्रसार नही किया गया। इस प्रकार एकागी पठन-पाठन की पद्धति डालकर विवक्षा-विहीन दृष्टि को बढावा दिया गया। मोक्षमार्ग प्रकाशक का आठवा अध्याय अनावश्यक समझा गया।

9 प्रवचन किरणो आदि के नाम से कल्पित साहित्य की रचना की गई। इनमे मूल लेखन के हार्द को तोडा-मरोडा गया और एकान्त को पोषण देने वाली व्याख्याए भरी गई।

10 अध्ययन की पद्धति मे चारो अनुयोग तथा न्याय, व्याकरण और नीति के पठन-पाठन को व्यर्थ घोषित करके, उसे बध-भोग की कथा कहकर आगम की विराधना की गई।

11 मान्य लेखको के सक्षिप्त सस्करण के बहाने छल किया गया। बरैयाजी की प्रवेशिका मे से कुछ प्रश्न लिए, कुछ अपने मन से मिलाए और नाम "लघु सिद्धात प्रवेशिका" रख दिया। छहढाला के लिए दूसरे के सस्करण मे से चित्र ले लिए। उनमे

मनमाने परिवर्तन कर लिए और उस प्रकाशक का, या उस चित्र-कार का कभी उल्लेख तक नही किया।

12 अपने शिष्य-भक्तो से 'द्रव्य-दृष्टि-प्रकाश' जैसी ऊल-जलूल पुस्तको की रचना और प्रचार कराया, उन्हे प्रोत्साहित किया। इस प्रकार भक्तो के मन मे दुविधा और एकात मान्यताए पनपा ने का पाप किया।

13 इसी प्रकार गुरु के सबंध मे विसगतिया पैदा की, और वलाई। व्रत चारित्र को आश्रव का हेतु और अधर्म कहकर स्वयं भी उससे भागते रहे और किसी को कभी उसके लिए प्रोत्साहित भी नही किया। मुनियो को दुर्वचन कहकर अपनी महत्ता बनाए रखने का घिनावना प्रयास किया।

14 भगवान महावीर की वाणी को हम तक पहुचाने वाले ाचार्य भगवतो की घोर उपेक्षा की। उन्हे पग-पग पर अमान्य ोषित किया और उनके साहित्य को अनावश्यक बताकर तिरो-हित किया। केवल अपने कथन की पुष्टि के लिए मात्र उनकी वाही दी गई।

15 मुनियो का अनादर और उनके प्रति ओछे शब्दो का प्रयोग रने के लिए अपने शिविरो में उत्पन्न 'सम्मूर्छन-प्रवचनकारो' ो उकसाया गया। इस प्रकार गाव-गाव मे चारित्रधारियो के ार्ग मे कण्टक बिछाने का दुष्कार्य किया गया।

16 कभी अपने लेखन या प्रवचन मे चारित्र की महत्ता ीकार नही की। चारित्र धारण नही कर पाने का पश्चाताप ी नही दिखाया। उल्टे 'चरितमोह वश लेश न सयम' वाली क्त की दुहाई देकर अव्रती बने रहने मे गौरव महसूस किया।

17 मायाविनी बहिनश्री के दुष्चक्र मे उलझकर आगम रोधी कल्पनाओ का पोषण किया। उसके सम्यक्त्व प्राप्ति की प्रतिया मनवाई। उनमे हिस्सा लिया। उनके जातिस्मरण

की गप को पचाया, स्वय उसके साथी वने, उसका पोषण किया ।

18 जीवन के अन्तिम वर्षो मे भगवान कु दकु द की गाथाओ की तरह 'वहिनश्री वचनामृत' पर प्रवचन देकर पाखण्ड, पोपडम और मिथ्यात्व की नई त्रिवेणी बहाई ।

19 "भगवती चम्पाबैन के तलुवे चाटने से सम्यक्त्व के विना भी बेडा पार हो जाएगा" ऐसा घृणित आश्वासन देकर सम्यग्दर्शन का घोर अनादर किया । इस प्रकार अपने अनुयायियो मे अनास्था का जहर वितरित करते रहे । अपने पीछे भी वही विष-बेल छोड़ गये ।

20 और अन्त मे जड चेतन की प्रथकता के सारे वीतराग विज्ञान को धता वताकर, जीवन-रक्षा की आकाक्षा मे निमित्तो की शरण पाने के लिए, एक अस्पताल से दूसरे मे भटकते हुए, जिस गति के पात्र थे वह गति प्राप्त कर गए ।

समय-समय पर प्रबुद्धजनो ने इन सारी विसगतियो का विरोध किया । इन पर लेख छापे, परन्तु वे प्राय अनसुने रहे । फिर जव पानी सिर के ऊपर से गुजरने लगा तव समाज मे चेतना जागी और कुछ समाज ने, तथा कुछ समय ने उन्हे सिखाया ।

स्वयभू भगवान्

दिगम्बर समाज मे अपनी अद्वितीय महतता स्थापित करने की लालसा के वशीभूत श्री कहानजी ने जिस प्रकार देव-शास्त्र गुरु की अवहेलना की और उनकी मर्यादा को ठेस पहचाई, उसके बीस सकेत यहा इन पृष्ठो पर अकित किए गए है । वे मात्र सकेत है, सोनगढ की पद्धति मे उनका बडा विस्तार है । प्रबुद्ध पाठक यदि निष्पक्ष होकर विचार करेगे तो उन्हे सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि प्रारभ से ही सोनगढ के स्वयभू भगवान् का एक मात्र उद्देश्य रहा है "अपनी महतता ।"

जसे बने वैसे अपने आपको सबसे बडा, देव-शास्त्र-गुरु से भी बडा कहलवाने के लिए हर तरह के प्रयत्न स्वर्णपुरी से किए गए। यहा तक कि इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अशिष्ट भाषा और मिथ्या प्रचार का सहारा लेने मे भी वहा किसी को सकोच नही हुआ। सवस्त्र-मुक्ति की मान्यता के सस्कारो ने श्री कहानजी के चितन को इतना अभिभूत कर रखा था कि एक अनुयोग के एक ही ग्रथ की मात्र कुछ गाथाओ का 'नय-निरपेक्ष' अर्थ करके उन्होने अपने आपको वह समझ लिया, या घोषित कर दिया, जो वे नही थे, और न ही इस पर्याय मे बन सकते थे।

आगमानुसारी तपोधन मुनिराजो के साथ लगने वाले सारे ही विशेषण परिग्रहधारी और अव्रती श्री कहानजी के लिए प्रयुक्त होने लगे और वे उन्हे गौरव की बात मानने लगे। उन्होने कही कभी ऐसे विशेषणो का विरोध किया हो ऐसा कभी सुनने मे नही आया। 'सद्गुरुदेव' उनका रूढ सबोधन बन गया। भावनगर की सडको पर उनके स्वागत मे जो बैनर सडक के आर-पार लटकाया गया उसमे बडे-बड़े अक्षरो मे उन्हे 'सप्तम गुणस्थानवर्ती' और 'भावलिगी मुनि' लिखा गया। उसी बैनर के नीचे से उनकी शोभा यात्रा निकली परन्तु न उन्हे, और न उनके किसी अनुयायी को, उसमे कोई अनौचित्य दिखा। बाद मे तो उनके कैसेट-कव्हर पर उन्हे 'अर्हन्त' भी छाप दिया गया। कमल पर आसीन उनका पदमासन चित्र भी सोनगढ विचार-धारा की प्रमुख पत्रिका मे सालो तक प्रकाशित हुआ। और यह सब हुआ उनकी जानकारी मे, उन्ही के सामने। इस थोथी मानवृत्ति पर जब-जब मेरा ध्यान गया, तब-तब मुझे एक आत्म-दर्शी महापुरुष की ये पक्तिया हठात् याद आती रही—

जो स्वय को समझता सबसे बड़ा है,
वह धर्म से बहुत दूर अभी खड़ा है।

एकान्त की प्रतिष्ठा : अनेकान्त का परिहार

सोनगढ के शिल्पियो ने प्रारम्भ मे ही यह समझ लिया था कि स्याद्वाद और अनेकान्त, या ज्ञान-नय और क्रिया-नय अथवा निश्चय और व्यवहार जैसी आर्ष मान्यताओ के आधार पर सिद्धान्तो का सतमहला तो वन सकता है, परन्तु किसी व्यक्ति, या किन्ही व्यक्तियो का, कीर्तिस्तम्भ उस नीव पर नही वनाया जा सकता। तब अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने का एक ही मार्ग था और वह था "एकान्त का आश्रय लेकर व्यवहार रहित निश्चय का प्रचार।" बस, वही मार्ग उन्होने चुना ।

जैन दार्शनिक जिस एकान्त को आत्मघाती और अनन्त ससार का बीज वता गये है उसे ही अपने अभीष्ट का साधन बनाने का सकल्प शायद सोनगढ-पथ का सबसे अधिक दुर्भाग्य-पूर्ण निर्णय साबित हुआ। यह एक ऐसे मार्ग के अनुसरण का सकल्प था जो केवल अर्द्ध-सत्य था। वह एक दृष्टि से यथार्थ होते हुए भी, अपेक्षाओ-विवक्षाओ से रहित होने के कारण, अयथार्थ था । सम्यग्ज्ञान का बेटा होते हुए भी सम्पत्ति के समान बटवारे के अभाव मे वह एकान्त अपनी पैतृक गरिमा से सर्वथा शून्य था ।

एकान्त-समर्थित इस मार्ग पर एक बार कदम बढा लेने पर श्रीकहानजी को बहुत कुछ ऐसा करना और कहना पड़ा जो उन्हे न करना था, न कहना था । इतिहास बडे दर्द के साथ इस घटना को याद करेगा कि कुमार्ग को तज कर, सन्मार्ग की तलाश में निकला हुआ वह पथिक, यश-ख्याति-लाभ-पूजादि की पेचीदी गलियो मे, बुरी तरह भटकता रहा। अनेकान्त के महल मे प्रवेश पाकर भी, शिखर को छूने का सपना देखने वाला वह निरीह मुमुक्षु, उस महल के एकान्त गलियारो मे कुछ ऐसा खोया कि मरण-पर्यन्त किसी सीढी तक उसका पैर पहुच ही नही पाया ।

अन्त मे उसे जो राह मिली वह उर्ध्वलोक की नही, सिर्फ जसलोक की थी ।

एकान्त की जो विषवेल सोनगढ मे सीचकर दूर-दूर तक फैलाई गई उसके कुफल वहुत शीघ्र सामने आने लगे । कुछ समय के लिये भले ही हमे ऐसा लगा हो कि श्रीकहानजी दिगम्बरत्व की बडी प्रतिष्ठा और वीतराग धर्म का वडा प्रचार कर रहे है, परन्तु शीघ्र ही समय ने स्वय आगे होकर बता दिया कि वह मात्र एक मृग-मरीचिका थी । यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि उन प्रयासो से जिनवाणी के पठन-पाठन की एक नई लहर पूरे देश मे आई। यह भी स्वीकार किया जाना जरूरी है कि उस लहर मे स्वाध्याय की परिपाटी को अपनाकर जिन मुमुक्षुओ ने, या स्वाध्यायी जनो ने, समन्वित दृष्टिकोण के साथ, अनेकान्त के आगन मे स्याद्वाद का अमृत-विरवा रोप लिया, वे कल्याण के भाजन भी बने, परन्तु अधिकाश भोली समाज उसमे ठगाई ही गई ।

श्री कहानजी के जाते ही सोनगढ के तवेले मे जो लतिहाव हुआ है, और सूर्यकीर्ति के रूप मे जिस घोर मिथ्यात्व की वहा प्रतिष्ठा हो रही है, उससे अपने आप स्पष्ट हो गया कि श्री कहानजी ने अपने जीवन भर उन नव-दीक्षित दिगम्बरो को क्या सिखाया। उन्होने अपने "सदगुरुदेव" से कितना क्या ग्रहण किया, इस बारे मे तो कुछ भी कहने की आज आवश्यकता नही रही ।

व्यवहार धर्म को सदा-सर्वदा हेय और त्याज्य मानकर कितने ही लोगो नें पूर्व मे धारण किये हुए छोटे-मोटे व्रत नियम आदि बध का हेतु मानकर छोड दिए। नवीन व्रत धारण करने का तो उस पद्धति मे कोई प्रश्न ही नही था। भगवान का

अभिषेक, अष्टद्रव्य से पूजा-विधान और पचकल्याणक सब कुछ व्यर्थ, सिद्धान्त विरुद्ध और आश्रव-बध का कारण बताया जाने लगा। इसलिये इन सबके प्रति सामान्य जनो में एक अनास्था या उपेक्षा की भावना उत्पन्न होने लगी, पनपने लगी।

समाज मे भितरघात करके जगह-जगह अलगाववादी संस्कृति का पोषण किया गया। जहां सभव हुआ वहा अलग मन्दिर बने और उनके अपने नियम बनाये गये जिनमे व्यवहार धर्म और स्याद्वाद पद्धति की भारी उपेक्षा की गई।

कुछ मन्दिरो में घोषणा करके, ओर शेष मन्दिरो में अघोषित रूप से यह परम्परा डाली गई कि यहाँ केवल सोनगढ विचारधारा के नव-प्रकाशित ग्रन्थो को ही स्थान दिया जायेगा, उन्ही का वाचन हो सकेगा।

सोनगढ से वितरित विद्वानो के अतिरिक्त कोई बाहरी विद्वान यदि कभी आया, या बुलाया गया, तो उसके साथ शर्तें लगायी गई कि केवल निश्चयनय से व्याख्यान करने वाले को ही इस मन्दिर मे स्वीकार किया जायेगा।

निपट निश्चय की भाषा मे बार-बार यह दोहराया गया कि—"अर्हन्त का ध्यान भी काल के समान है, वह व्यभिचारी परिणति है और धर्म नही अधर्म है।"

"जिनवाणी जड है और उससे हमारा कोई उपकार नही हो सकता।"

"जिनवाणो का राग और पर स्त्री का राग एक समान, केवल बध कराने वाला है।"

बार-बार कहा गया कि वर्तमान मे कोई भावलिंगी मुनि हो ही नही सकता। पण्डित टोडरमलजी भले ही लिख गये हो कि "परिणामो की पहिचान करने का तुम्हारे पास कोई साधन नही

है और परिणामो की थिरता का कोई ठिकाना नही है, इसलिये चरणानुयोग की कसौटी लगाकर दिगम्बर साधु को देखते ही योग्य विनय नमोस्तु आदि करना चाहिये। आहार देना चाहिये।" परन्तु इन्होने बिना भेद-भाव के मुनिमात्र को ढोगी, विदूषक, और न जाने क्या-क्या कहा और लिखा।

मुनिराजो की अविनय को और उनकी खोटी आलोचना को प्रवचनकार का विशेष गुण माना जाने लगा और जहाँ अवसर मिला वहां मुनियो का खुला अपमान किया गया। किसी मुनि मे देखे गये किसी दोष को, या कल्पित शिथिलाचार को, बिना नाम लिए सभी मुनिराजो पर थोपकर समग्र मे सबको द्रव्यलिंगी और कुमार्गी का प्रमाण-पत्र दे दिया गया।

यदि कभी किन्ही परिस्थितियो मे किसी मुमुक्षु भाई-बहिन को किसी सभा आदि मे किसी आचार्य या मुनिराज के समीप जाना ही पडा तो उन्होने, अपना तथाकथित सम्यग्दर्शन सुरक्षित रखने के लिये, अपनी गर्दन को वहाँ बडे जतन से 90 डिग्री के कोण मे अकडाकर रखा। मैने अपनी आँखो से वे दृश्य देखे है जब औसत से नीचा आचार पालने वाले, और जिन्होने आगम देखा भी नही ऐसे कोरे प्रवचनकारो ने, अपने अह मे ऐंठते हुवे अपनी चेष्टाओ से और धृष्टता के आचरण से, आगम के अच्छे ज्ञाता, वरिष्ठ, सौम्य मुनिराजो की घोर अविनय की है। उन्होने मुनि के प्रति श्रावक की सामान्य उपचार विनय का भी वहा जाकर निर्वाह नही किया। यह केवल उस थोथे अहकार का ही प्रकटीकरण था जो शुद्ध निश्चय के निपट एकान्त की समुझाइस के द्वारा उनके मन-मस्तिष्क मे भरा गया था।

वास्तविकता को स्वीकारना होगा

यहाँ यह लिखना बहुत आवश्यक है कि सोनगढ-पथ के सभी अनुयायी, या मुमुक्षु मण्डलो के सभी भाई-बहिन एकान्त के ऐसे

कट्टर समर्थक न है और न हो सकते हैं। विशेषकर उत्तर भारत मे बहुसख्य मुमुक्षु तो ऐसे हैं जिन्होने किसी प्रलोभन वशात् नही, वरन् वस्तु-स्वरूप को पाने की आकाक्षा मे ही उस पद्धति का अनुसरण किया है। मैं यह भी विश्वास करता हू कि जो भाई-बहिन इस प्रकार स्व-विवेक से उस पद्धति की ओर आकर्षित हुए है वे वास्तविकता समझ मे आने पर अपनी विचारधारा को आगमानुकूल बनाने मे एक दिन स्वय आगे आयेगे।

यहां यह स्वीकार करना भी मैं आवश्यक समझता हू कि वर्तमान मे सभी मुनिराज या पिच्छीधारी आगमानुकूल ही चलते हो ऐसा नही है। कुछ लोग हैं जो अपनी कमजोरियो के कारण दिगम्बर मुद्रा को लज्जित और पिच्छी को लाछित भी कर रहे है। परन्तु ऐसे कतिपय जनो के कारण पूरे मुनि समुदाय को बदनाम करना महान पाप है। मैं स्वय चारित्र के मार्ग में शिथिलाचार का विरोध करता हू। अपने लेखन द्वारा भी शिथिलाचार की आलोचना करने मे मैंने कभी सकोच नही किया। परन्तु ऐसी आलोचनाए स्थान और व्यक्ति का नाम देकर, प्रमाण-पूर्वक होनी चाहिये। एक-दो कमजोर साधको को आड मे समस्त साधु वर्ग को लाछित करना या अदर्शनीय और अपूज्य कहना न तो श्रावकोचित सज्जनता है और न वह सम्यक्त्व का प्रतीक हो सकता है।

पिछले पृष्ठो मे मैने लिखा था कि —"समय-समय पर प्रबुद्ध-जनो ने सोनगढ पथ को इन 'देव-शास्त्र-गुरु विरोधिनी' विसगतियो का विरोध किया, उन पर लेख छापे, परन्तु वे प्राय. अनसुने ही रहे।" आइये अब स्मरण करते है कि ठीक समय पर विरोध को आवाज उठाने वाले वे विद्वान कौन थे, और उन्होने हमे इस एकान्त से बचाने के लिये क्या परामर्श दिये थे।

क्या सोचते थे हमारे मनीषी

आगम क अभिप्राय से हटकर, देव-शास्त्र-गुरु की मर्यादा का उल्लघन करने वाली, सोनगढ़ की प्रवृत्तियो को दिगम्बर समाज ने कभी बर्दाश्त नही किया। समय-समय पर हमारे पूज्य आचार्यों मुनियो और विद्वानो ने इन विसगतियो का विरोध किया और उनके खिलाफ तीखी आलोचनाओ से भरे आलेख प्रकाशित किये। परन्तु समय की आधी मे विरोध के स्वर प्रायः अनसुने रह गये। उस ओर से तो किसी भी विरोध का कभी कोई उत्तर दिया ही नही गया। वे अच्छी तरह जानते थे कि एकान्त प्ररूपणाए वाद-विवाद मे कभी टिक नही सकती इसलिए उन्होने दो सूत्रो का अनुशरण किया। पहला यह कि उत्तर-प्रत्युत्तर से विरोधी की बात का अधिक प्रचार होता है, इसलिए किसी भी विरोध का उत्तर देना ही नही। केवल अपनी बात को ही दोहराते चलना। सोनगढ का दूसरा सूत्र यह रहा कि 'झूठ को भी सौ बार दोहराया जाये तो वह सच मान ली जाती है,' इसलिए केवल कहते जाना है, और छापते जाना है।

विरोध बहुत किया गया

जैसे-जैसे सोनगढ की पद्धति का अन्य स्थानो पर प्रचार

बढता गया, वैसे-ही-वैसे लोगो की समझ मे यह बात आने लगी कि यह एक नया पथ प्रारम्भ हो रहा है जो भोली समाज को साक्षात् ग्रहीत मिथ्यात्व के दलदल मे फसाने का कार्य कर रहा है। उनका अपने मुनिराजो को 'पशु समान घूमने वाले और काछी-कु जडो के समान रूप धरने वाले' कहा जाना पीडित करने लगा। 'जिनवाणो को परस्त्री के समान' बताया जाना अपमान-जनक लगने लगा, और भगवान की मूर्ति के स्मरण की तुलना 'यम की मूर्ति' से किया जाना वर्दास्त के बाहर लगने लगा। तब सामान्य ग्रहस्थो ने, विद्वानो ने और त्यागियो-मुनियो तथा आचार्य महाराजो ने अपने-अपने स्तर पर उनकी विवेचनाओ का विरोध किया, वक्तव्य प्रसारित किये और लेख लिखे।

दिगम्बर जैन समाज का दायरा बहुत बडा है। उसमे पिछले तीस-पेंतीस वर्षो मे सोनगढ विचारधारा के विरोध मे जो कहा या लिखा गया, उसका यदि सकलन किया जाए तो एक पूरी ग्रन्थमाला ही तैयार हो जाएगी। ऐसे लेखन का कलेवर पूरे सोनगढ साहित्य से किसी भी प्रकार कम नही होगा। समाज की दृष्टि मे वह सब बार-बार आ चुका है। आइये यहा उनमे से कुछ पर दृष्टिपात करे।

आचार्यो-मुनियो के उपदेश

व्यवहार धर्म को लोप करने वाला एकान्त निश्चय का उपदेश आर्प मार्ग के लिए ऐसा घातक था कि प्राय हमारे सभी पूज्य आचार्यो और मुनिराजो ने उस विचारधारा का विरोध किया है और सोनगढ विचारधारा के साहित्य से हमे बचने का परामर्श दिया है। कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं—

- श्री चारित्र-चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य शान्तिसागरजी ने कहा था—

—"दिगम्बर जैन धर्म के नाम पर, जैन सिद्धान्त के विपरीत

यह जो नया मत चलाया गया है, यह कानजी मत ही कहलाएगा। समाज को इससे सावधान रहना चाहिए जिससे दिगम्बर जैन धर्म मे यह मिथ्या विकार पनपने न पावे।"

- उनके द्वितीय पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागरजी कहते थे—
—'कानजीस्वामी के धर्म-विरुद्ध प्रवचनो से समाज को सावधान रहना चाहिए। इसमे जैन सिद्धान्तो का मूलोच्छेद होने की आशका है।"

- आचार्य शान्तिसागरजी के तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री शिवसागरजी ने स्पष्ट निर्देशित किया था—
—"कानजी के मिथ्या साहित्य के प्रचार को रोकना चाहिए। अन्यथा समाज का इससे भारी अहित होगा और इन मिथ्या मान्यताओ से धर्म का मूलोच्छेद हो जाएगा।'

- परमपूज्य आचार्यरत्न देशभूषणजी का आदेश भी यही था—

—"कानजीस्वामी का समस्त साहित्य दिगम्बर जैन धर्म के विरुद्ध है। इसे रोकना चाहिए। दिगम्बर जैन मदिरो से इनका और इनके साहित्य का बहिष्कार करना ही उचित है।"

- उनके शिष्य पूज्य विद्यानन्दजी मुनिराज ने बहुत पहले ही अपना मन्तव्य जताने के लिए एक स्वतन्त्र पुस्तक ही लिख दी थी—'जैन साहित्य मे विकार'। उन्होने अपने तर्को से कहानपथ की धज्जियां उडा दी थी। उनका मत है—

—"ये लोग निश्चय एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि है। इनके शास्त्र कल्याणकारी न होकर घातक कुशास्त्र हैं। उनका पठन-पाठन क्या, अवलोकन तक नही करना चाहिए। उन्हे स्वाध्याय-मण्डलो मे तथा जिन मदिरो मे नही रखना

चाहिए। कानजी ने विकृत साहित्य लिखकर दण्डनीय अपराध किया है और समाज मे भ्रामक स्थिति पैदा कर दी है। सोनगढ से प्रकाशित साहित्य आर्ष परम्परा के विरुद्ध है।"

- पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी ने घोषित किया था—

  —"कानजी का कथन और साहित्य ससार मे डुबाने वाला है।"

- क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र वर्णी ने लिखा है—

  —"आज का यह कानजी शुष्क अध्यात्म तो न स्वय कुछ करना जानता है, और न किसी अन्य करने वाले को सहन कर सकता है। उनकी दृष्टि मे अन्य सब अज्ञानी है। अभिमान के शिखर पर बैठे हुए ये स्वय कोरे अध्यात्मवादी हैं, या अध-श्रद्धालु, रूढिवादी, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि है। इन्होने दिगम्बर जैन धर्म के मूल सिद्धातो को भी बदल दिया है।"

- श्रवणबेलगोल मे 1967 के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर उपस्थित सभी भट्टारको ने अपने सम्मेलन मे सोनगढ साहित्य के बहिष्कार का प्रस्ताव पारित करके समाज को सावधान किया था। प्रस्ताव के शब्द हैं—

  —" ...इस प्रकार कानजी के अनेक मन्तव्य दिगम्बर जैन धर्म से सर्वथा विपरीत, एकान्त-मिथ्यात्व रूप हैं। इनसे धर्म का घात हो रहा है। इसलिए श्रवणबेलगोला महामस्तकाभिषेक मे उपस्थित सब भट्टारक बडे दुख के साथ सर्व समाज को सावधान करते हैं कि ऐसे आर्ष परम्परा विघातक सोनगढ के साहित्य को दिगम्बर जैन साहित्य नही माना जाए और बहिष्कार करके इसे दिगम्बर जैन मदिरो मे नही रखा जाय।"

—वर्धताम् जिनशासनम्/श्रवणबेलगोल/30-3-67

◦ वर्तमान मे सुप्रसिद्ध दिगम्बराचाय पूज्यश्री विद्यासागरजी आगम के उदाहरण और अकाट्य तर्क देकर कहानपथ की एक-एक मिथ्या धारणाओ का खण्डन करते है। इस सदर्भ मे उनके कुछ प्रवचनो का एक सकलन 'प्रवचन-प्रमेय' नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमे व्रत-चारित्र, शुभ और शुद्ध उपयोग तथा अकालमृत्यु आदि के बारे मे श्रीकहानजी की धारणाओ को गलत और आगम-विरुद्ध सिद्ध करते हुए उनकी प्राय सभी मनमानी स्थापनाओ का जोरदार खण्डन किया गया है।

इसके अतिरिक्त पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजो, आचार्यकल्प मुनि श्रुतसागरजी, आचार्यश्री विमलसागर जी, क्षुल्लक सन्मतिसागरजी तथा कर्मयोगी चारुकीर्ति भट्टारकजी श्रवणबेलगोल और ज्ञानयोगी भट्टारकजी मूडबिद्री आदि सभी ने अपने प्रवचनो मे और लेखन मे कहानपथ का खण्डन करते हुए उनके साहित्य को 'मिथ्यात्व-प्रेरित' और 'मिथ्यात्व-पोषक' कहा है तथा समाज को उससे बचने का परामर्श दिया है। पिछली तीन दशाब्दियो के जैन साप्ताहिक और मासिक पत्रो मे तथा विपुल मात्रा मे अन्य प्रकाशित पुस्तको मे इस विषय की अपार सामग्री सामने आई है। बहुत-सा टेप-कैसिट्स मे और डायरी के पन्नो पर सुरक्षित है।

विद्वानो की वाणी

सोनगढ के विरोध मे दिगम्बर जैन समाज को सावधान करने वाले विद्वानो की सूची भी बहुत लम्बी है, परन्तु यहा उनमे से कुछ का ही उल्लेख सम्भव होगा, इसलिए हम कुछ प्रमुख और प्रभावशाली जनो के लेखन को इन पृष्ठो पर उद्धृत कर रहे है। इनमे स्व० युगलकिशोरजी मुख्त्यार 'युगवीर', पूज्य वर्णीजी, स्व० न्यायाचार्य पण्डित महेन्द्र कुमार जी, ब्र रतनचदजी

मुख्त्यार, ब्र बाबू सुरेन्द्रनाथजी, सिद्धान्ताचार्य प. कैलाशचन्दजी तथा बाबूलालजी पाटोदी आदि के लेखन को ही सक्षेप मे यहा दिया जा सकेगा।

श्री युगलकिशोरजी मुख्त्यार—

मेरी भावना के रचयिता और समन्तभद्राचार्य के अनन्य उपासक श्री युगलकिशोरजी मुख्त्यार जैन दर्शन के गहन विचारक तथा शोधकर्ता विद्वान थे। उन्होने श्रीकहानजी का दिगम्बर परम्परा मे स्वागत किया और हजारो श्वेताम्बरो को दिगम्बर बना लाने के लिए उनकी खुलकर सराहना की। अपने प्रसिद्ध पत्र 'अनेकान्त' मे फरवरी 1954 के अक मे मुखपृष्ठ पर श्रीकहानजी का चित्र प्रकाशित किया। परतु, इतना सौजन्य प्रगट करके भी मुख्त्यार साहब ने श्रीकहानजी की एकान्त-समर्थक और भ्रमोत्पादक आगमिक प्ररूपणाओ का, उसी पत्र मे, उसी समय, उतना ही तीखा विरोध किया। विरोध मे उठाये गये उनके तर्क आज तक अनुत्तरित है। इसलिये नही कि किसी ने उनका उत्तर नही दिया, वरन् इसलिए कि उनका कोई उत्तर हो ही नही सकता। मुख्त्यार साहब के तर्को-आक्षेपो मे आगम बोलता है। कुछ स्थल देखे—

यह कोरा एकान्त है

—"श्रीकानजीस्वामी अपने प्रवचन मे कहते है कि "शुद्ध आत्मा के अनुभवन से वीतरागता होती है और वही वीतरागता जैन धर्म है। जिससे राग की उत्पत्ति हो वह जैन धर्म नही है।" आपका यह कथन सर्वथा एकान्त दृष्टि से आक्रान्त है, व्याप्त है। जन दशन का ऐसा कोई भी नियम नही जिसमे शुद्धात्मानुभव से साथ वीतरागता का होना अनिवार्य कहा जा सके। यह होती भी है, और नही भी होती। शुद्धात्मा का अनुभव हो जाने पर

रागादिक की परिणति चलती है, इन्द्रियो के विषय भोगे जाते है, राज्य किए जाते है और युद्ध लडे जाते है तथा दूसरे भी अनेक राग-द्वेष के काम करने पडते है जिन सबके उल्लेखो से जैन शास्त्र भरे पडे है। इसकी वजह है दोनो के कारणो का अलग-अलग होना।

शुद्धात्मा का अनुभव जिस सम्यग्दर्शन के साथ होता है उसके प्रादुर्भाव मे दर्शन-मोहनीय कर्म की मिथ्यात्वादि तीन तथा चारित्रमोहनीय की अनुन्तानुबधी सम्बधी चार, ऐसी सात कर्म प्रकृतियो के उपशमादिक निमित्त कारण है, परन्तु वीतरागता जिस वीतराग चारित्र का परिणाम है, उसकी प्रादुर्भूति में चारित्रमोहनीय की समस्त कर्म-प्रकृतियो का क्षय निमित्त कारण है। दोनो के निमित्त कारणो का एक साथ मिलना अवश्यभावी नही है और इसलिए स्वात्मानुभव के होते हुए भी, बहुधर वीत-रागता नही होती।"

इस तरह यह स्पष्ट है कि शुद्धात्मा के अनुभव से वीतरागता का होना लाजिमी नही है और इसलिए कानजीस्वामी का एकमात्र अपने शुद्धात्मा के अनुभव से वीतरागता का होना बतलाना कोरा एकान्त है।

—श्री युगलकिशोर मुख्त्यार,

अनेकान्त/जनवरी-54/पृष्ठ 266

इसमे तीर्थ का लोप ही होगा

श्रीकानजीस्वामी अपने प्रवचनो पर यदि कडा अकुश रखे, उन्हे निरक्षेप निश्चयनय के एकान्त की ओर ढलने न दे, उनमे निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का समन्वय करते हुए, उनके वक्तव्यो का सामन्जस्य स्थापित करे, एक-दूसरे के वक्तव्य को परस्पर उपकारी मित्रो के वक्तव्य की तरह मानते हुए

कुदकुदाचार्य के 'ववहार देसिदा-पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे' इस वाक्य को खासतौर से ध्यान मे रखते हुए उन लोगो को, जो अपरभाव मे स्थित हैं, या वीतराग चारित्र की सीमा तक न पहुच कर, साधक अवस्था मे स्थित होकर मुनिधर्म या श्रावक-धर्म का पालन कर रहे हैं, उन्हे व्यवहारनय के द्वारा उस व्यवहार धर्म का उपदेश दिया करे जिसे 'तरणोपाय' के रूप मे तीर्थ कहा गया है, तो उनके द्वारा जिनशासन की अच्छी ठोस सेवा बन सकती है, और जैन धर्म का प्रचार काफी हो सकता है। अन्यथा एकान्त की ओर ढल जाने से तो जिनशासन का विरोध और तीर्थ का लोप ही घटित होगा।

—श्री युगलकिशोर मुख्त्यार,

अनेकान्त/जनवरी-1954/पृष्ठ/269

अविचारित और बेतुकी वचनावली

कानजी स्वामी का पूजा-दान तथा व्रतादिक को धर्म की कोटि से निकाल कर यह कहना कि उनका करना 'धर्म' नही है, और इस कथन के लिए जैनमत तथा जिनेन्द्र भगवान की दुहाई देते हुए यह प्रतिपादन करना कि— 'जैनमत मे जिनेश्वर भगवान ने व्रत-पूजादि के शुभ भावो को धर्म नही कहा है, आत्मा के वीतराग भाव को ही धर्म कहा है।" यह कितना असगत तथा वस्तुस्थिति के विरुद्ध है, इसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते है।

मै तो यहाँ इतना ही कहना चाहता हू कि यह सब कथन जिन-शासन के एकागी अवलोकन का, अथवा उसके स्वरूप विषयक अधूरे एव विकृत ज्ञान का परिणाम है। जब श्री कुदकु द तथा स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् एव पुरातन आचार्य, जो कि

जन धर्म के आधार स्तम्भ माने जाते है, पूजा-दान व्रतादिक को धर्म का अग वतलाते है, तव जैनमत और जिनेश्वर देव का वह कौन-सा वाक्य हो सकता है जो धर्म रूप मे इन क्रियाओ का सर्वथा उत्थापन करता हो ? कोई भी नही हो सकता। शायद इसी से ऐसा कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सका।

अत्यन्त खेद की वात तो यह है कि इतने पर भी जो आचाय या विद्वान पूजा-दान-व्रतादिक को धर्म प्रतिपादित करते हैं, उन्हें 'लौकिक-जन' तथा 'अन्यमती' तक कहने का दुस्साहस श्रीकानजी स्वामी द्वारा किया गया है। यह वडा ही चिन्ता का विषय ह। इस विषय मे कानजी महाराज के शव्द इस प्रकार है—

—"कोई-कोई लौकिकजन तथा अन्यमती कहते हैं कि पूजादिक तथा व्रत क्रिया सहित हो वह जैनधर्म है, परन्तु ऐसा नही है। देखो, जो जीव पूजादिक शुभ राग को धर्म मानते है, उन्हे 'लौकिकजन' और 'अन्यमती' कहा है।"

इन शब्दो की लपेट मे जाने-अनजाने श्री क दकु द, समन्तभद्र, उमास्वामी, सिद्धसेन, पूज्यपाद, अकलक और विद्यानन्दि आदि सभी महान् आचार्य आ जाते हैं, क्योकि इनमे से किसी ने भी शुभ भावो का जैन धर्म मे निषेध नही किया है, प्रत्युत इसके, उन सबने अनेक प्रकार से उनका विधान किया है।

ऐसो चाटो के महान् आचार्यो को भी 'लौकिकजन' तथा 'अन्यमता' वतलाना दुस्साहस का ही नही, किन्तु धृष्टता की भी हद हो जाती है। ऐसा अविचारित एव वेतुकी वचनावली शिष्टजनो को बहुत अखरती है तथा असह्य जान पडती है।

—श्री युगलकिशोर मुख्त्यार

—अनेकान्त/जुलाई-1954/पृष्ठ6।

जैन आगम के प्रकाण्ड विद्वान् और तार्किक समीक्षक पण्डित युगलकिशोर जी मुख्त्यार "युगवीर" ने अपने विस्तृत आलेखो मे जिस प्रकार श्री कहानजी की एकान्त और विवक्षा-विहीन मान्यताओ का सशक्त विरोध किया और उसकी जैसी कटु आलोचना अपने पत्र मे की, उसके कुछ उद्धरण हम पिछले पन्नो पर पढ चुके है। मुख्त्यार साहब ने आज से तीस-बत्तीस साल पहले ही यह बात समझ ली थी कि श्रीकहानजी द्वारा जैन समाज मे एक चौथे सम्प्रदाय की नीव डाली जा रही है। इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से उन्होने अपने आलेख मे उजागर कर दिया था, वह चेतावनी हम यहा उद्धत कर रहे है—

आचार्य समंतभद्र और कुन्दकुन्द का अपमान

कानजी महाराज के प्रवचन बराबर एकान्त की ओर ढले चले जा रहे है। इससे अनेक विद्वानो का आपके विषय मे अब यह ख्याल हो चला है कि आप वास्तव मे कुन्दकुन्दाचार्य को नही मानते, और न स्वामी समतभद्र जैसे दूसरे महान् जैनाचार्यों को ही वस्तुत मान्य करते हैं। क्योकि उनमे से कोई भी आचार्य निश्चय तथा व्यवहार दोनो मे किसी एक ही नय के एकान्त पक्षपाती नही हुए है, बल्कि दोनो नयो का परस्पर सापेक्ष, अविनाभाव सम्बन्ध को लिये हुए, एक दूसरे के मित्र रूप मे मानते और प्रतिपादन करते आये है, जबकि कानजी महाराज की नीति कुछ दूसरी ही जान पडती है।

कानजी महाराज अपने प्रवचनो मे निश्चय अथवा द्रव्यार्थिक नय के इतने एकान्त पक्षपाती बन जाते हैं कि दूसरे नय के वक्तव्य का विरोध तक कर बैठते है। उसे शत्रु के वक्तव्य रूप मे चित्रित करते हुए 'अधर्म' तक कहने के लिये उतारु हो जाते है। यह विरोध ही उनकी सर्वथा एकान्तता को लक्षित कराता है और उन्हे श्री कुन्दकुन्द और स्वामी समन्तभद्र जैसे महान्

आचार्यो के उपासको की कोटि से निकालकर अलग करता है, अथवा उनके वैसा होने का सन्देह पैदा करता है। इसी कारण श्री कहानजी का अपनी कार्यसिद्धि के लिये कुन्दकुन्दादि की दुहाई देना प्राय वैसा ही समझा जाने लगा है, जैसा कि कांग्रेस सरकार गाधीजी के विषय मे कर रही है। वह जगह-जगह गाधीजी की दुहाई देकर, और उनका नाम ले लेकर, अपना काम तो निकालती है, परन्तु गाधीजी के सिद्धान्तो को वस्तुत: मानती हुई नजर नही आती।

जैन समाज मे यह चौथा सम्प्रदाय

कानजी स्वामी और उनके अनुयायियो को प्रवृत्तियो को देखकर कुछ लोगो को यह भी आशका होने लगी है कि कही जन समाज मे यह चौथा सम्प्रदाय तो कायम होने नही जा रहा है? यह तो दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासो सम्प्रदायो की कुछ-कुछ ऊपरी बातो को लेकर तीनो के मूल मे ही कुठाराघात करेगा और उन्हे अध्यात्मिकता के एकान्त गर्त मे धकेलकर, एकान्त मिथ्यादृष्टि बनाने मे यत्नशील होगा। श्रावक तथा मुनि धर्म क रूप मे सच्चारित्र तथा शुभभावो का उत्थापन कर लोगो को केवल 'आत्मार्थी' बनाने की चेष्टा मे सलग्न रहेगा। उनके द्वारा शुद्धात्मा के गीत तो गाये जायेगे, परन्तु शुद्धात्मा तक पहुचने का मार्ग पास मे न होने से लोग 'इतो भ्रस्टास्ततो भ्रष्टा' की दशा को प्राप्त होगे। उन्हे अनाचार का डर नही रहेगा, वे समझेगे कि जब आत्मा एकान्तत अबद्ध-स्पृष्ट है, सर्व प्रकार के कर्म बधनो से रहित शुद्ध-बुद्ध है, और उस पर वस्तुत किसी भी कर्म का कोई असर नही होता, तब बन्धन से छूटने तथा मुक्ति प्राप्त करने का यत्न भी कैसा?

पापकर्म जब आत्मा का कुछ भी बिगाड नही कर सकते तब उनमे प्रवृत्त होने का भय कौन करेगा? पाप और पुण्य दोनो

समान, दोनो ही अधर्म ठहरेगे तब पुण्य जैसे कष्ट-साध्य कार्य मे कौन प्रवृत्त होना चाहेगा ? इस तरह यह चौथा सम्प्रदाय, किसी दिन पिछले तीनो सम्प्रदायो का हितशत्रु बनकर, भारी सघर्ष उत्पन्न करेगा और जैन समाज को वह हानि पहुचायेगा जो अब तक तीनो सम्प्रदायो के सघर्ष द्वारा नही पहुच सकी है, क्योकि तीनो मे प्राय: कुछ ऊपरी बातो मे ही सघर्ष है, भीतरी सिद्धात की बातो मे नही। इस चौथे सम्प्रदाय द्वारा तो जिन-शासन का मूल रूप ही परिवर्तित हो जायेगा। वह अनेकान्त के रूप मे न रहकर आध्यात्मिक एकान्त का रूप धारण करने के लिये बाध्य होगा।

— **श्री युगलकिशोर मुख्त्यार,**

अनेकान्त/जुलाई/1954/पृष्ठ 8

आज मुख्त्यार साहब की उपरोक्त पक्तिया पढते समय ऐसा लगता है जैसे वह व्यक्ति जैन समाज के भविष्य का स्पष्ट अवलोकन कर रहा था। श्री कहानजी और उनके अधानुयायियो के बारे मे उस महापुरुष की एक-एक भविष्यवाणी सौ प्रतिशत सच होती चली जा रही है। हम देखते है कि वह 'चौथा सम्प्रदाय' अब कल्पना की वस्तु नही रह गया, वह बन गया है।

'अनेकान्त' पत्रिका मे लेख प्रकाशित करके मुख्त्यार साहब निश्चित नही बैठे। वे बराबर अपनी लेखनी से, और चर्चा के द्वारा, इस आगम विरोधी नवोदित मार्ग का खण्डन करते रहे और अपेक्षा करते रहे कि कुन्दकुन्दाचार्य की पवित्र वाणी को मूलाधार बनाकर चलने वाले उन लोगो को सुबुद्धि आयेगी और वे जिनवाणी का परम-प्रशस्त्र अनेकान्त पथ पकडकर अपनी चाल सुधार लेगे। परन्तु ऐसा न होना था, न हुआ।

समाज के लिये मगलकामना करते हुए मुख्त्यारजी ने अपनी

मनोवेदना को जिन शब्दो में आकार दिया वे इस प्रकार हैं—

—"जहां तक मैं समझता हूं, कानजी महाराज का ऐसा कोई अभिप्राय नहीं होगा जो उक्त चौथे सम्प्रदाय के जन्म का कारण हो परन्तु उनकी प्रवचन शैली का जो क्रम चल रहा है और उनके अनुयायियों द्वारा जो मिशनरी प्रवृत्तियां प्रारम्भ हो गई हैं, उनसे वैसी आशंका का होना या भविष्य मे वैसे सम्प्रदाय की सृष्टि हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। अत कानजी महाराज की इच्छा यदि सचमुच चौथे सम्प्रदाय को जन्म देने की नहीं है, तो उन्हें अपने प्रवचनो के विषय में बहुत सतर्क एवं सावधान होने की जरूरत है। उन्हे केवल वचनों द्वारा ही अपनी पोजीशन को स्पष्ट करना पर्याप्त नही बल्कि व्यवहारादिक के द्वारा भी ऐसा सुदृढ प्रयत्न करने की जरूरत है जिससे उनके निमित्त को पाकर, वैसा चतुर्थ सम्प्रदाय भविष्य मे खडा न होने पावे, साथ ही लोक-हृदय मे जो आशका उत्पन्न हुई है, वह दूर हो जाये।"

इसे काल का दोष, और सबधित जनो की हठग्राहिता ही कहा जायेगा कि विद्वानो के ऐसे तर्कपूर्ण और सामयिक कथन एकदम व्यर्थ गये और श्री कहानजी की गाडी अपनी निर्धारित एकान्त-पटरियो पर अपनी गति से गतिमान बनी रही। तब निराश होकर मुख्त्यार साहब ने पुन अपने मन की टीस को आकार दिया—

वे सब कुछ पी गये

—"मेरे निवेदन को पाच महीने का समय बीत गया, परन्तु खेद है कि अभी तक कानजी स्वामी की ओर से उनका कोई वक्तव्य मुझे देखने को नही मिला, जिससे अन्य बातो को छोडकर कम-से-कम इतना तो मालूम पडता कि उन्होने अपनी पोजीशन का क्या कुछ स्पष्टीकरण किया है ? उस समस्या का क्या हल निकाला है जो उनके सामने रखी गई थी ? उन आरोपो का किस

रूप मे परिमार्जन किया है जो उन पर लगाये गये है, और लोक-हृदय मे उठी तथा मुह पर आई हुई आशकाओ को निर्मूल करने के लिये क्या कुछ प्रयत्न किया गया है ?

मैं बराबर श्री कानजी महाराज के उत्तर तथा वक्तव्य की प्रतीक्षा करता रहा हू । एक दो बार श्री हीराचन्दजी वोहरा को भी लिख चुका हू कि वे उन्हे प्रेरणा करके उनका वक्तव्य आदि शीघ्र भिजवाये, जिमसे लगे हाथो उस पर भी विचार किया जाये, और अपने से यदि कोई गलती हुई हो तो उसे सुधार दिया जाये, परन्तु अत मे वोहराजी के एक पत्र को पढकर मुझे निराश हो जाना पडा । जान पडता है कानजी स्वामी सव कुछ पी गये है। इतने गुरुतर आरोपो की भी अवाछनीस उपेक्षा कर गये और कोई प्रत्युत्तर, स्पष्टीकरण या वक्तव्य देना नही चाहते । वे जिस पद मे स्थित है उसकी दृष्टि से उनकी यह नीति बडो ही घातक जान पडती है ।"

भविष्य मे भारी हानि की आशंका

कानजी महाराज की ओर से उन पर किये गये आक्षेपो के बारे मे वक्तव्य न देने से उल्टा उनके अहकार का द्योतन होता है, और दूसरी भी कुछ कल्पनाओ को अवसर मिलता है। अत उनका इस विषय मे यह मौन कुछ अच्छा मालूम नही देता। उससे भविष्य मे हानि होने की भारी सभावना है। भविष्य में यदि वैसा कोई चौथा सम्प्रदाय स्थापित होने को हो तो स्वामीजी के शिष्य-प्रशिष्य कहसकते है कि यदि स्वामोजी को यह सम्प्रदाय इष्ठ न होता तो वे पहले ही इसका विरोध कर देते जब उन्ह इस का कुछ सूचना मिली थी। परन्तु वे उस समय मौन रहे है अत "मौन सम्मति लक्षणम्" की नीति के अनुसार वे इस चौथे सम्प्रदाय की

स्थापना से सहमत थे ऐसा समझना चाहिये। इतना भर नहीं, वरन किसी विषय मे परस्पर मतभेद होने पर उन्हे यह भी कहने का अवसर मिल सकेगा कि स्वामीजी कुन्दकुन्द आदि आचार्यों का गुणगान करते हुए भी उन्हे वस्तुत जैनधर्मी नही मानते थे, वे उन्हे लौकिक-जन' तथा 'अन्यमती' समझते थे, इसी से जब उन महान् आचार्यो का वैसा कहने का आरोप लगाया गया था, तब वे मौन ही रहे थे उन्होने उसका कोई विरोध नही किया था।"

श्री युगलकिशोर मुख्त्यार,

अनेकान्त/नवम्बर-1954/पृष्ठ 140.

अपने युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध आगम-निष्ठ और सस्कृति-सेवी महान् विद्वान की इन पक्तियो को उद्धृत करते समय आज मै यह अनुभव करता हू कि इस भोली समाज की आखे खोलने वाला इससे तीखा औजार और कोई हो ही नही सकता था। परन्तु उस अभिशापित कालखण्ड मे, एकान्त की वह आंधी इतनी वेगवती सिद्ध हुई कि उसके धूल-धक्कड से अच्छो-अच्छो की आखे मुदी ही रह गई। फिर भी आज, जबकि उस आधी का सिर्फ गुबार ही शेष है, हम भलीभाति देख पा रहे है कि हमारे मनीषियो द्वारा ठीक समय पर, ठीक भाषा मे उकेरे गये ये समय के शिलालेख, मील के पत्थरो की तरह हमे सही मार्ग सुझाने मे पूरी तरह समर्थ है। आवश्यकता है केवल निराग्रही मन से उनकी ओर देखने की।

श्री गणेशप्रसाद वर्णी—

आगम और युक्ति के द्वारा सोनगढ की मिथ्या-प्ररूपणाओं का विरोध करने वाले श्री युगलकिशोर मुख्तयार कोई अकेले विद्वान या विचारक नही थे। मूल आम्नाय के अनेक निस्पृही

विचारको ने स्पष्ट शब्दो मे समय-समय पर समाज का सचेत करने का प्रयास किया है। पूज्य श्री वर्णीजी तो कहते थे कि यदि एकान्त की ऐसी हठ न होती तो किसी मिथ्या-मत का जन्म ही न हुआ होता।

उनका साहित्य ससार मे डुबाने वाला है

105 श्री क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज समयसार के मर्मज्ञ थे। अमृतचद आचार्य की आत्मख्याति टीका और कलश उन्हे कण्ठस्थ थे और वे प्राय उनका पाठ किया करते थे। निमित्तो की सर्वथा उपेक्षा करके, मात्र उत्पादन का गुणगान उन्होने भी आगम विरुद्ध निरुपति किया। सोनगढ साहित्य के बारे मे एक बार उन्होने लिखा था कि—"भैया, कानजी स्वामी से कोई विरोध नही है, किन्तु वे जो कहते हैं वह, और उनका साहित्य ससार मे डुबाने वाला है।"

कानजी का नया पथ/पृष्ठ 3

'ज्ञानावरणादि कर्म कुछ नही करते, अपनी योग्यता से ही ज्ञान मे कमी होती है, सम्यग्दृष्टि का शुभोपयोग सर्वथा ही बध का कारण नही है, यह सब कानजी का कथन ठीक नही है। मेरा तो विश्वास है कि जिसको मोक्षमार्ग रुचता है, उसको जिनदेव की भक्ति भी रुचती है। जिसे भक्ति नही रुचती वह मोक्षमार्गी नही, ससार मार्गी है।

भैया, कोई भी मनुष्य हो, कानजी की जरासी भूल पकडे रहने से वह ससार मे डुबोने का मार्ग है। वह जो हजारो को भले की बात कहते हो, वह तो उनको उल्टा डूबने का मार्ग है। यह उनका मिथ्यात्व का अश बुरा है, यह कानजी कषाय के उदय से बोलता है। इसलिये उसे जाकर समझाओ तो मान जाये।

यदि नही, तो इससे समाज का और धर्म का अहित होगा। निमित्त कारण को निमित्त मान लेते तो सब हो जाता।

श्री गणेशप्रसादजी वर्णी;

प्रवचन टेप/ईसरी/31-3-57

हठ न होती तो कुमत न चलते

"दिल्ली से इटावा जाते हुए मार्ग मे कुरावली आये। यहाँ पर जो पण्डित है वे उपादान को ही मुख्य मानते हे। निमित्त हाजिर हो जाता है, इस हाजिर शब्द का अथ क्या शून्य है ? कहा तक कहा जाये, विवाद के सिवा कुछ नही। हठवाद का उत्तर यथार्थ होना कठिन है। यदि मनुष्यो को हठ न होती तो 363 कुमत न चलते।" आत्मा के अभिप्राय असख्य है, अत. उतने ही विकल्प मतो के हो सकते है। सग्रह से 363 बतला दिये। तात्विक दृष्टि जब आती है तब सर्व पक्षपात विलय होते है।

श्री गणेशप्रसादजी वर्णी;

वर्णी-दर्शन/पृष्ठ 176

यह कालकूट दृष्टि विष है

"नियतिवादियो ने नियति भूत को सर्वज्ञ का पल्ला पकडा दिया है। वे अनन्त नियति (त्रिकालज्ञता) के बिना सर्वज्ञता की कल्पना भी नही कर सकते। इस नियतिवाद की श्रद्धा को अनन्त पुरुषार्थ का नाम दिया जाता है। यह कालकूट विष, कुन्दकुन्द, अध्यात्म, सर्वज्ञ, सम्यग्दर्शन और धर्म की शक्कर में लपेटकर दिया जा रहा है। यह कालकूट दृष्टिविष है। इस नियतिवाद के भूत की दाढी पकड़कर हिला दीजिये और इस श्रोत्र-विष से नई पीढी को बचाइये।"

व्यवस्था के सर्वथा विपरीत है

नियतिवाद मे न कुछ करना है, न विचारना है। एक ही बात

है, "जा होगा सो होगा"। सर्वज्ञ के ज्ञान मे सब होनहार झलक चुका है।

०० इस नियतिवाद मे एक ही प्रश्न है और एक ही उत्तर। "ऐसा होना ही था" यही उत्तर प्रत्येक प्रश्न का है। शिक्षा, दीक्षा, सस्कार, प्रयत्न और पुरुषार्थ, सबका उत्तर भवितव्यता। न कोई तर्क है, न कोई पुरुषार्थ और न कोई बुद्धि।

अग्नि से धुआ क्यो हुआ ?

ऐसा होना ही था।

फिर ईंधन गीला न रहने पर धुआ क्यो नही हुआ ?

ऐसा ही होना था।

जगत मे पदार्थों के सयोग-वियोग से विज्ञान सम्मत अनन्त कार्य-कारण भाव है। अपनी उपादान योग्यता और निमित्त सामग्री के सतुलन मे उनसे परस्पर प्रभावित, अप्रभावित या अर्द्ध-प्रभावित कार्य उत्पन्न होते है। इस तरह जगत मे जो अनन्त कार्य उत्पन्न हो रहे हैं, उनमे वे द्रव्य जो परिणमन करते है, वे उपादान बनते है और शेष निमित्त होते है। कोई साक्षात्, कोई परम्परा से। कोई प्रेरक, कोई अ-प्रेरक। कोई प्रभावक और कोई अ-प्रभावक। यह तो योगायोग की बात है। जिस प्रकार की बाह्य और आभ्यतर सामग्री जुट जाती है, वैसा ही कार्य हो जाता है।

०० ऐसी स्थिति मे नियतिवाद का आश्रय लेकर, भविष्य के सबध मे कोई निश्चित बात कहना, अनुभव-सिद्ध कार्य-कारण-भाव की व्यवस्था के सर्वथा विपरीत है।"

प. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

जैन दर्शन/पृष्ठ 102-3

ये कुन्दकुन्द के अवतार

सोनगढ मे यह प्रवाद है कि श्री कानजी स्वामी कुन्दकुन्द के

जोव है, और वे कुन्दकुन्द के समान 'सदगुरु' रूप से पुजते हैं। वहाँ सदगुरु भक्ति ही विशिष्ट आकर्षण का कार्यक्रम है। वहा से नियतिवाद की आवाज अब फिर से उठी है, और वह भी कुन्दकुन्द के नाम पर उठी है। भावनीय पदार्थ जुदा है, उनसे तत्व व्यवस्था नही होती, यह मै पहले लिख चुका हू। यो ही भारतवर्ष ने नियतिवाद और ईश्वरवाद के कारण, तथा कर्मवाद के स्वरूप को ठीक नही समझने के कारण, अपनी यह नितान्त परतत्र स्थिति उत्पन्न कर ली थी। किसी तरह अब नव-स्वातत्रयोदय हुआ है। इस युग मे वस्तु-तत्व का वह निरुपण होना चाहिये जिससे सुन्दर समाज-व्यवस्था तथा व्यक्ति का निर्माण हो। धर्म और अध्यात्म के नाम पर, और कुन्दकुन्दाचार्य के सुनाम पर आलस्य-पोषक नियतिवाद का प्रचार न हो। हम सम्यक् तत्व-व्यवस्था को समझे और समन्तभद्र आदि आचार्यो के द्वारा परिशीलित उभयमुखी तत्व-व्यवस्था का मनन करे।

प महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य

अनेकान्त/सितम्बर, 1948/पृष्ठ 341

मूल सिद्धान्तो पर कुठाराघात

जिन मनुष्यो मे सवस्त्र मुक्ति के सस्कार वने हुए हैं, वे अपने पूर्व सस्कार वश, ऐसा मानते है कि सवस्त्र गृहस्थ को भी शुद्धोपयोग या निश्चय चारित्र होता है, जो कि मोक्ष का साक्षात् कारण है। गृहस्थ के शुद्धोपयोग मान लेने पर, उसको मुक्ति अनिवार्य होने से, सवस्त्र मुक्ति का प्रसग आ जायेगा। इस प्रकार इन उपदेशो के द्वारा, दिगम्बर समाज मे सम्मिलित होकर, दिगम्बर समाज के मूल सिद्धान्तो पर कुठाराघात किया जा रहा है।

ब्रह्मचारी रतनचन्द मुख्तार

जैन दर्शन/16-2-65

सब कुछ चौपट हो जायगा

अध्यात्म सीखकर भी उसके अनुसार जीवन प्रवृत्ति करने की तो उनमे शक्ति नही है, परन्तु अन्य सारे लौकिक कार्य करने की पूरी-पूरी शक्ति है। व्रतादि धारण करना तो व्यर्थ है। सामायिक करना कवायद करने के अतिरिक्त कुछ नही। यदि इसी का नाम अध्यात्म है धर्म है, तो बस है। यह स्वच्छद प्रवृत्ति कोरे अध्यात्म की वह विषैली देन है जिसने सर्व तीर्थ-प्रवृत्ति का विच्छेद कर दिया। ऐसे अवास्तविक धर्म का प्रचार भी किस काम का जिससे सब कुछ चौपट हो जाये।

क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णीजी

पुरुषार्थ व्यर्थ ठहरेगा

वर्तमान पर्याय, जो अशुद्ध हो रही है, उसे सर्वथा लक्ष्य मे न लिया जाये तो, स्वभाव तो त्रिकाल शद्ध है, अभेद है, एक है, बन्ध-मोक्ष से प्रथक है, उसमे सुधार एव बिगाड सम्भव ही नही, अतएव सर्व पुरुषार्थ व्यर्थ ठहरेगा। वास्तव मे बिगडी तो पर्याय है, उसे ही सुधारना है। उसी के लिए सब उपदेश हैं। किन्तु जिनकी दृष्टि मोहान्धकार के कारण नय-पक्ष से ग्रस्त है वही लोग, जहा सुधार की आवश्यकता है उधर ध्यान नही देते, और प्रमादी हुए मात्र गल्पवाद मे समय यापन कर रहे है।

ब्रह्मचारी सुरेन्द्रनाथजी ईसरी

सस्कृति विकृत हो जायेगी

कानजी स्वामी की कतिपय विचारधाराए जैन-सिद्धान्त के विरुद्ध प्रवाहित है। यदि उनमे सुधार न किया गया तो उससे जैन

समाज मे भ्रान्ति तथा अनेकता फैल जाने की आशका है। इसके साथ जैन संस्कृति के विकृत हो जाने की भी आशका है।

प जीवधरजी न्यायतीर्थ इन्दौर

जैन तत्व विवेक/पृष्ठ 4

हमने उस जहर को उगल दिया

हम वहां सोनगढ मे धारावाही दो वर्ष से भी अधिक रहे। जो अपना भला चाहते है वे इस जहर से बचे। कई वर्ष हम भी फसे रहे और मूर्ख बने। हमसे स्वय कानजी स्वामी ने कहा कि —"जब श्री कुन्दकुन्दाचार्य विदेह गये थे, तब मैं वहां राजकुमार के रूप मे चक्रवर्ती का लडका था। मुझे जाति स्मरण है और मेरा यह सारा तत्वज्ञान सीमधर प्रभु का दिया हुआ है।"

यह कितना सफेद झूठ है, पर हमने तब अपनी मूर्खता से इस पर विश्वास कर लिया था। वहा उनके पिछले जन्म का एक काल्पनिक चरित्र, शास्त्र के रूप मे गुजराती मे भी बना हुआ है। और यह दृश्य समवशरण मन्दिर मे दिखलाया भी गया है, जिससे भोले जीवो को अधभक्त बनाया जा सके। वहा तो केवल पैसे बटोरने का व्यापार है। कर्म-धर्म नाममात्र को नही, बस मान की पुष्टि है। इतने मन्दिर बनवा दिये, यह देखकर लोग बह जाते है।

जब हमें सत्य का ख्याल आया, और कानजी भाई की प्रत्यक्ष अनन्तानुबन्धी कषाय देखी, तब हमने उस जहर को तुरन्त उगल दिया।

पं सरनारामजी बडौत

जैन दर्शन/1-9-64

पं. जगन्मोहनलालजी

सिद्धान्ताचार्य पण्डित जगन्मोहनलालजी शास्त्री ने सोनगढ के विद्वत्सम्मेलन मे बोलते हुए व्यवहार की उपादेयता पर काफी जोर दिया था। बाद मे भी अपनी वाणी से और लेखनी से उन्होने श्रीकहानजी के एकान्त-पक्ष के खिलाफ बराबर अपना चितन समाज के सामने रखा—

एकान्त मान्यता ही मतभेद का कारण है

व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पुण्यबध के कारण होते हुए भी निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्ति के साधक कारण होते है, अत उपादेय हैं। जैनाचार्यो ने निश्चयपथ पर पहुचाने की दृष्टि से व्यवहार का प्रधानता से उपदेश दिया है। पाप की भूमिका से उठाने के लिए, पुण्य को करणीय, प्रयोजनीय आचार्यो ने बताया है। तथा पुण्य का परपरा से मोक्ष प्राप्ति का कारण भी बताया है। पुण्य के साधन द्वारा ही साध्य-रूप निश्चय साक्षात् मोक्ष को प्राप्ति होती है।

इस प्रकार आचार्यो ने व्यवहार धर्म को पुण्यबध का कारण तथा परपरा से मोक्ष का कारण भी बताया है। स्वामी जी उसे मात्र पुण्यबध का ही कारण मानते है, किंतु उसे परपरा से मोक्ष का कारण नही मानते। स्वामीजी की यह एकात मान्यता ही सबमे मतभेद का प्रमुख कारण बनी है। जिनागम मे निश्चय व्यवहार-सापेक्ष कथन किया है और किसी एक भी नय को तिरस्कृत नही किया है।

कथनी से करनी विपरीत है

निश्चयपक्ष (सोनगढ) द्वारा व्रत-दान-पूजादि पुण्य कार्यो को शुभराग व मात्र पुण्यबध व ससार का कारण बताकर, उनको

अधर्म कहते हे। किन्तु ये निश्चयपक्ष वाले स्वय निश्चय धर्म स्वरूप नहीं होते। स्वय व्रत भी स्वीकार नही करके अव्रती जीवन विता रहे हैं। इनकी यह कथनी और करनी की विपरीतता कटु-निंदा का, आलोचना का विषय सर्वत्र वनी हुई है।

व्यवहार परम्परा मोक्ष का कारण

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा व्यवहार सम्यग्दर्शन है। यदि मिथ्या दृष्टि जीव की दृष्टि मिथ्या देव गुरु-शास्त्र से हटकर, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र पर टिकती है तो ऐसे जोव को आत्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यग्दर्शन की भूमिका की प्राप्ति हो मकती है। इसी मे व्यवहार को निश्चय का साधन कहा है। इस प्रकार दान-पूजादि की व्यवहार क्रियायें पाप से विरत कराकर वोतराग मार्ग को प्रशस्त्र वनातो है, अत इससे पुण्यवध होते हुए भी, वीतराग मार्ग का साधकपना भो होता है। अत इसे परपरा से मोक्ष का कारण-साधन मानने मे आपत्ति नही करना चाहिये। इस प्रकार पाप से मुक्ति दिलाने वाले व्रत पूजादि को व्यवहार धर्म कहते हैं, किन्तु अधर्म नही। इसे अधर्म कहना तो दूसरे पक्ष को हार्दिक पीडा पहुचाता है।

पाप तो कुगति और पुण्य सुगति बध का कारण है। जैनाचार्यो ने पुण्य को अधर्म नही कहकर उसे व्यवहार धर्म सज्ञा दी है, किन्तु उसे परमार्थ धर्म नही कहा है। इसलिए अधर्म रूप पाप की भूमिका से ऊपर उठाने वाले पुण्य को अधर्म न कहकर व्यवहार धर्म कहा जावे तो यह विषमता दूर हो सकती है, अन्यथा नही। स्वामीजी इसे समझे।

जगन्मोहनलाल शास्त्री

जैन सन्देश / 22-7-76.

सोनगढ़ और जैन-सन्देश

श्री कहानजी की मान्यताओ के विरोध में बहुत कुछ लिखा जाता रहा है। सोनगढ की निराधार कथनी का जो विरोध दिगम्बर जैन समाज मे हुआ उसमे जैन पत्र और पत्रिकाओ का भी खासा योगदान रहा है। यहाँ हम उनमे से जैन-सन्देश का सक्षिप्त लेखा-जोखा प्रस्तुत कर रहे हैं—

श्री कानजी अपवाद का कारण है

"यदि श्री कानजी स्वय अपनी विरोधाभास रूप प्रवृत्ति पर, अपने प्रवचनो मे सुस्पष्ट प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे तो उत्तम होगा। हम यह जानते है कि तात्विक दृष्टि से पुण्यबन्ध हेय है, किन्तु अशुभ उपयोग को छोडकर, शुभोपयोग में लगने से तो पुण्यवन्ध होता ही है। अत. पुण्यवन्ध के हेय होने से क्या शुभोपयोग रूप परिणाम को भी हेय मानकर, छोडा जा सकता है ?

शुद्धोपयोग तो उपादेय है ही, किन्तु जो शुद्धोपयोग मे नही रम सकते, उन गृहस्थो के लिए तो अशुभ उपयाग की तुलना मे, शुभ उपयोग ही उपादेय हो सकता है। अपेक्षा-भेद के बिना उपादेयता और हेयता का सन्तुलन नही हो सकता।

इसीलिए तात्विक विवेचन के साथ व्यावहारिक विवेचन की भी आवश्यकता है। व्यवहार हेय होते हुए भी, अपेक्षा-भेद से, या अवस्था भेद से उपादेय भी है। जैसा कि आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने, और आचार्य कुन्दकुन्द देव ने भी कहा है "आज के समयसारी अपरम भाव मे ही स्थित हैं, अत व्यवहार-नय के द्वारा ही उपदेश करने के योग्य है ।"

व्यवहार पर दृष्टि न रखने से केवल एकान्तवाद का प्रसग ही नही आता, किन्तु प्रबुद्ध श्रोता को वक्ता की दृष्टि मे भ्रम की प्रतीति भी हुए बिना नही रहती। मेरे पास पिछले दिनो एक विद्वान् मित्र का, जो कानजी स्वामी के प्रशसक रहे हैं, पत्र आया है। उन्होने लिखा है—

हमने सोनगढ मान्यता के कुल ग्रथो का अध्ययन किया है। उसमे ये बाते मिलती हैं—

1 कर्मो को महत्व न देना।

2. निश्चय पहले, व्यवहार पीछे होना।

3. आत्मा हमेशा कर्म-सम्बन्ध के बिना ही रहता है।

4. जप-तप आदि मिथ्या है।

5. जीव दया मे धर्म नही है।

6 जीव हिसा पाप नही है।

जहाँ तक प्रथम दो बाते है उनमे मत-भेद हो भी सकता है, किन्तु शेष चार बाते तो ऐसी नही हैं जिनमे मत-भेद को कोई स्थान हो।

आत्मा को कर्म से अबद्ध देखना अलग वस्तु है, और "आत्मा को ससार अवस्था मे भी कर्म से अबद्ध मानना" जुदी वस्तु है। तप-व्रत आदि की भी ऐसी स्थिति नही है कि उन्हे सर्वथा मिथ्या

मानकर छोड दिया जाय। जीव दया मे धर्म नही है, या जीव हिंसा मात्र पाप नही है, इस प्रकार की बाते नय दृष्टि से तो कही जा सकती है, किन्तु वे व्यावहारिक दृष्टि से तो आपत्ति जनक है।

हम नही समझते कि तात्विक विवेचन मे भी इस प्रकार की बाते क्यो कही जाती है कि जिनसे न तो तत्त्व को लाभ है, और न श्रोता और वक्ता को लाभ है।"

ये पक्तिया किसी विद्वान् के आलेख मे से नही ली गई हैं। यह सहयोगी जैन सन्देश साप्ताहिक के एक सम्पादकीय का उद्धरण है। अपनी बात जारी रखकर श्री कहानजी को सत्परामर्श देते हुए विद्वान् सम्पादक ने इस आलेख मे एक और महत्त्वपूर्ण बात लिखी थी—

"समन्तभद्र स्वामी ने युक्त्यनुशासन मे जिन-शासन के अपवाद के कारणो मे प्रवक्ता का 'वचनानय' और श्रोता के 'कलषाशय' को भो गिनाया है। वर्तमान मे ये दोनो कारण ही कानजी स्वामी के अपवाद के कारण हो रहे हैं।

चारित्र को धर्म कहा गया है

"यदि श्रीकानजी वस्तुनिरूपण को उसी दृष्टि से अपनायें जो कुदकुद और उनके व्याख्याकर अमृतचन्द्रजी सूरि ने अपनाई है, तो इतना विवाद नही फैल सकता था। जिन अमृतचन्द्र ने समयसार का रहस्य उद्घाटित किया, उन्ही ने 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' रचकर उसमे श्रावक के बारह व्रतों का वर्णन किया है। उन्ही आचार्य की समयसार टीका तो ग्राह्य हो, और दूसरा ग्रन्थ अग्राह्य हो यह कैसे हो सकता है। ज्ञान और चारित्र मे से किसी एक की भी स्थिति ऐसी नही है जिसकी उपेक्षा की जा सके। समयसार मे ज्ञानी आत्मा का विवेचन करने वाले आचार्य

कुन्दकुन्द ने ही चारित्र को धर्म कहा है, और श्रावकाचार तथा साधु के आचार रूप से उनके दो भेद किये है।"

—जैन सन्देश/सम्पादकीय/14-5-1964

जैन-सन्देश के विद्वान् सम्पादक श्रीमान पण्डित कैलाशचन्दजी सिद्धान्ताचार्य, पता नही क्यो, श्री कानजी से कुछ अधिक ही प्रभावित रहे। परन्तु उन्हे भी बार-बार सोनगढ के कार्य-कलापो की आलोचना करना पडी। हम उन सारी आलोचनाओ का हिसाब न लेकर यहाँ मात्र एक सम्पादकीय से ही कुछ उद्धरण देना चाहते हैं।

श्री कानजी को पैगम्बर न बनने दे

"गत दशक मे हमने इन मुमुक्षु-मण्डलो मे जाकर स्पष्ट कहा है कि आपके स्वाध्याय मण्डल कम्युनिष्टो के "स्टडी-सकिल" न बन जायें यह ध्यान रखे। इसलाम या कम्युनिष्टो की तरह कुन्दकुन्द को अल्लाह या मार्क्स न होने दें, और समयसार को "कुरान" या "डास-कैपिटल" की जगह रखकर कानजी स्वामी को पैगम्बर या लेनिन न बनने देवे।'

राजनीति को धर्मनीति पर चढा रहे है

चूकि स्वामीजी सुना ही सकते है, दूसरो को सुनने की उनकी परम्परा नही है, तो भी गत वर्ष हमने इनके ही महोत्सव मे कहा था कि "कुन्दकुन्दाचार्य या समयसार के ऊपर अन्य जैनाचार्यो को, और उनकी अनुपम एव कल्याणकारी कृतियो को बलि नही चढाया जा सकता।" किन्तु हम देखते हैं कि जहाँ राष्ट्रपिता गाधी जी ने धर्म को राजनीति पर चढाने का भगीरथ प्रयास किया था, वही ये जाने या अनजाने राजनीति को धर्म-नीति पर चढा रहे है। हमे ज्ञात है कि हमारे सुझावो को सोनगढ

ने उस भाव से नही लिया, जिस भाव से वे दिये गए थे, और दिये जा रहे हैं।

दिगम्बर धर्म के लिए आशका कारक है

यह स्थिति ऐसी है जो दिगम्बर धर्म के लिए आशका कारक है। भोपाल, सनावद, इन्दौर आदि से मिले समाचार सकट-द्योतक हैं, अलार्मिग है। वह सब जानकर हमें वेदना हुई है क्यो-कि हम नाम-स्थापना के जैनी को भी अपना सगा भाई समझते हैं। तब निश्चय-परक वचन वर्गणा का ही महत्त्व और ममत्व क्यो ? यह तो निमित्त-परकता की पराकाष्ठा है कि जीव-पुदगल की प्रथकता का सुबह-दुपहर-शाम सपुट पाठ किया जाय। क्या निश्चय की चर्चा ही पर्याप्त है। यदि नही, तो राजनीतिज्ञो के समान कुन्दकुन्द स्वामी के साथ समवशरण मे होने की चर्चा चलाकर, पूर्व-भव के साथियो के रूप मे कुछ भाई-बहिनो को प्रतिष्ठित कर, व्यक्ति-विशेष की सम्यग्दर्शन प्राप्ति की घोषणा आदि करके, अपनी, या कुछ अपनो की महत्ता को भोले भगतो पर क्यो थोपा जा रहा है ?

उनकी कथनी और करनी में अन्तर है

धर्म के क्षेत्र मे यद्यपि भोपाल आदि की घटनाये अवाछनीय हैं, क्योकि ऐसे प्रदर्शन या आलोचनाओ से ही स्वामी कर्मानन्दजी को पक्षाघात हो गया था, और अन्त समय उनका समाधि-मरण न बन सका। अतएव कुछ समय पहले के इन कानजी-भक्तों, और अब आलोचको से निवेदन है कि वे सयत प्रतिरोध ही करें, और सघ या स्याद्वाद दृष्टि को न छोडे। साथ ही सोनगढ वालो से भी निवेदन है कि वे इन घटनाओ को निश्चय या उपादन

दृष्टि से भी देखें। व्यवहार या निमित्त को ही दोषी न समझें। आत्मानुप्रेक्षण करें, क्योंकि उनकी कथनी और करनी का विशाल अन्तर अब सामने आ चुका है।"

—जैन सन्देश/सम्पादकीय/15-5-1975

विद्वानो के वक्तव्य और पत्रकार-पण्डितो के रुख मे जो बदलाव आया था, उससे यह बात सहज ही समझ मे आती है कि सन् 1975 आते-आते सोनगढ का असली रूप उजागर होने लगा था। श्री कहानजी के बारे मे लोगो का कुछ मोह भग प्रारम्भ हो गया था। हम यह कह सकते है कि वहाँ 1974 मे मार्च के प्रथम सप्ताह मे "परमागम मन्दिर-प्रतिष्ठा" का जो महोत्सव हुआ, वह सोनगढ की वास्तविकताओ को प्रगट करने वाला अवसर सिद्ध हुआ। उस सन्दर्भ की समीक्षा यहाँ करना ठीक होगा।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इस प्रकार की आलोचनाए और चेतावनी देने वाले लेख और सम्पादकीय अनेक जैन पत्रो मे लगातार निकलते रहे है। तर्कपूर्ण विरोध भी किया गया है और ट्रैक्ट, पैम्पलेट, पुस्तिकाओ आदि के रूप मे भी प्रचुर साहित्य समाज के सामने आया है। यहाँ उस सबका उल्लेख न करके, मात्र जैन-सन्देश के ही उदाहरण देने का तात्पर्य केवल यह है कि उस समय विरोधी तो विरोध कर ही रहे थे परन्तु सोनगढ-पथ के समर्थक और सहयोगी कहे जानेवाले विद्वान् भी जब आगम के आलोक मे श्री कहानजी द्वारा प्रतिपादित तत्त्वो का विश्लेषण करते थे तब उन्हे भी वह एकान्तवाद से दूषित, आगम-विरोधी और एकदम अव्यवहारिक दिखाई देता था। इतना भर नही, उस पद्धति मे उन्हे "व्यक्ति पूजा"

और "पोपडम" के अकुर भी दिखाई दे रहे थे। कुछ और उदाहरण देखिए—

मुमुक्षु लकीर के फकीर हैं

कानजी स्वामी तो व्रतादि की चर्चा नही करते। कानजी स्वामी को व्यवहारात्मक रूप से इस प्रमाद को मिटाकर लोगो के सामने ज्ञान की तरह आचार का भी मापदण्ड स्थापित करना चाहिए। क्योंकि उनके मुमुक्षु भी लकीर के फकीर है। जो लकीर स्वामी जी खीच जावेगे उस पर ही वे चलेगे। इसलिए अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति का विवेचन होना ही चाहिए। जैसे वे पूछने पर शुभ को अच्छा बतलाते है, वैसे ही उन्हे प्रवचनो मे भी कहना चाहिए। यदि उनके मुमुक्षुओ मे यह श्रद्धा बैठ गई कि गृहस्थो को रोजगार धन्धा करते-करते, तत्वचिन्तन के द्वारा ही मोक्ष मिल जावगा, तो यह घातक होगा। अभो आप जो मार्ग प्रवर्तित करेगे वही आगे चलेगा। इसलिए हम सावधान करते हैं कि मुमुक्षु भाई विचार कर प्रशस्तमार्ग निर्णीत कर सके। —जैन सन्देश/14 मई 64

यह आत्मवंचना है

होना यह चाहिए कि तत्वनिरूपण के साथ उस तत्त्व को प्राप्त करने का क्रमिक मार्ग भी बतलाया जावे। शुद्ध तात्विक दशा को ही सम्यक् मानकर उससे उतरती हुई दशाओ को मिथ्या कह देने से न तो तत्त्व की रक्षा ही हो सकेगी और न तीर्थ की। केवल पुण्य और पुण्य बन्ध के कारणो के पीछे डण्डा लेकर पड जाने से तो काम होने वाला नही है, जिनके मन मे यह श्रद्धा बैठ जाती है कि मुक्ति के लिए आत्मानुभव के सिवाय और कुछ भी करने को आवश्यकता नही है, और आत्मानुभव घर-गृहस्थी मे आनन्द के साथ रहते हुए हो सकता है, यह आत्म-

वचना, परवचना से बुरी है। अज्ञानता है।

—जैन सन्देश/8-10-67

व्यवहार उपादेय भी है

यदि कानजी स्वामी स्वय अपने इस विरोधाभास रूप प्रवृत्ति पर भी अपने प्रवचनो मे स्पष्ट प्रकाश डालने का कष्ट करे तो उत्तम होगा। तात्विक दृष्टि से कथचित पुण्य हेय है, किन्तु अशुभोपयोग को छोड़ा नही जा सकता। शुद्धोपयोग उपादेय है, किन्तु जो शुद्धोपयोग मे नही रम सकते, उन गृहस्थो को तो अशुभोपयोग की अपेक्षा शुभोपयोग ही उपादेय है। अपेक्षा भेद के बिना उपादेयता और हेयता का सन्तुलन नही हो सकता है। अत तात्विक विवेचन के साथ व्यवहारिक विवेचन होना भी आवश्यक है। अपेक्षा भेद से व्यवहार हेय और उपादेय भी है, जैसे कि कु दकुदाचार्य और अमृतचन्द्रचार्य ने कहा है कि प्राथमिक अवस्था मे साधक को व्यवहार नय हस्तावलबन रूप है। आज सभी अपरम भाव मे ही स्थित हैं, अतः व्यवहार नय के द्वारा ही उपदेश करने योग्य है। व्यवहार नय पर दृष्टि न रखने से, केवल मिथ्या एकातवाद है, जिससे धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति रुकेगी।

—जैन सन्देश/20 11-68.

प० कैलाशचन्द्र जी ने 24-9-70 को श्री बाबूभाई मेहता को अपने पत्र मे लिखा था—

मिथ्यात्व का पोषण होता है

सासारिक भोगो मे लिप्त जनो के सामने जो व्यवहार धर्म को हेय बतलाते हुए त्याज्य बतलाया जाता है, उसकी चर्चा सर्वत्र मैं सुनता आया हूँ। सोनगढ के अपरिपक्व प्रचारको के द्वारा भविष्य मे जैनधर्म के आचार पक्ष को गहरी क्षति पहुचेगी। इस

एकान्तता मे परिवर्तन होना आवश्यक है। यह भी सुना है कि कोई-कोई तो इसी प्रकार के प्रचारक ब्रह्मचर्य का अश्लील चित्रण करते है। बुलन्दशहर के कैलाशचन्द के बारे मे इसी प्रकार की विशेष चर्चा सुनी है। अत इधर ध्यान देने की आवश्यकता है। जिनागम मे ऐसी एकात कथनी और चारित्रहीन प्रवृत्ति से मिथ्यात्व का ही पोषण होता है।

—कैलाशचन्द शास्त्री

जैन सन्देश के पन्नो पर पण्डितजी का इस प्रकार का लेखन बराबर जारी रहा। अपनी लेखनी से उन्होने प्राय स्पष्ट और दो टूक परामर्श सोनगढ पथियो को दिए और श्री कहानजी की खरी आलोचना भी की—

वही धार्मिक द्वन्द्व के कारण हैं

कानजी स्वामी ने दो नयो का विवाद खडा किया है जिससे आपस मे विरोध बढता जाता है। इनके द्वारा पुण्य को विष्टा तुल्य कहना आदि अनेक धर्म विरुद्ध प्रवचन ही धार्मिक द्वन्द्व के मुख्य कारण हैं। आज का जन साधारण जो दिन-रात-विषय कषायो मे सतुष्ट है, वह यदि अपने को अशुभोपयोग से बचाकर शुभोपयोग रूप रहता है तो धर्मात्मा ही है, अधर्मात्मा नही है, अत अशुभोपयोग मे फसे लोगो के सामने शुभोपयोग की निंदा करना और उस पर कठोर प्रहार करना उनकी अज्ञानता है। आज का गृहस्थ श्रावक देवदर्शन, पूजन, शास्त्रश्रवण, दान, सयम आदि छोड देवे और मात्र दो बार समयसार सुनता है तो उससे कल्याण नही होगा।

द्रव्यानुयोग दिमागी व्यायाम है

द्रव्यगुण पर्याय की चर्चा मात्र दिमागी व्यायाम है। इसमे कषाय की मदता नही है, अहकार का रस है, तो वह शुभोपयोगी

भी नही है। शुभोपयोग को हेय बताकर टाल देना सरल है, किन्तु शुभोपयोगी होना कठिन है। आज कौन-सा श्रावक है जो आर्त-रौद्र रूप दुर्ध्यानो से बचा होगा ? कोई नही। किन्तु मुमुक्षु कहे जाने वालो मे इनकी प्रधानता है। वाणी मे वीतराग-विज्ञान का रट है, किन्तु जीवन मे कुछ विशेषता नही है।

मुमुक्षुओ के बाह्यभेष मे तो परिवर्तन हो ही जाता है, किन्तु अतरग मे मलिनता है। चर्या मे कुशल होकर अपने को सम्यग्य-दृष्टि मान ले, किन्तु जब तक प्रवृत्ति मे परिवर्तन न हो तब तक जीवन मे रच मात्र भी वीतरागता नही आ सकती है।

कैलाशचन्द शास्त्री
—जैन सन्देश/15 जुलाई 76.

व्यवहार का कथन करना चाहिए

श्री कानजी स्वामी निश्चय एकात पक्ष ग्रहण करके तथा व्यवहार को सदा गौण करके निश्चयपरक कथनी प्रमुखता से कहते है। तथापि सर्वसाधारण की पहुच निश्चय तक नही होती, अत, उन्हे निश्चय मार्ग पर आरुढ कराने के लिए व्यवहार धर्म का प्रतिपादन भी करना चाहिए, जैसा आचार्यो ने किया है। किन्त स्वामी जी इस परम्परा का निर्वाह नही करके उसकी उपेक्षा करते है। —जैन सन्देश/22 जुलाई 76.

दिगम्बर परम्परा के प्रतिकूल है

उन्ही दिनो पण्डित कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने किन्ही श्री जयचन्द लाल गगवाल को उनके पत्र के उत्तर मे सोनगढ के वर्तमान की पोल खोलते हुए उसके भावी पोपडम का सही अनुमान व्यक्त कर दिया था—

सोनगढ मे चम्पा वहिन को लेकर जो कुछ हो रहा है वह सब अपनी समझ मे तो नही आता। उनका जाति-स्मरण आदि सब अपने गले तो उतरता नही। मैंने वहाँ के कुछ लोगो से बात की, वहाँ भी इस बारे मे दो मत हैं। स्वामी जी उसमे रस लेते हैं, तब वहाँ जो इसे पसन्द नही करते वे भो चुप रह जाते हैं, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ। अपन तो इसे मात्र पोपडम जैसा मानते हैं। इस प्रकार के जाति-स्मरण की बात बनतो नही।

दिगम्बर आम्नाय मे सद्गुरु का तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप ही है। इस सम्बन्ध मे जयपुर से प्रकाशित आत्म धर्म के प्रथम अक मे कानजी से किए प्रश्नात्तर छपे है। उन्हे आप पढ़ जावे। कहते वे भी यही हैं कि दिगम्बर निर्ग्रन्थ सन्त ही सच्चे गुरु है, मगर भक्तों की महिमा अपरम्पार है। उनके अनुयायियो मे तो कानजी स्वामी और चम्पा वहिन पुजेगी, ऐसा लगता है। उनके मन्दिरों मे दोनो की फोटो भी लग गई है। लोग उन्हे नमस्कार भी करते हैं।

वह सब कुन्दकुन्द के अध्यात्म के साथ मेल नही खाता। न यह दिगम्बर परम्परा के ही अनुकूल है। आपका

31-7-76. —कैलाशचन्द्र

इस प्रकार हम पाते हैं कि समाज के प्रवुद्ध-वर्ग ने सोनगढ की एकान्त और आगम-विरोधिनी मान्यताओ का खासा विरोध किया। दुर्भाग्य यह रहा कि आर्थिक समद्धि की चमक-दमक वाले नए पथ को चकाचौध मे अनेक अन्य विद्वान् भी खिच गये और शायद इसीलिए विरोध के ये स्वर उस धारा के प्रचार को समय रहते अवरुद्ध नही कर पाये।

समाज भी जानना चाहती थी

सोनगढ़ पथियो की समाज विरोधी और छल-कपट से भरी

गतिविधियों को कभी समाज ने चुपचाप बर्दाश्त नहीं किया। उनके हर कदम की आलोचना होती थी और हर बात पर समाज का प्रवुद्ध वर्ग उनसे जवाब तलब करना चाहता था। यह अलग बात है कि उस समय इस नए पथ की चमक-दमक ऐसी थी जिसके सामने इस तरह की आलोचनात्मक आवाजे लगातार दवती चली गईं। परन्तु इतिहास कभी सामयिक चमक-दमक के सहारे नही चलता। वह तो हर घटना को वास्तविकता के आधार से समझना चाहता है और उसी पृष्ठभूमि मे उसका मूल्याकन करता है।

मध्य प्रदेश मे छिदवाडा से श्री बिहारीलाल जैन ने 1976 मे ही दिगम्बर जैन समाज के सामने तेतीस प्रश्न विचारार्थ रखे थे। मैं सोचता हू यदि समाज ने समय रहते उन प्रश्नो के उत्तर तलाशने की दिशा मे विचार किया होता तो असलियत सामने आने मे अधिक परेशानी नही थी। मै यह भी समझता हू कि श्री बिहारीलाल जी के द्वारा उठाये गये प्रश्न आज भी उतने ही प्रासगिक है। उन प्रश्नो को यहाँ अकित करना मुझे आवश्यक लग रहा है—

1 "मारो और हमे मार दिया का हल्ला मचाओ" की झूठी नीति अपनायी—किसने ?

2 विद्वानो और श्रीमानो को विधिवत् और सुनियोजित ढग से बदनाम करने की नीति अपनायी—किसने ?

3 निश्चय एकान्त को पकडकर व्यवहार को सर्वथा हेय बताया—किसने ?

4 समस्त प्राचीन आर्ष जैनागम को अपने मनमाने ढग से बदल कर नया रग चढाया—किसने ?

5 साधु और मुनियो का द्रव्यलिंगी कहकर, भिखारी, काछी, जड़ा बताया—किसने ?

6. दिगम्बर जैन मदिरो मे पच परमेष्ठी के सिवाय, अन्य वस्त्रधारी सामान्य अव्रती श्रावक को सद्गुरु देव कहकर उसकी तस्वीरो की पूजा-आरती करवायी —किसने ?

7. वीतराग-विज्ञान की आड मे 'वीतराग-विज्ञान' का कलापूर्ण लूटने का जाल बिछाया—किसने ?

8 पुराने बाल-बोध जैन-धर्म के स्थान पर वीतराग विज्ञान पाठमाला चलायी—किसने ?

9. पूजा, दान, व्रत, उपवास आदि को जड की क्रिया बताकर "महापाप" का दोष लगाया—किसने ?

10 तनख्वाह देकर उपद्रवी युवको को ट्रेड कर जगह-जगह मदिरो, सभाओ और परिषदो मे झगड़ा करवाया-किसने ?

11 अध्यात्मग्रन्थो मे फूहड और अश्लील भाषा का प्रयोग व दृष्टान्त छपाये—किसने ?

12. झूठे कल्पित प्रचार हेतु तार, चिट्ठियो द्वारा पत्रिकाओ और पत्रो मे प्रचार कराया—किसने ?

13 दिगम्बर जैन सम्प्रदाय मे वस्त्रधारी को तीर्थंकर बताया —किसने ?

14 स्त्री को गणधर भगवती, प्रशममूर्ति, परम-पद-साधिका बताया—किसने ?

15 नौ-भव की कपोल-कल्पित जातिस्मरण की झूठी कथा गढकर प्रचार कराया—किसने ?

16 अपने पैरो मे केशर लगाकर, उसे कपडे पर "पागले" उछालकर लोगो को ऊचे दामो पर बेचकर, दिगम्बर आम्नाम को लज्जित कराया—किसने ?

17. अपने पैर थाल में धुलवाकर मुमुक्षुओ को चरणामृत पिला-

कर धर्म पर लाछन लगाया—किसने ?

18. पद तथा स्थिति की योग्यता न होते हुए—स्वय अव्रती, जघन्य श्रावक होते हुए स्वय को परम-पूज्य, परमोपकारी, सद्गुरु देव, अध्यात्म-सत, स्वामी, हा-प्रभो, आदि कहलाया—किसने ?

19 अपने मानस्तम्भ मे अपनी मूर्ति सर्वोपरि लगवाकर आनन्द मनाया—किसने ?

20 विदेह क्षेत्र के सीमन्धर भगवान् के समवसरण मे अपने मौजूद होने की झूठी कथा का प्रचार कराया—किसने ?

21. दिगम्बर जैन मदिरो मे "मात्र सोनगढी साहित्य पढो-सुनो, अन्य मत पढो, मत सुनो, अवसर हो तो उठकर चले जाओ", यह सिखाया—किसने ?

22 दिगम्बर जैन मदिरो मे अपना अलग स्वाध्यायकक्ष स्थापित कर, उस पर ताला लगवाया—किसने ?

23 समाज के सार्वजनिक चन्दे से मगवाये उपक्रम, टेपरिकार्डर, एम्प्लीफायर, लाउडस्पीकर आदि पर अपना इक-तरफा वर्चस्व जमाया—किसने ?

24 नये मदिरो के निर्माण मे जहाँ मूर्तियो पर "भगवान् महावीर के शासन काल मे" लिखा जाता था वहा कानजी का शासन काल, और "श्रीकानजी स्वामी सदुपदेशात" लिखवाया—किसने ?

25. तीर्थरक्षा फण्ड के नाम पर तीर्थक्षेत्रो और मदिर पर सोनगढी कब्जा करने का षड्यन्त्र रचाया—किसने ?

26. एक सामान्य, जघन्य-श्रावक व्यक्ति को तीर्थंकर बनाने का जाल फैलाया—किसने ?

27 घर-घर मे, भाई-भाई मे, सासु-बहू मे, माँ-बेटे मे, पति-पत्नि मे, झगड़ा और वैमनस्य बढाया—किसने ?

28. सोनगढियो को मूल-आम्नाओ से घृणा करना सिखाया—किसने ?

29. क्षमावाणी के पवित्र दिन भी पूरी समाज के एकत्र समुदाय मे से सोनगढी बन्धुओ को उठाकर अलग होकर उनकी क्षमावणी करायी—किसने ?

30. सानगढ़ी पथ मे मिलाने को धन पैसा देकर लोभ-लालच मे फसाने का जाल बिछाया—किसने ?

31 द्रव्य-धन एकत्रित करने और उसका उपयोग दिगम्बर जैन धर्म और समाज के विरुद्ध प्रचार मे खर्च करने का दुष्कृत्य रचाया—किसने ?

32 अपनी जन्म जयन्ती पर मोक्ष जाने के टिकट बेचने का पाखण्ड चलाया—किसने ?

33 आर्ष ग्रन्थो को हाथी के बाहरी दातो के समान थोथा बताया—किसने ?

कहने की आवश्यकता नही कि आज से बारह साल पहले उठाये गये ये प्रश्न, विक्रमादित्य की कथा के बैताल-प्रश्नो की तरह, या पाण्डव-पुराण के यक्ष-प्रश्नो की तरह, आज भी अनुत्तरित है, प्रासगिक है, और सोनगढ की मण्डली की स्वार्थ-प्रेरित मानसिकता को पूरी तरह रेखाकित करते हैं। समाज ने भले ही समय रहते इन प्रश्नो के उत्तर न तलाशे हो परन्तु स्वय सोनगढ के उत्तरकालीन विकास ने इनके उत्तर दिये है। समय की धारा ने इनकी सार्थकता को इतिहास के पन्नो पर सदा के लिये अकित किया है।

विरोध के मामले मे 36 का अंक सार्थक माना जाता है।

सोचता हू आज यदि इनमे तीन प्रश्न और जोड़कर इन्हे 33 से 36 बनाने का प्रयास किया जाय तो वे प्रश्न क्या यही नहीं होगे—

34 पच्चीसवा तीर्थंकर गढकर अपने धर्मायतनो को अनायतन बनाया—किसने ?

35 "एक ही रास्ता" बताकर दिगम्बर जैन समाज मे बिखराव और फट डालने का गर्हित प्रयास किया—किसने ?

36 मायामूर्ति चम्पा बहिन के मूढता भरे "लिप्सा यज्ञ" मे समाज की एकता और वात्सल्य को आहुति बनाकर स्वाहा कर दिया—किसने ?

और इन छत्तीस प्रश्नो का उत्तर मात्र छह अक्षरो मे दिया जा सकता है—**कहान पथ ने**।

विरोध में बहुत लिखा गया

ऊपर यह बात कही जा चुकी है कि कहानपंथ की एकान्त मान्यताओ का विरोध करने के लिए आगम के प्रमाण लेकर समय-समय पर अनेक विद्वानों द्वारा विपुल लेखन किया गया। उसका परिणाम किसी भी प्रकार पूरे सोनगढ-साहित्य से कम नही होगा। यह अलग बात है कि उसका प्रकाशन प्राय स्थानीय स्तर पर इतस्तत होता रहा। किसी एक दो स्थानो से उसके प्रकाशन करने की, या उपलब्ध कराने की योजना नही की गई। इसीलिये आज किसी एक स्थान पर ऐसा समस्त प्रकाशित साहित्य मिलना भी कठिन है, उसकी सूची बनाना भी सम्भव नही। फिर भी मेरे अपने सग्रह में जो पुस्तके हैं उनको सूची यहाँ प्रस्तुत है। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकेगा कि पूरा साहित्य कितना विविध और कितना विपुल होगा।

1 जैन-तत्त्व मीमासा की मीमासा/भाग एक/प बशीधर व्याकरणाचार्य बीना. प्रकाशक बरैयाग्रन्थ माला/पृष्ठ 378/ मूल्य चार रुपये/1972

2 जैन दर्शन मे कार्य-कारण भाव और कारक-व्यवस्था/ प बशीधर व्याकरणाचार्य/प्रकाशक वही/पृष्ठ 136/ एक रुपया साठ पैसा/1973.

3. पर्याये क्रमबद्ध भी होती है और अक्रमबद्ध भी/प बशीधर व्याकरणाचार्य/वीर-सेवा मन्दिर ट्रस्ट वाराणसी/पृष्ठ 28/ एक रुपया पचास पैसे/1984.

4 खानिया तत्त्व-चर्चा की समीक्षा-भाग एक/प बशीधर व्याकरणाचार्य बीना/पृष्ठ 324/इक्यावन रुपये/पण्डित जी पिछले पन्द्रह वर्षों से इस ग्रन्थ के लेखन मे सलग्न है। तीन भागो मे ग्रन्थ समाप्त होने की आशा है। इसमे सोनगढ पथ की मिथ्या-धारणाओ का निराकरण आगम के आधार से किया गया है।

5 निमित्त उपादान कारण/अजितकुमार शास्त्री/शास्त्रीपरिषद्/ 1965

6 नियतिवाद-क्रमबद्ध पर्याय/ब्र. रतनचन्द्र मुख्तार/शास्त्रि-परिषद्/1966

7. पुण्य का विवेचन/ब्र रतनचन्द्र मुख्तार/शास्त्री परिषद्/1967.

8 जैन साहित्य में विकार/विद्यानन्द मुनि/1964

9 श्री गणेशप्रसाद वर्णी के 31-3-57 को टेप किये गये वक्तव्य का आलेख/शास्त्री परिषद्/1966

10 तात्त्विक विचार/अजितकुमार शास्त्री

11 एकान्त-परिहार/प माणिकचन्द कौन्देय/फिरोजाबाद
12 कानजीस्वामी और दिगम्बराचार्य/प मक्खनलालजी/मोरैना
13 श्रीकानजी मत खण्डन/प मक्खनलालजो/मौरैना
14 अध्यात्मवाद की मर्यादा/प सुमेरुचन्द्र दिवाकर/सिवनी
15 तात्त्विक-चिन्तन/प सुमेरुचन्द दिवाकर/सिवनो
16 कानजी स्वामी विवेचना/प चादमलजी चूडीवाल/नागौर
17. सोनगढ अपने ही खेमे मे/नीरज जैन/शास्त्री परिषद् प्रकाशन/ग्यारह सस्करण
18. सोनगढपथ की आगम-विरुद्ध मान्यताएं/ब्र गोकुलचन्द्र जैन/जबलपुर/चार सस्करण
19. जैनाचार्यो की अवहेलना क्यो/श्री जुगलकिशोर मुख्त्यार/शास्त्री परिषद्/1970
20. सोनगढ मत के सबध मे मनीषियो के उदगार/निरजनलाल जैन/श्री शान्तिवीर दिगम्बर जैन सिद्धान्त-संरक्षिणी सभा द्वारा प्रकाशित
21 सोनगढ-समीक्षा/नीरज जैन/महासभा प्रकाशन/1987/आपके हाथ मे ।

शास्त्री परिषद् ने प० बाबूलालजी जमादार के कार्यकाल में इस दिशा मे सराहनीय प्रयास किये हैं। ऊपर दी हुई सूची एकदम अपरिपूर्ण और अव्यवस्थित है। इसे प्रस्तुत करने का अभिप्राय मात्र इतना ही है कि इस विषय को स्पष्ट करने वाला प्रचुर साहित्य समाज के सामने आया है/आ रहा है। उस पर विचार किये जाने की आवश्यकता है।

विरोध का विस्फोट

परमागम मन्दिर की प्रतिष्ठा

सोनगढ मे आचार्य कुदकुद और उनके टीकाकारो की वाणी को शिलाकित कराकर प्रतिष्ठत करने के लिये आगम मन्दिर की रचना की गई थी। इसी "परमागम-मन्दिर" की प्रतिष्ठा के लिये वहाँ मार्च 1974 मे पच-कल्याणक प्रतिष्ठा का समारोह आयोजित किया गया। वास्तव मे होना तो यह चाहिये था कि इस उत्सव के फलस्वरूप सोनगढ की साख और कहानवाणी के प्रचार मे वृद्धि होती, परन्तु महोत्सव के समय अनेक ऐसी घटनाए घटती गई जिनका परिणाम इससे ठीक विपरीत ही हुआ। सोनगढ की विवादास्पद एकान्त शैली और श्री कहानजी के स्वयभू-स्वरूप को लेकर जन-मानस मे जो शकाए पनप रही थी, उत्सव के समय उन शकाओ ने निश्चित रूपाकार ग्रहण कर लिया। इस प्रकार इतिहास इस बात को स्वीकार करेगा कि 1974 का पचकल्याणक उत्सव सोनगढ के लिये, जितना सोचा गया था उतना, लाभकारी सिद्ध नही हुआ। इसी उत्सव मे सोनगढ की अलगाववादी प्रवृत्तियो का भडा फोड हुआ और वही मूल दिगम्बर आम्नाय के प्रति सोनगढ पथियो की निष्ठा पर पहला प्रश्नवाचक लगा।

कल्पना नवीन नहीं थी

आर्ष-ग्रन्थो का इस प्रकार शिलाकन कराने की सूझ सर्वथा नवीन नही थी। सोनगढ से 15 मील दूर प्रसिद्ध श्वेताम्बर तीर्थ पालीताना मे "आगम-मन्दिर" बहुत पहले बन चुका था, उसकी भित्तियो पर तथा-कथित द्वादशाग का लेखन भी वर्षो पूर्व किया जा चुका था। यद्यपि वह लेखन छोटे अक्षरो और भाषा तथा व्याकरण की अशुद्धियो के कारण एक अप्रमाणिक पार्थिव दस्तावेज मात्र बनकर रह गया था। उसमे कल्पना की विशालता, या विशालता की कल्पना नही थी और सौन्दर्य-बोध तथा दर्शनीयता का नितान्त अभाव था। इन दृष्टियो से सोनगढ का परमागम मन्दिर पालीताना के प्रयत्न का अधिक विकसित और सुसयोजित रूप था। बनारस मे सुरेखा ट्रस्ट द्वारा निर्मित मानस मन्दिर का अनुकरण करके इसे अधिक वैज्ञानिक और आधुनिक बनाने का प्रयास किया गया था। लगभग पच्चीस लाख की लागत से बना यह परमागम मन्दिर अति भव्य और अनोखा जिन-प्रासाद है और इसे हम श्रीकहानजी की देन मानते हैं। यदि उसमे बहिनश्री के पाखण्ड-प्रेरित क्रिया-कलाप अभिनीत नही किये गये तो यह प्रासाद बहुत समय तक हमारे आचार्यों की वाणी को सुरक्षित रखने की दिशा मे एक सराहनीय कार्य माना जायेगा।

निश्चय के गढ़ में व्यवहार का विस्फोट

प्रतिष्ठा के अवसर पर सोनगढ मे विद्वत्सम्मेलन को मध्य कार्यक्रम के रूप मे आयोजित किया गया था। सम्मेलन के उद्घाटन के लिये श्रीमान् पण्डित जगन्मोहनलालजी सिद्धान्ताचार्य एवं प्रमुख वक्ता के रूप मे पण्डित कैलाशचन्दजी सिद्धान्ताचार्य को आमन्त्रित किया गया। अध्यक्षता प० फूलचचद जी को करनी थी।

सोनगढ का यह एक कड़ा नियम रहा है कि उनकी गद्दी पर केवल उन्ही का प्रवचनकार बैठ सकता है। उस मच से केवल निश्चय का ही उपदेश होगा, ऐसा हठाग्रह सदैव सोनगढ मे और मुमुक्षु-मण्डलो के आयोजनो मे रहा है।

सयोजको की आकाक्षा थी कि विद्वत्सम्मेलन के उद्घाटन अवसर पर भी विद्वान लोग केवल निश्चय का ही उपदेश करे। इस हेतु दोनो-तीनो विद्वानो को मध्यान्ह मे गाडी भेजकर श्री रामजी भाई ने अपने निवास पर बुलवाया और समयसार तथा मोक्षमार्ग-प्रकाशक के हवाले से उन्हे निर्देशित करने का प्रयास किया कि "केवल निश्चय की ही उपादेयता निरूपित की जानी चाहिये।"

श्रीरामजी भाई का यह प्रयास हास्यास्पद रहा और प० जगन्मोहन लालजी ने वही ऐसे किसी भी परामर्श को अनावश्यक बताते हुए अमान्य कर दिया। मैने उसी समय मोक्षमार्ग-प्रकाशक की प्रति मगाकर आठवे अध्याय का वह प्रकरण पढकर सुना दिया जहाँ चारो अनुयोगो की उपादेयता का विधान किया गया है। बैठक तो एक घटे मे समाप्त हो गई परन्तु उससे विद्वत्सम्मेलन के पीछे छिपा अभिप्राय पूरी तरह उजागर हो गया। इसने विद्वानो पर भी अच्छा असर नही छोडा।

उस पूरी शाम और देर रात तक मुझे दोनो विद्वानो के साथ ही रहने का अवसर मिला। मैंने पाया कि उनके मन मे बराबर इस बात की टीस थी कि उन्हे अपने ऐतिहासिक भाषणो के पूर्व एकान्त की दिशा मे निर्देशित करने का बचकाना प्रयास किया गया। दोनो ही विद्वान जैन-सिद्धान्त के पारगामी, विद्वत्परिषद् के पूर्व अध्यक्ष और कुशल वक्ता थे। वे भली-भाति जानते थे कि उनका लिखना और बोलना बहुत दूर तक समाज को प्रभावित

करता है। फिर आज का भाषण तो इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण कडी बनने वाला था। बाद मे हम सबको प्रसन्नता हुई कि दोनो ही वक्ताओ ने उस दिन सोनगढ के मच से अनेकान्त का विवेचन किया और निश्चय के साथ व्यवहार की तात्कालिक उपादेयता को प्रतिष्ठित करके स्याद्वाद शैली का उत्तम उदाहरण वहाँ प्रस्तुत किया।

निमित्त की उपादेयता

श्री जगन्मोहनलालजी ने मोक्षमार्ग की साधना मे देव, शास्त्र, गुरु की उपादेयता का समर्थन करते हुए बताया कि—"देव, सम्यग्दर्शन का आश्रयभूत निमित्त कारण है। शास्त्र, सम्यग्ज्ञान का आश्रयभूत निमित्त कारण है और चारित्रधारी वीतराग गुरु, नियम से सम्यक् चारित्र का आश्रयभूत निमित्त कारण है। यदि ऐसे श्रेष्ठतम पदार्थो के सयोग मे भी हम प्रमाद मे फसे रहे तो हम भाग्यहीन ही रहेगे और उनका कोई लाभ अपने जीवन मे नही ले पायेगे।

व्यवहार की कथंचित् तात्कालिक उपादेयता का व्याख्यान करते हुए पण्डितजी ने बताया कि व्यवहार और निश्चय दोनो ही नय परस्पर की यथोचित सापेक्षता मे ही पदार्थ का निर्णय करते है। एकान्त दृष्टि से, या किसी एक अकेले नय से, वस्तु स्वरूप का विवेचन ही सम्भव नही है। निश्चय नय का विषयभूत पदार्थ उपादेय होता है क्योकि वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। व्यवहार उपायभूत है। वह परमार्थ वस्तु को प्राप्त कराने मे साधक बनता है अत उसकी उपादेयता स्वत सिद्ध है। यदि प्रारम्भ से ही व्यवहार की उपयोगिता को अस्वीकार करके उसे त्याज्य मान लिया जायेगा, उसकी कथचित, अल्पकालीन, यथोचित उपादेयता स्वीकार नही की जायेगी, और परकीय होने

पर भी देव-शास्त्र-गुरु की छाया और अवलम्बन न लिया जायेगा तो यह जीव मिथ्या दृष्टी, मिथ्याज्ञानी और मिथ्याचारित्री ही अनन्तकाल तक बना रहेगा।"

अपने उद्‌घाटन भाषण का समापन करते हुए पण्डित जगन्मोहनलालजी ने कहा कि—"अनेकान्त दृष्टि के अभाव का ही यह कुफल है जो आज विद्वान वक्ता सतत उपदेश देते हैं, श्रोता उम्र भर सुनते है, स्वत भी स्वाध्याय करते हैं, परन्तु आचार-विचार मे पहले जहाँ थे वही के वही खडे रहते है। इसलिए हमे शास्त्र के शब्दो को नही, वरन् उसके मर्म को समझ कर अपना कल्याण करने का प्रयास करना चाहिये। यही परमागम मन्दिर को, या विद्वत्सम्मेलन की उपयोगिता हो सकती है।

एक चौंकाने वाला भाषण

विद्वत्सम्मेलन के मुख्य वक्ता पण्डित कैलाशचन्दजी सिद्धान्ताचाय का भाषण सानगढ को अतरग समिति के लिए आश्चर्य से चौकाने वाला था। पण्डितजी ने उनके मच से उनकी ही निश्चय परक और द्रव्यानुयोग आश्रित एकान्त व्याख्या का सदर्भ देकर वस्तु-व्यवस्था के दूसरे पहलू को उजागर करने का प्रयास किया। एक द्रव्य अपने परिणमन मे दूसरे द्रव्य के परिणमन से प्रभावित होता है, इस तथ्य की स्थापना के लिए पण्डिजी ने सामने बैठे हजारो श्रोताओ को ही उदाहरण बनाकर कहा कि—"हम सब हजारो उपादान एक स्वामीजी रूपी निमित्त से प्रभावित होकर प्रेरणा पाने के लिए आज यहाँ एकत्र हुए है।"

उस दिन पण्डित कैलाशचन्दजी ने अपने भाषण मे जो मूल मुद्दा उठाया, वह यह था कि श्रोताओ को निश्चय के साथ सही अनुपात मे व्यवहार का उपदेश भी मिलना चाहिये। अकेला कोई

एक नय वस्तु-स्वरूप के कथन मे सक्षम हो ही नही सकता, अतः व्यवहार की सापेक्षता के बिना कहा गया निश्चयस्वय ही मिथ्या होकर रह जायेगा।

आचार्य कुदकुद, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलक-देव, अमृतचन्द्र और जयसेन जैसे तपस्वियो का और पण्डित आशाधर, टोडरमल तथा दौलतराम जैसे विद्वानो का उल्लेख करते हुए पण्डितजी ने श्री कहानजी के समक्ष यह मार्मिक प्रश्न उपस्थित किया कि—"यदि आचार-विचार और व्रत-सयम, एकान्त से अनिष्ट फल देने वाले, हेय और अधर्म रूप हैं तो इन सारे आचार्यो और विद्वानो ने हमारे लिये उनका उपदेश ही क्यो दिया ? और क्यो स्वय सयम और चारित्र धारण किया ? यह भी प्रश्न है कि भगवान् समन्तभद्र को रत्नकरण्ड श्रावकाचार का तीसरा अध्याय, और उमास्वामी महाराज को "पुण्याश्रव" का विधान करने वाले सातवें अध्याय की रचना करने की आवश्यकता ही क्या थी ? पूज्यपादस्वामी ने अरहन्त आदि पर-द्रव्यो मे राग कराने वाली भक्तिया आखिर क्यो लिखी ? और स्वय श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने कुदकुद को व्याख्यापित करने के बाद "पुरुषार्थ सिद्धि उपाय" की रचना करने की आवश्यकता क्यो समझी ? यदि इन सब आचार्यों ने श्रावकाचार के उपदेश की कोई उपादेयता देखी थी तो फिर आज हम उस पद्धति का सर्वथा निषेध और लोप कैसे कर सकते है ?

अनेकान्त का प्रभावक घोष

अपने इस ऐतिहासिक और अति स्पष्ट भाषण के रूप मे उस दिन पण्डित कलाशचन्दजी की जीवन-व्यापी अध्ययन की गहराई और अनेकान्त की प्रतिष्ठा के लिए मन की सारी बेचैनी उजागर होकर प्रकट हो रही थी। ऐसा लगता था कि शब्दावली उनके

मुख से नही सीधे हृदय से निकल रही है । अन्त मे अपनी स्थिर और दृढ मनोदशा को ख्यायित करते हुए उन्होने कहा कि—"जो भी हो, जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग का अनुसरण करने के लिए, हमे सभी नयो, सभी दृष्टियो और सभी अनुयोगो से वस्तु-स्वरूप को समझना पडेगा और चारित्र को उपादेय मानकर ग्रहण करना पडेगा । हम अपनी मूल दिगम्बर परम्परा के समस्त आचार्यो को एक कुदकु द पर वलिदान नही कर सकते ।

मुझे याद है कि पण्डितजी के भाषण का यह "वलिदान" शब्द वहुत दिन तक चर्चा का विषय रहा । उस ऐतिहासिक भाषण से घण्टो पूर्व की, और उसके वहुत दिनो वाद तक की पण्डित जी के हृदय को मथने वाली मनस्थिति को जव मैं स्मृति मे लाता हू, तव मुझे लगता है कि उस दिन उनके मन की विकलता को स्पष्ट करने की सामर्थ्य सिर्फ इसी एक शब्द मे थी। किसी मृदु या लचीले अर्थ वाले शब्द का वह प्रभाव हो ही नही सकता था जो पण्डितजी सोनगढ के श्रोताओ को देना चाहते थे ।

विद्वत्सम्मेलन के ये दोनो भाषण सोनगढ के लिए विस्फोटक सावित हुए । वही और उसी समय इन पर लीपापोती करने के प्रयास प्रारम्भ कर दिये गये। सोनगढ मे विद्वत्सम्मेलन का आयोजन करने का मूल उद्देश्य तो श्री कहानजी के प्रति, उनके अवदान के लिए, दिगम्वर विद्वानो द्वारा कृतज्ञता का प्रस्ताव पारित कराना मात्र था। परन्तु उद्घाटनकर्ता पण्डित जगन्मोहन लाल जी और मुख्य अतिथि पण्डित कैलाश चन्दजी द्वारा अपने भाषणो मे निश्चय के साथ व्यवहार की, तथा ज्ञान के साथ सयम की, उपादेयता निरूपित करने के कारण, शायद सयोजको को ऐसा लगा कि उनके मूल उद्देश्य पर ही पानी फिर गया है। जन समुदाय मे इन भाषणो का भारी स्वागत हुआ और अब तक सुने हुए आचरण-विहीन ज्ञान, तथा व्यवहार-

रहित निश्चय की उपयोगिता पर जन-जन के मन मे अनेक प्रश्न स्वत. उठने लगे।

सयोजको की प्रतिक्रिया प्रगट होने मे तनिक भी विलम्ब नही हुआ। डॉ० हुकुम चन्द भारिल्ल सभा का सचालन कर रहे थे। दोनो विद्वानो के भाषण उन्हे जरा भी अनुकूल नही पड़े। सोनगढ़ के मच से श्री कहानजी की उपस्थिति मे, अनेकान्त की बात, या व्यवहार का पक्ष-समर्थन आखिर भारिल्लजी सहन कर भी कैसे सकते थे ? इन भाषणो ने उस दिन उन्हे सचमुच विचलित कर दिया। अपनी अधिकार सीमा का उल्लंघन करते हुए, सभा-सम्मेलन की सामान्य शिष्टता को तिलाजलि देकर, श्री भारिल्ल ने इन दोनो विद्वानो के भाषणो पर खण्डनात्मक और आलोचनात्मक टिप्पणी करने का दुस्साहस किया। अपने स्वतत्र भाषण मे भारिल्ल जी ऐसा करते तो कोई बात न थी परन्तु सभा के सचालक के नाते उनकी यह बेअदबी प्रबुद्ध श्रोताओ को अखरने वाली लगी। सभाध्यक्ष श्री फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री तक ने भारिल्लजी के इस आचरण को "अनुचित और अनाधिकृत" कहा।

मैंने सम्मेलन को रिपोर्टिंग करते हुए जैन सन्देश के 21 मार्च 74 के अक मे अपने लेख मे लिखा था कि—"हम डॉ० भारिल्ल के प्रशसको व मित्रो मे है। हम उत्सुकता के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करेगे जब हमारे इस युवक विद्वान् मे ज्ञान के अनुपात मे गम्भीरता भी प्रकट होगी।" आज बारह साल के बाद, 1986 मे बैठकर जब मै पिछले वर्षों मे सोनगढ मे सूर्यकीर्ति के नाम को लेकर घटित घटनाओ की समीक्षा कर रहा हू तब मुझे अत्यन्त निराशापूर्वक यह तथ्य स्वीकार करना पड रहा है कि "ज्ञान के अनुपात मे गम्भीरता" देख पाने की मेरी आकाक्षा सफल हो सके इसके लिये भारिल्लजी ने आज तक अपने व्यक्तित्व मे कुछ भी उत्कर्ष नही किया।

जिनवाणी का निरादर

सोनगढ की जो विसगतिया उस सम्मेलन मे सामने आई उनमे जिनवाणी के प्रति अनादर सबसे ज्यादा अखरने वाला था। एक ओर स्तुति-भक्ति के साथ ही प्रवचन होते थे परन्तु वही दूसरी ओर समयसार के मुख्य-मुख्य प्रसगो के चार-चार पन्ने अलग से छापकर रख लिये गये थे जो श्रोताओ मे परचो की तरह वितरित कर दिये जाते थे। जब प्रवचन के मध्य इनमे से आधे पन्ने हवा के लिये पखो की तरह डुलाये जाते थे तब माता जिनवाणी को मुमुक्षु आराधको का ताप हरण करते प्रत्यक्ष देखा जा सकता था। मेले की समाप्ति पर तो अधिकाश पन्ने शामियानो और नालियो मे यत्र-तत्र पडे उडते रहे। सोनगढ मे दिन-रात गूजने वाली निश्चय-नय की व्याख्या मे जिनवाणी परद्रव्य है, शास्त्र तो जड-पुदगल की पर्याय है, और आत्मा पर कोई भी प्रभाव डाल सकने की सामर्थ्य उनमे नही है, ऐसी एकागी और विविक्षा-विहीन विचारधारा का ही यह दुष्फल था कि माता जिनवाणी को जितनी अविनय और जितना तिरस्कार मैंने उस समय सोनगढ मे देखा वैसा अपने जीवन में कही अन्यत्र मेरे देखने मे नही आया।

अलगाव का बीज वहीं बोया गया

इस सारे सयोजन मे अलगाव की भावना से दिगम्बर जैन समाज मे एक नया पथ बनाने की दुरभिसधि सोनगढ के लोगो की मानसिकता बन गई थी। उसके प्रमाण पग-पग पर वहाँ दिखाई दे रहे थे। यह अलग बात है कि समाज मे फूट के, अथवा बदमजगी के भय से कोई उसकी चर्चा नही करना चाहता था। मेरे इस अभियोग को सिद्ध करने वाला सबसे बडा प्रमाण "श्री

कुंदकुंद कहना तीर्थ-रक्षा ट्रस्ट" की स्थापना में देखा जा सकता है।

भगवान् महावीर 2500वें निर्वाण महोत्सव सोसाइटी की बैठक के बीच वहाँ ब्र० माणिकचन्दजी चवरे ने पूज्य मुनिराज श्री समन्तभद्र महाराज के सकल्प से गठित "तीर्थ-रक्षा-निधि" की अपील करते हुए बताया कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ-क्षेत्र कमेटी मे इस निधि के लिये एक करोड़ की राशि एकत्र करने का संकल्प किया गया है। अब तक लगभग एक चौथाई लक्ष्य की पूर्ति हो चुकी है, आज इस सभा मे भी इस निधि के लिए राशि एकत्र की जानी चाहिये।

चवरेजी की अपील जन-मानस को प्रभावित करने वाली थी। उसके उत्तर मे सबसे पहले पण्डित कैलाशचन्द जी ने पाच सौ रुपये लिखवाये। फिर देखते-ही-देखते समाज ने लगभग पचास हजार रुपये का चन्दा वहाँ लिखा दिया। परन्तु इस चन्दे मे सोनगढ उत्सव समिति, और मुमुक्षु-मण्डलो की उदासीनता किसी से छिपी नही रही।

तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की स्थापना

रात को अतरग समिति ने जो निर्णय किया वह कुछ अलग ही था। दूसरे दिन सुबह श्री बाबू भाई ने सोनगढ ट्रस्ट के अत-र्गत अपना अलग तीर्थ-रक्षा ट्रस्ट स्थापित कर लेने की घोषणा कर दी और उसके लिये वही ढाई लाख रुपया एकत्र करने का समाचार सूचित किया। पूर्व सध्या को चवरेजी की अपील पर लिखाई गई राशि इस ट्रस्ट मे रहेगी या तीर्थक्षेत्र कमेटी के कोश मे जायेगी ऐसी कोई घोषणा उन्होने नही की परन्तु बाद मे वह राशि तीर्थक्षेत्र कमेटी के पास कभी नही आई। इस नवीन ट्रस्ट

की स्थापना अथवा उसके औचित्य को जानने के लिये जब मैंने सम्पर्क साधा तो किसी भी अधिकारिक सूत्र से कोई समाधान मुझे वहाँ नही मिला। तब मैंने अपने आलेख मे लिखा था कि— "एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिये समाज की शक्ति का बटवारा दो-तीन जगह हो, यह बात सहज सराहनीय नही लगती। यदि मात्र नाम-व्यामोह के पीछे ही यह किया गया हो तो दातारो को और सोनगढ के ट्रस्टियो को इस पर एक बार और विचार करना चाहिये।" परन्तु किसी की सुनने की प्रथा तो सोनगढ मे कभी रही ही नहीं। मेरी कौन सुनता ?

इस प्रकार 1974 के प्रतिष्ठा महोत्सव मे सोनगढ की जो मानसिकता देखने को मिली, उसने समाज के विचारक वर्ग को पीडित किया तथा इस बारे मे गहराई में सोचने को मजबूर कर दिया। इधर मुमुक्षु-मण्डलो मे भी कई सुनियोजित षड्यन्त्र सामने आने लगे। बार-बार जिस-तिस के मुह से जिनवाणी को परस्त्री के समान और अरहत के राग को भी ससार परिभ्रमण का हेतु बताकर, तथा मुनियो के लिये अत्यन्त ओछे शब्दो का प्रयोग करके, उनका साक्षात् तिरस्कार करके, उन्होने अपने अनुयायियो के मन से देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा को समाप्त करने का अभियान-सा छेड दिया। स्थान-स्थान से मुनियो के तिरस्कार के समाचार आने लगे और "हम तो मुनि को नमस्कार नही करते" ऐसी घोषणा सम्यक्त्व का प्रतीक मानी जाने लगी।

उधर सोनगढ मे नित नये कल्पित आख्यान दोहराये जाते रहे और अव्रती दशा मे ही श्री कहानजी को "सद्गुरुदेव", "श्रुत-केवली तुल्य" और "भावी तीर्थंकर" तथा "सर्वज्ञ" तक कहा जाने लगा। एक नगर मे उनके स्वागत मे लगाये बैनर पर उनके

लिये "सप्तम गुणस्थानवर्ती" और "भावलिंगी मुनि" तक लिखा देखा गया। इसी बैनर के नीचे से निकलकर जाने पर भी श्री कहानजी ने या उनके किसी प्रबुद्ध आत्मज्ञ ने इस प्रकार के मिथ्या सम्बोधनो का तनिक भी विरोध नही किया। सिवनी मे प० सुमेरचन्द जी दिवाकर ने जब तक उपरोक्त बैनर का चित्र निकालकर मेरे सामने नही पटक दिया तब तक मैं उनके कथन पर विश्वास नही कर सका, परन्तु फोटो सामने आने पर माथा पीट लेने के सिवा क्या किया जा सकता था।

कैसे विमोहित होते थे विद्वान्

सोनगढ़ की ऊपरी चमक-दमक और वहा वैभव का प्रदर्शन सचमुच ऐसा चौधियाने वाला था कि साधारण व्यक्ति की कौन कहे, अच्छे-अच्छे विद्वान् और पत्रकार भी उस पर विमुग्ध होकर उनका अतिशय यशगान करने लगते थे। इसका एक उदाहरण यहा प्रस्तुत करना चाहता हू।

जिस प्रकार मैंने "सोनगढ के ससमरण" लिखकर मार्च 74 के जैन सन्देश मे प्रकाशित कराये, उसी प्रकार प० ज्ञानचन्द जी "स्वतत्र" विदिशा ने एक विस्तृत रिपोर्ट 'स्वर्णपुरी की यात्रा" जैसे शीर्षक से मार्च 74 मे ही जैन मित्र मे प्रकाशित कराई थी। स्मरणीय है कि "स्वतत्र" जी बहुत समय तक जैन मित्र के सम्पादक रहे है अत उनमें एक पत्रकार की दृष्टि होनी चाहिए थी और उनकी लेखनी मे यथार्थ का अकन होना चाहिए था, परन्तु ऐसा नही हुआ। उन्हे चम्पा बहिन तो साक्षात् भगवती दिखाई दी और श्री कहानजी के मूढ-मुमुक्षु अपने से भी अच्छे

लगे । कुछ नमूने देखिए—

वे हमसे अच्छे है, बहिन श्री भगवती है

"जो लोग मूलत दि० जैन है उनका उतना शुद्ध व्यवहार नही है जितना कि यहाँ के मुमुक्षुओ का है। ये मुमुक्षु मूलत दि० जैनो मे नही जन्मे थे। पर इनका खान-पान, आचार-विचार सम्बन्धी बहुत ही शुद्ध व्यवहार है।

हमारे लिये यहाँ यह तौलना है कि हम अच्छे है या हमारे मुमुक्षु भाई अच्छे है। मेरे अनेक मित्र यहाँ के (स्वर्णपुरी) लोगो को व्यवहार भ्रष्ट और एकातवादी कहते है, उनको यहाँ कुछ दिन ठहरकर प्रत्यक्ष ही देखकर निर्णय करना चाहिए कि सत्यता क्या है, वास्तविकता क्या है।

भक्ति मे सजीवता है, जो आल्हाद है, वैसी ही सामूहिक भक्ति अन्यत्र होना दुर्लभ है। भगवती देवी, श्री बेनजी की भक्ति तो दर्शकगणो को मुग्ध कर देती है।"

श्री कहानजी प० टोडरमल जी से श्रेष्ठ है

"200 वर्ष पूर्व आचार्य कल्प प० टोडरमलजी ने अध्यात्मवाद का प्रचार कर तद्युगीन मानव समाज को एक नया मोड़ दिया था। किन्तु 200 वर्ष बाद तो पूज्य स्वामीजी ने मानव समाज को जो मोड दिया और उसके द्वारा जो क्रांति आयी वह तो कानजीस्वामी को युगपुरुष सिद्ध कर रही है।

दोनो ही अध्यात्मवादी है, पर अध्यात्मवाद के प्रचार-प्रसार मे प० जी की अपेक्षा स्वामीजी का विशिष्ट कदम है और महत्त्वपूर्ण स्थान है।"

ज्ञायक निवास और ज्ञाता कुटीर

"कहान नगर बहुत ही सुन्दर बसा हुआ है। अपने-अपने बगलो का नामकरण चुने हुए शब्दो मे किया गया है। नाम मनोज्ञ है। कुछ नाम इस प्रकार हैं जैसे—चैतन्य ज्योति, चैत्य निवास, गुरुकृपा, कहान छाया, सतसौरभ, सत-समागम, वैदेही-सदन, कहानकृपा, ज्ञायक निवास, गुरुप्रसाद, अमरज्योति, ज्ञाताकुटीर, कहान प्रताप आदि।

—"जैन मित्र/मार्च-74

यह तो थोडे से उदाहरण हैं। पूरा लेख इसी प्रकार की प्रशस्तियो से भरा हुआ है। क्या ही अच्छा हो विद्वान् लेखक आज जाकर देखे कि भगवती की भक्ति वहाँ क्या गुल खिला रही है। वे नये मुमुक्षु मोक्ष मार्ग की कैसी प्रभावना कर रहे हैं और प० टोडरमल जी से भी विशिष्ट उनके युगपुरुष क्या विरासत छोड गए है। यह भी सम्भव है कि अब वहाँ चैत्य निवास मे सूर्य कीर्ति का चैत्यालय बन गया हो, वैदेहीसदन मे सदेह भगवती की पूजा हो रही हो, चैतन्य ज्योति का बल्ब फ्यज पडा हो, ज्ञायक निवास मे कूडा-करकट भरा हो और सत-सौरभ मे से छल-कपट की सडाध फैल रही हो। माटी की दीवार पर महानता सूचक नाम लिख देने मात्र से क्या होता, भीतर भी तो कुछ होना चाहिए। वहाँ तो 'निविड-मिथ्या-तम' भरा था।

मुझे यहा स्वतत्र जी के लेख की समीक्षा नही करनी है। केवल अपना माथा पीटना है कि जब विद्वान-पत्रकार भी वहाँ जाकर ऐसे चमत्कृत हो जाते थे तब सामान्य श्रावक की क्या दशा होती होगी। वे लोग सचमुच भाग्यशाली है जो इस बीसवी शताब्दी मे श्रावक कुल पाकर भी सोनगढ के प्रपचो से बचे रह सके। उन्हे बधाई।

मध्य प्रदेश में व्यापक विरोध

श्री कहानजी के अनुयायियो द्वारा लगातार देव-शास्त्र-गुरु की उपेक्षा किए जाने से, और मुनियो के प्रति अकारण अपशब्दो की बौछार किये जाने से, आस्थावान जैन श्रावको के मन मे आक्रोश पनपता रहा। हम यह जानते है कि श्वेताम्बर मान्यता छोडकर आये हुए तथाकथित दिगम्बरो मे चाहे ऐसा आक्रोश नही था, परन्तु मूल दिगम्बर स्वाध्यायी, कभी अपने आराध्य के प्रति ऐसी भाषा और ऐसी शब्दावली को स्वीकार नही कर पाये थे। विशेषकर मध्यप्रदेश मे, जहाँ आगम के अध्ययन का प्रचार सर्वाधिक रहा है, इन बातो को लेकर गहरा असतोष पनप रहा था। तभी एक दिन अनायास उस उबलते आक्रोश को बाहर आने का अवसर प्राप्त हो गया।

आखिर भामण्डल चटक गया

बालू की दीवार अधिक समय तक नही ठहर सकती। भीतर की नमी सूखते ही उसका धस जाना निश्चित है। आगम के प्रतिकूल, मूढता से भरी कल्पनाओ पर आधारित श्री कहानजी के कल्पित समवसरण को भी बिखरने मे अधिक समय नही

लगा। दैवयोग से ही ऐसा अवसर आया जब उन्होने धर्म विजय के लिए मध्य प्रदेश को यात्रा की और अनायास कुछ ऐसी घटनाए घटती गई जिससे उनके चारो ओर बुना गया रहस्यो और अतिशयो का कोहरा छट गया।

सौराष्ट्र मे भले ही श्री कहानजी की कुछ भी मान्यता रही हो परन्तु मध्य प्रदेश की धरती पर जैन मान्यताओ मे पोपडम के लिए कभी कोई स्थान नही रहा। यहाँ हमेशा आराध्य की करनी और कथनी को मिलाकर ही उसका मूल्याकन करने की पद्धति रही है। कहना न होगा कि उस कसौटी मे कपोल-कल्पित जाति-स्मरण से प्रसूत पाखण्ड की कही कोई मान्यता नही थी। श्री कहानजी की मध्य प्रदेश यात्रा मे छोटी-मोटी घटनाए तो अनेक हुई, परन्तु उनमे कुछ एक उनके भोले भक्तो के लिए भी "ज्ञानाजन शलाका" की तरह नेत्रोन्मीलन करने वाली सिद्ध हुई। उन्ही कुछ का उल्लेख यहाँ करना है।

मगल-वर्द्धिनी पर अमगल बौछार

हुआ यह कि श्री कहानजी ने मध्य प्रदेश मे कुछ स्थानो की 'धर्म-विजय यात्रा' का कार्यक्रम बनाया। इस सिलसिले मे जब उनका इन्दौर आगमन हुआ तब कुछ लोगों ने उनकी आगम विरोधनी नीतियो के विरोधस्वरूप उनका तिरस्कार किया। उन्हे काले झण्डे दिखाये गये, और "कानजी वापस जाओ" के नारे लगाये गये। कुछ लोगो ने उनकी कार पर पत्थर भी फेंके। विरोध और अनादर की इस अप्रत्याशित बौछार से श्री कहानजी एक सामान्य व्यक्ति की ही तरह अधीर और भयाक्रान्त हो उठे। उन्हे अपनी मोटर मे लिवाकर लौटते हुए लोग जब गाडी रुकवा-कर, नीचे उतरकर अनादर करने वालो को समझा रहे थे, तब यह देखा गया कि श्री कहानजी भयभीत होकर, अपनी सीट से

नीचे, मोटर की लैग-स्पेस मे छिपे बैठे है।

सनावद मे काले झण्डे

कुछ इसी प्रकार की उनकी भयजन्य प्रतिक्रिया सनावद मे भी देखने को मिली। वहाँ भी काले झण्डो और "वापस जाओ" के नारो से समाज ने उनका तिरस्कार किया। यह विरोध या अनादर करने वाले कोई सगठित षड्यन्त्रकारी नही थे, वे दिगम्बर जैन समाज के ऐसे सामान्य व्यक्ति ही थे जिनके मन मे अपने देव-शास्त्र और गुरु के लिए श्रद्धा और भक्ति थी। उनके विरोध का कारण मात्र यही था कि वे अपने आराध्य के प्रति अपशब्दो का प्रयोग बरदास्त नही करना चाहते थे। सोनगढ साहित्य मे पग-पग पर पढे हुए, वहाँ के प्रवक्ताओ के मुख से सुने हुए उन्ही अपशब्दो ने आज समाज की उस तरूणाई को अपना आक्रोश बिखेरने के लिए, श्री कहानजी जैसे विद्वान् और वयोवृद्ध व्यक्ति के सामने सडक पर ला खड़ा किया था। और इन परिस्थितियो का निर्माण स्वय सोनगढ-पथियो ने किया था।

श्री कहानजी की इस यात्रा मे अनेक जगहो पर, अनेक प्रकार के परचे आदि निकालकर भी, समाज ने अपना विरोध प्रकट किया। यद्यपि इस प्रकार की घटनाए जैन शासन के लिए न तो वाछनीय थी, न सराहनीय थी, परन्तु आने वाले दिनो ने बता दिया कि वे कुछ हद तक कारगर अवश्य थी। इस जोरदार विरोध का पहला-सुफल तो यह हुआ कि श्री कहानजी के चारो ओर मढा गया महतता का कल्पित प्रभा-मण्डल चटक कर चकनाचूर हो गया। "अलौकिक ज्ञानधारी", "भावी तीर्थकर" और "वीतरागी सद-गुरु देव" के रूप मे उनकी जो छवि येन-केन-प्रकारेण भोले भक्तो के बीच स्थापित की गई थी, और की जा रही थी, उस छवि को इन घटनाओ के समय उनकी अधीरता

न और पलायनवादी आचरण ने स्वतः खण्डित कर दिया। इन तुच्छ-सी घटनाओ ने, सारी तथाकथित महानताओ की वास्तविकता उजागर करके, उन्हे सामान्य आदमी बना दिया और लोगो के मन मे यह बात बैठा दी कि उपसर्ग, परिपह या सतुलित प्रतिकार जैसे उपाय श्री कहानजी के परिचय मे भी नही हैं। वे एक अधीर, सकल्प-शून्य और दुर्बल व्यक्ति हैं। आगे चलकर उनको मृत्यु तक यह बात पुष्ट ही होती चली गई।

भोपाल मे छल-छन्द

इसी के आस-पास भोपाल मे भी एक घटना घटी। पिपलानी मे नवीन मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर, आयोजको की मरजी के खिलाफ कुछ कहान पथियो द्वारा एक ऐसी मूर्ति की प्रतिष्ठा कराने का प्रयास किया गया जिस पर उपदेशदाता के रूप में श्री कहानजी के नाम का अभिलेख अकित था। किसी अव्रती व्यक्ति का नाम, उपदेष्टा के रूप मे जिन प्रतिमा पर अकित किया जाय, ऐसी कोई परम्परा कभी नही रही। इस कारण लोगों ने उस मूर्ति की प्रतिष्ठा किये जाने पर आपत्ति की। दो बार वह प्रतिमा वेदी पर से हटाई गई और दोनो बार उसे धोखे से या जिद करके वहाँ रखने का प्रयास किया गया, परन्तु अत मे जनमत के आगे वह प्रयास सफल नही हो सका। साम, दाम, दण्ड और भेद, कोई तदबीर कारगर न हो सकी और वह मूर्ति वेदी पर से हटाना पडी, तभी प्रतिष्ठा के विधि-विधान पूरे हुए।

इस घटना से भी एक ओर जहाँ सोनगढ-पथियो की हठधर्मी उजागर होकर सामने आई वही दूसरी ओर उनके खिलाफ सख्त विरोध का परिचय भी मिला। उस विरोध को सफलता भी मिली।

यही वह समय था जब जिनवाणी को लेकर भी समाज मे

असमजसता का वातावरण जोरो से पनप रहा था। सोनगढ मे एक ओर तो, निमित्तको अकार्यकारी सिद्ध करने की धुन मे, जिनवाणी को जड और आत्मा पर सर्वदा अप्रभावकारी बताया जा रहा था, वही दूसरी ओर प्रवचनो के रूप मे, और ज्ञान की किरणो के रूप मे, मनमाना एकागी साहित्य प्रकाशित कराकर प्राय नि.शुल्क ही घरो और मन्दिरो तक पहुचाया जा रहा था। पत्र-पत्रिकाओ मे, और प्रवचनो आदि मे, पारम्परिक विद्वानो द्वारा सोनगढ की इन प्रवृत्तियो का बार बार विरोध किया गया और उनसे जिनवाणी की अप्रभावना को रोकने की चारो ओर से अपील की गई, परन्तु सोनगढ के प्रवक्ताओ पर उसका कोई असर नही हुआ। मान कषाय ने उन्हे बहरा कर दिया था।

सोनगढ साहित्य का जल-विसर्जन

हठाग्रह और विरोध की इस रस्साकशी के बीच, मध्य प्रदेश के ही एक कोने मे एक ऐसी घटना घट गई जिसने सारे भारत की जैन समाज को उद्धेलित कर दिया। एक प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् ने सोनगढ से प्रकाशित ऐसे नव-रचित एकागी साहित्य को मन्दिर मे से निकाला और गाजे-बाजे के साथ नगर के बाहर ले जाकर खण्डित मूर्तियो की तरह नैनवाँ नगर के समीप नदी मे प्रवाहित कर दिया।

जिनवाणी की रक्षा के नाम पर साहित्य को जल-समाधि देने की यह घटना जितनी अनोखी थी, उतनी ही विवादास्पद भी रही। इस घटना के पक्ष-विपक्ष मे जितना कहा और लिखा गया उतना बहुत कम घटनाओ के बारे मे होता है। उस घटना के औचित्य या अनौचित्य का निर्णय हमे यहाँ नही करना है, परन्तु इतिहास का लेखा-जोखा लेते समय उसके प्रभाव का

मल्याकन करके ही आगे बढना ठीक होगा।

अपने जीवन मे सौ से अधिक पचकल्याणक प्रतिष्ठाए कराने वाले स्थापित प्रतिष्ठाचार्य पण्डित शिखरचन्द जी को आगे होकर यह कदम उठाने की आवश्यकता क्यो पडी ? यह प्रश्न किये जाने पर एक वार पण्डित जी ने कहा था कि—"शास्त्रीय शिक्षा से रहित, तीन सप्ताह के शिक्षण-शिविर से लौटकर प्रवचनकार वने हुए ऐरे-गैरे के मुह से मुनियो के लिए गालिया और जिनवाणी माता के लिए असम्मानजनक सम्वोधन सुनते-सुनते जव सहनशक्ति जवाव दे गई, तव निरूपाय होकर, अपने विरोध के प्रतोक रूप मे, खूव सोच-समझकर यह कदम उठाया गया था।"

उनका तर्क वडा सोधा था कि—"यदि जिनवाणी जड है, और उसका राग, पर स्त्री के राग के समान ही ससार का हेतु है, तो फिर ऐसी जिनवाणी के अनादर से किसी को कष्ट क्यो होना चाहिये।" पण्डित जी का यह भी कहना था कि "इस घटना का वाछित प्रभाव पडा और दूसरे ही दिन से सोनगढ के संमूर्छन-विद्वानो के मुह पर लगाम लग गई। उनकी भाषा ही फिर वदल गई।"

जिन्होने समाज मे घटने वाली घटनाओ पर निगाह रखी है, और समय-समय पर उनके प्रतिफल का आकलन किया है, उन्हे याद दिलाने की आवश्यकता नही कि ऊपर लिखी गई तीन-चार घटनाओ का समय की धारा पर प्रवल प्रभाव पडा। सोनगढ के प्रवक्ताओ मे, और उनके प्रति सहानुभूति रखने वाले श्रावको मे, इन घटनाओ को लेकर गहन चिन्ता उत्पन्न हो गई। आगे कही ऐसा घटित न हो इसके लिये सब एक साथ चिन्तित हो उठे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हजारो वक्तव्य और

सैकडो लेखमालाए सोनगढ पथियों पर वह प्रभाव नही डाल पाई जो इन तीन-चार घटनाओ ने डाला। दर्शन के दुर्ग मे निमित्त कुछ कर पाता हो या नहा कर पाता हो, परन्तु व्यवहार की धरती पर इन घटनाओं के निमित्त से जो उथल-पुथल मचा उसने इतिहास की धारा मोड दी।

कलकत्ते से बम्बई तक और जयपुर से सोनगढ तक, परिस्थिति की गम्भीरता को समझा गया और विचारशील जनो की आपात्कालीन बैठक बुलाकर उसमे कुछ निर्णय लिये गये। प्रवचनकारो के लिए एक आचार सहिता गढी गई जिसमे उन्हें निर्देशित किया गया कि दिगम्बर मुनिराजो के प्रति अपशब्द अब नही कहना हैं। जहा आप जायें वहा यदि दिगम्बर साधु विराजते हैं तो उनके प्रति यथानुरूप व्यवहार विनय का प्रदर्शन अवश्य करना है। और यह भी कि अपने प्रवचन मे तथा आलेखो आदि मे जिनवाणी की व्याख्या करते समय अतिरिक्त सावधानी वरतनी है। प्रवक्ताओ को यह समझाइस भी दी गई कि इन निर्देशो के बाद भी यदि कोई चक आप से हुई तो सुनने वाले के मन मे राग का आवेग आये विना रहेगा नही, और उसके राग की भूमिका का असर आपके शरीर और आत्मा पर पड़े विना रहेगा नही।

रुख बदलने लगा

इस तरह दीर्घकालीन सत्परामर्शों के द्वारा, और हजारो वक्तव्यो तथा सैकडो लेखमालाओ के द्वारा जो बात नही समझाई जा सकी थी, उसे देव-शास्त्र-गुरु की मर्यादा की रक्षा के लिए समर्पित मध्य प्रदेश के कुछ व्यवहारीजनो ने, अपने व्यवहार के द्वारा समझाने का जब प्रयास किया, तब तत्काल सोनगढ के अनुयायियो को उस पर विचार करना पडा। देश-काल की हवा

का रुख अनुमानते हुए उन्होने अपने व्यवहार मे परिवर्तन किये और अपने प्रचार की विधि मे थोड़ा-वहुत परिवर्तन करने का प्रयास किया। वह वदलाव इस प्रकार था—

1. अव तक मात्र शुद्धनय और निश्चयभाषी पद्धति से वोलने वाले प्रवचनकारो को यथावश्यक चारो अनुयोगो का परिचय कराकर समन्वयात्मक वात करने की प्रेरणा दी गई। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के प्रयत्नो से जयपुर मे सचालित शास्त्री आदि पठनक्रम को अधिक महत्ता दी गई और वहा से निकले विद्वानो को ही प्रवचनकार वनाने पर अधिक वल दिया जाने लगा।

2. कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थो को मात्र अमृतचन्द्राचार्य की टीकाओ के सहारे पढने और जिनसेनाचार्य महाराज की उपेक्षा करने का हठाग्रह ढीला पडा, और सोनगढ से पहली वार जयसैनी टोका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया।

3 प्रकाशनो मे यत्र-तत्र मुनियो की चर्चा और उनका गुणगान भी स्थान पाने लगा। कई जगह मुमुक्ष-मडल के सदस्यो मे अपने से चलकर मुनियों-आचार्यो के दर्शन करने तथा उनसे चर्चा करने की भावना भी देखी गई।

4. मध्य प्रदेश मे अपने पक्ष का जनमत वनाने की योजना को अधिक कारगर ढग से क्रियान्वित करने का उद्योग किया गया। इसके लिये कुन्दकुन्द कहान तीर्थरक्षा ट्रस्ट की निधि का उपयोग किया गया। स्थान-स्थान पर तीर्थक्षेत्रो के सर्वेक्षण के माध्यम से अपनी विचारधारा का प्रचार और साहित्य का वितरण करना प्रारम्भ किया गया।

एक अनैतिकता, जो सोनगढ के मेरे मित्रो ने हठपूर्वक निभाई, वह यह थी कि अपनी अतरग समिति के ये निर्णय "गोपनीय-सन्देश" की तरह अपने प्रवक्ताओ तक पहुचा कर

ही उन्होने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली। इन निर्देशो को सार्वजनिक रूप से प्रचारित और प्रकाशित करने का साहस उन्हे नही हुआ, या इसकी आवश्यकता उन्होने नही समझी। इस बारे में सोनगढ के एक प्रमुख कर्णधार से मेरी चर्चा हुई जिसमे उन्होने यह आश्वासन मुझे दिया कि इस प्रकार की हिदायतो को सोनगढ की नीति की तरह मान्यता दी जायेगी और सोनगढ से सम्बद्ध प्रकाशनो मे उन्हे प्रकाशित किया जायेगा। पर उस मैटर का प्रकाशन कभी मेरे देखने मे नही आया। फिर भी उनके प्रवचनकारो की भाषा मे तथा पत्रो की नीति मे उसके बाद से एक स्पष्ट और ध्यानाकर्षित करने वाला अन्तर समाज ने पाया।

मैं आज तक समझ नही पाया हू कि इतने महत्त्वपूर्ण सदर्भों मे, ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्णय को सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करने की सहजता और सरलता मेरे मित्र क्यो नही जुटा पाये। पता नही ऐसा करना उन्हे अधिक घाटे का सौदा प्रतीत हुआ, या महज मान कषाय ने ही उन्हे ऐसा नही करने दिया।

धम्मो दयाविशुद्धो पव्वज्जा सव्वसगपरिचत्ता,
देवो ववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाणं।

आचार्य कुन्दकुन्द, बोधपाहुड 24

धर्म वह है जो दया से विशुद्ध है,
दीक्षा वही है जो सर्व-परिग्रह से रहित है,
और देव वह है जिसका मोह दूर हो गया है,
तथा जो भव्य जीवो को अभ्युदय का करनेवाला है।

बहिनश्री का मायाजाल

जिस समय दिगम्बर जैन समाज मे श्री कहानजी का विरोध अपनी चरम सीमा पर था ठीक उसी समय एक बहुत दुर्भाग्य-पूर्ण बात यह हुई कि उन्हे चम्पा बहिन का अंध-समर्थन और अतिशय स्तुतिगान करने की लगन लग गयी। हम पहले कह आये है कि सोनगढ़ मे इस महिला ने समय-समय पर अपनी माया से अनेक विसगतिया उपजायी है। वास्तव मे माया और पाखण्ड की कोई साकार मूर्ति देखना हो तो अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही, बहिनश्री का दर्शन पर्याप्त है। परन्तु यह बात सदैव सामान्य जनो की समझ के बाहर रही कि अपनी माया के प्रसार के लिए जो-जो कुछ चम्पाबहिन ने कहा, क्यो श्रीकहानजी ने उस सब का समर्थन किया ? यहां तक कि आगम से जिनका विरोध है, ऐसी काल्पनिक बाते भी उन्होने दोहराई और उन पर अपने विश्वास की मोहर लगाकर उन्हे अपने भक्तो मे प्रचा-रित किया। आखिर यह क्यो हुआ ?

सिर चढ़कर बोला बहिनश्री का जादू'

श्री कहानजी चम्पा बहिन से कहा तक प्रभावित थे और उनके

राग मे कितने रग चुके थे, यह हमे स्वय उन्ही के शब्दो मे श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट भावनगर से प्रकाशित और "आत्म-धर्म" के ग्राहको को नि.शुल्क वितरित्त पुस्तिका "धन्य-अवतार" मे सर्व प्रथम पढने को मिला। पढकर तो यही लगा कि इतना राग यदि भगवान् के चरणो से हो गया होता तो श्रीकहान-जी का अन्त सुधर सकता था। चम्पा बहिन अपने सम्बोधन मे श्री कहानजी को "साहब" कहतीं थी, और श्रीकहानजी उन्हे बहिन कहते थे। परन्तु वे उनके लिये बहिन से अधिक होकर रही। स्वय उन्ही ने बार-बार कहा कि—"बहिनश्री को पुत्री कहू बहिन कहू, धर्म माता कहू या साधर्मी कहू, जो कुछ कहू—सब हैं।"

"धन्य अवतार" के अनुसार चम्पाबहिन के बारे मे बोलते हुए भी उन्होने कहा था—

1 विक्रम सवत् 1993, चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन बहिनश्री को आत्मा के शुद्धोपयोग रूप, निर्विकल्प अनुभव के साथ, उपयोग मे निर्मलता होने पर जातिस्मरण हुआ।
2 सम्यग्दर्शन वि स 1989 मे हुआ था।
3 ध्यान करते-करते इतनी एकाग्र हो जाती है कि स्वय भरत मे है या विदेह मे, यह भी भूल जाती है।
4 हम साथ ही मोक्ष जाने वाले है, यह सब बात प्रत्यक्ष हो चुकी है।
5 यह चम्पाबहिन का ज्ञान तो राजुल से अनन्त-अनन्त सामर्थ्यवाला है। उसे तो लौकिक, परन्तु इन्हे अलौकिक ज्ञान है। आत्मज्ञान सहित का जातिस्मरण है। इन्हे चार भव का ज्ञान है।

वास्तविकता यह है कि अपने जीवन के अन्त समय मे श्री कहान जी न जाने क्यो चम्पाबहिन से कुछ अधिक ही प्रभावित हो गये थे। जब बहिनश्री की पुस्तक "बहिनश्री वचनामृत" प्रकाशित

होकर आई तब उसे पाकर श्री कहानजी विमुग्ध हो उठे थे। उन्होने कहा—"वहुत उत्तम हुआ कि वहिनश्री की यह पुस्तक वाहर आई, जगत के भाग्य है। यह तो एक लाख पुस्तक छपना चाहिए। यह सब सगमरमर के पाटियो पर खोदना चाहिए।" सुना है कि सोनगढ मे उनकी आज्ञानुसार, कुन्दकुन्दाचार्य भगवान की तरह, वहिनश्री वचनामृत को भी सगमरमर पर खोदने का कार्य प्रारभ कर दिया गया है, या शीघ्र किया जाने वाला है। आखिर क्यो न हो, वह सोनगढ के सत की आज्ञा है। उनकी अन्तिम भावना रही है।

वहिनश्री के वारे मे श्री कहानजी ने जो कुछ कहा, उसके प्रमुख-प्रमुख पैराग्राफ तिथि या दिनाक सहित "धन्य अवतार" मे उद्धरित किये गये हैं। प्रकाशको का यह भी दावा है कि यह पूरी शब्दावली श्री कहानजी की है और उसका मूल टेप उनके पास सुरक्षित है। जयपुर पक्ष के द्वारा "धन्य अवतार" के प्रसार को रोकने की कोशिश तो की गई परन्तु उसकी असलियत को कभी कही से चुनौती नही दी गई, इसलिए उसमे जो छपा है वह यथार्थ मे श्री कहानजी की वाणी ही है ऐसा मानने के सिवा हमारे पास कोई उपाय नही है परन्तु यदि आप माध्यस्थ भाव से उस वाणी को पढे तो इससे आप भी सहमत होगे कि वह एक माया-मूर्ति के राग मे किये गये अपलाप के सिवा कुछ भी नही है।

अहोरूपम्-अहोध्वनि

वहिनश्री वचनामृत के लिए श्री कहानजी ने जो कहा उसकी कुछ वानगी देखिए—

1 इन्द्रो के समक्ष इस समय सीमधरदेव जो कह रहे है वही यह वाणी है। यह तो दिव्यध्वनि की आवाज है।

2 तीनलोक के नाथ सीमधर भगवान् जहा विराजते है वहां हम साथ थे। क्या कहे, प्रभु सीमधर परमात्मा के पास कई वार जाते थे। उन भगवान् की यह वाणी है। यह तो केवलज्ञान की वारहखडी है।

3 वहिनश्री की पुस्तक के अलावा हम किसी मे नही पडे। हम सीमधर भगवान् के पास से सीधे ही आये हैं। इन वचनामृतो मे भगवान् की ध्वनि के मत्र भर गये है।

वहिनश्री की प्रसशा के भी वाक्य विचारणीय है।—उन पर भी दृष्टिपात करे। जव इतना पढ लिया है तो उसे भी वर्दाश्त कीजिए—

1 वहिन तो वहुत ही गभीर हैं। ऐसी आत्मा इस समय हिन्दुस्तान मे नही है। पवित्रता-परिणति और शुद्ध परिणति सहित का जातिस्मरण है। वैराग्य है। शास्त्र मे आता है कि—जव तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं तव पहले जातिस्मरण होता है, ऐसा नियम है, ऐसा वहिन को हो जाता है। वहिन को जातिस्मरण होने पर वैराग्य वहुत वढ गया है, उन्हे विलकुल पर की कुछ नही पडी है।

2 इनका पुरुषार्थ तो इतनी प्रवलता से उछल रहा है कि यदि पुरुष होती तो कव की मुनिदीक्षा लेकर वन-जगल मे चली जाती। यहाँ दिखती भी नही, पर क्या करे। स्त्री का शरीर है।

3 एक दिन वहिनश्री को आते देखकर कहा—"वहिन के लिए जगह करो। "धर्म की शोभा" चली आ रही हैं। वहिन न तो स्त्री है न पुरुष, वे तो स्वरूप मे हैं। भगवती स्वरूप एक चम्पावेन ही है, उनकी दशा अलौकिक है।

वे तो अतीन्द्रिय आनन्द मे मौज कर रही है।

ये तो थोडे से उदाहरण है। "धन्य अवतार" तो ऐसी ही बेपर की उड़ानो का खजाना है। इस सकलन के अनुसार इन मायाविनी बहिनश्री के बारे मे श्रीकहानजी की धारणा सचमुच किसी अवतार से कम नही थी। उन्होने अपने बारे मे अपने अनुयायियो को जो परामर्श दिये हैं वे तो और भी अनोखे हैं। इस बावत उनका स्पष्ट कहना था कि बहिनश्री के तलुवे चाटने वाले को सम्यग्दर्शन क विना भी बेडा पार हो जायेगा। बहिनश्री मुनियो से भी श्रेष्ठ है। अब अन्त मे सद्गुरुदेव के उन सत्परामर्शों के कुछ नमूने भी देख ही ले—

1 श्री कुदकुद आचार्य देव विदेह मे गये थे उसमे कौन साक्षी हैं? साक्षी यह चम्पाबैन बैठी है। महाविदेह मे बहुत निर्मलता थी, वहा को निर्मलता लेकर यहा आयी है।

2 स्त्रियो मे तो कोई नही, परतु वर्तमान मे सब—मुनियो, आर्यिकाओ से भी उनकी दशा विशेष है। सुवर्णपुरी की यह रचना उनके विदेह के जातिस्मरण का चित्रण है।

3 मैं कहता हू कि वचनामृत पुस्तक बाहर आयेगी तो हिन्दुस्तान मे डका बजेगा। यह पुस्तक पढकर तो विरोधी भी मध्यस्थ हो जायेगे। जगत को लाभ का कारण है। मान छोडकर एक बार मुनि भी पढे तो उनको भी लाभ का कारण है।

4 अरे, इनके दर्शन से तो भव से पाप कट जाये ऐसा यह जीव है। सब लोग इनके तलवे चाटे तब भी कम है, ऐसा तो यह द्रव्य है।

5 ओ हो, बहिन तो भगवती स्वरूप है। तुझे कहा ढूढने जाना है। उनके दर्शन कर न ! एक बार भाव से जो उनके दर्शन करेगा उसके अनन्त कर्म बधन ढीले हो जायेगे। उनके चरणो से जो लिपटा रहेगा उसे भले ही सम्यग्दर्शन न हो तत्व का अभ्यास न हो, तो भी उसका बेडा पार है।

अब उद्धरण भी कहा तक दिये जाये। सारी पुस्तक मे इसी प्रकार के प्रलाप भरे है। हमे तो लगता है कि समय रहते इस बात का निदान किया जाना चाहिए था कि श्री कहानजी के मन मस्तिष्क मे ऐसी विसगतियो और विकृतियो का समावेश कब से हुआ और कैसे हुआ ?

आप चुप क्यो है ?

इस सबध मे डॉ भारिल्लजी से एक बात कहना मुझे आवश्यक लगता है। श्री कहानजी आपके "सद्गुरुदेव" हैं और चम्पाबहिन आपके ही शब्दो मे "अपरिमित प्रतिष्ठा" की स्वामिनी है। परतु यह "धन्य अवतार" एक ऐसा प्रकाशन है जिसने आपके दोनो तथाकथित महापुरुषो का सही रूप उजागर कर दिया है।

आपने "एक ही रास्ता" के चौथे पृष्ठ पर लिखा था—सघर्ष का आरभ "धन्य अवतार" से आरभ हुआ और सूर्यकीर्ति प्रकरण मे चरम बिन्दु पर पहुच गया। दोनो ही प्रकरणो मे हमने पूरी शक्ति लगाकर रोकने का प्रयत्न किया और न रुकने पर समाज के सामने समय रहते सब कुछ स्पष्ट कर दिया।"

हमे यह तो मालूम है कि धन्य अवतार के वितरण को रोकने का प्रयास आप लोगो ने किया था। इस बाबत एक करार भी हुआ था जो बाद मे सोनगढ वालो ने अमान्य कर दिया। परन्तु इस सबध मे, प्रसार न रुकने पर समाज के सामने आपने कुछ

स्पष्टीकरण धन्य अवतार के बारे मे किया हो यह कभी ज्ञात नही हुआ।

हम समझना यह चाहते है कि इस पुस्तिका मे श्री कहानजी के मुख से कही गई जिन आगम-विपरीत बातो को छापा गया है उनके बारे मे आपका क्या स्पष्टीकरण है ? वे वाक्य श्री कहानजी द्वारा कहे ही नही गये है या उनके कुछ दूसरे अर्थ लगाकर आप उनकी व्याख्या सद्गुरुदेव की वाणी के रूप मे करते है ? आपको इसकी स्पष्ट घोषणा करनी चाहिए जो आपने शायद अब तक नही की है। इस प्रकार आपका उपरोक्त कथन सत्य की कोटि मे रखना हमारे लिए कठिन हो रहा है। अभी भी यदि आप धन्य अवतार की "गुरुवाणी" के बारे मे अपनी वास्तविक मान्यता स्पष्ट कर दे तो हमे सही सदर्भ समझने मे आसानी होगी।

उक्त प्रसग मे एक बात पर बार-बार ध्यान जाता है। धन्य अवतार के प्रकाशक डके की चोट यह दावा कर रहे है कि उसमे लिखा हर वाक्य सही है, श्री कहानजी के मुख से निकला है, और उन सबके टेप उनके पास सुरक्षित हैं। कहा तो यह भी जाता है कि उन्ही टेप कैसिट्स पर से यह मैटर लिखा गया है आज भी उसकी सत्यता को कोई चुनौती दे तो वे लोग टेप सुनवा कर अपने प्रकाशन का एक-एक वाक्य प्रमाणित करने को तैयार है।

भाई आपकी तरह हमे भी लगता है कि कोई आगम का अभ्यासी व्यक्ति, कितना भी रागी क्यो न हो, कभी ऐसा प्रलाप नही कर सकता। इसीलिए इस बारे मे आपकी ओर से स्पष्ट खण्डन नही होना हमे अखरता है। मुमुक्षु जन भी इसकी वास्तविकता जानना चाहते है। क्या कभी ज्ञात हो सकेगा कि इस

प्रसग मे आपके मौन का कारण क्या है ? क्या आपने नही सुना—
'मौन सम्मति लक्षणम् ।'

कभी कभी ऐसा लगता है कि कही आपको यह भय तो नही है कि प्रमाण मागने पर यदि पूरे टेप सार्वजनिक रूप से सुने गये तो कुछ और भी नई बाते उजागर हो सकती है । श्री कहानजी की राग-विमोहित दशा की और भी दयनीय तसवीर लोगो के सामने प्रकट हो सकती है ?

जो भी हो, यह सब गूढ है, रहस्यात्मक लगता है और इसका स्पष्टीकरण आपके जिन साथियो को करना चाहिए वे इस प्रसग मे चूक गये है । चूक रहे है ।

बीज विभावभावा स्वपरोभय हेतवस्तथा नियमात्,
सत्यपि शक्तिविशेषे न परनिमित्ताद्विनाभवन्ति यत ।

—पचाध्यायी 1/550

आत्मा मे जितने भी वैभाविक भाव होते है
वे स्व और पर के निमित्त से ही होते है ।
यद्यपि वे आत्म-द्रव्य के निज गुण है, परन्तु
पर के निमित्त के बिना उनकी उत्पत्ति नही होती ।

पाखण्ड का गढ़ सोनगढ़

श्री कहानजी के जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष सोनगढ मे उनके वर्ष नही थे। वे पूरी तरह मायाविनी वहिनश्री के वर्ष थे और न जाने क्यो श्री कहानजी भी स्वय वहिनश्री के रग मे पूरी तरह रग गये थे। अव वे भगवत कुन्दकुन्द की गाथाओ के स्थान पर "वहिनश्री-वचनामृत" की सूक्तियो पर अपना प्रचवन देते थे। उन्ही की व्याख्या करते थे और उन्हे "दिव्य-ध्वनि का सार" वताते रहते थे। वह सोनगढ जहाँ से श्री कहानजी द्वारा एक दिन मिथ्यात्व के खिलाफ सिहनाद करने का दावा किया गया था, अव उन्ही के सामने साक्षात् ग्रहीत मिथ्यात्व का गढ वनता जा रहा था।

यह जानने का हमारे पास कोई उपाय नही है कि चम्पावैन ने श्री कहानजी जैसे भोले व्यक्ति को कैसे इतना प्रभावित कर लिया था। परन्तु वास्तविकता यह है कि अपनी महतता सिद्ध करने के लिये वैन ने जो भी कहा, श्री कहानजी ने आगम को भूलकर उसका समर्थन किया और उसका प्रचार भी किया। कुछ नमूने देखिये—

1. चम्पावेन ने जातिस्मरण का पाखण्ड फैलाया और मन-

गढत बात कही, तब श्री कहानजी ने हा-मे-हा मिलाकर समर्थन किया कि हम भी उसके साथ सीमधर भगवान् के समोसरण मे थे। इतना भर नही वरन् कुन्दकुन्द भगवान् के वहा जाने की साक्षी भी उन्होने बहिनश्री से भरवा दी।

- यह भूलकर कि बीच के दो हजार साल आप दोनो किन पर्यायो मे रहे ? तब आपका सम्यक्त्व और आपके भीतर तीर्थंकर की वाणी कैसे सुरक्षित रही ?
- यदि सीधे वही से पधार रहे हैं तो पचम काल मे तो मिथ्यादृष्टि ही यहा मनुष्य होकर जनमता है। क्या वह व्यवस्था आपके लिये बदल गई थी ?
- फिर तीर्थंकर की वाणी लेकर आये आप आधी जिन्दगी तक दण्डीस्वामी बने हुए साक्षात् ग्रहीत मिथ्यात्व मे क्यो उलझे रहे ? तब उस वाणी का क्या हुआ ?

2. चम्पाबैन ने अपने लिये निर्मल अनुभूति और सम्यग्दर्शन का सपना देखा तो श्री कहानजी ने उनके सम्यक्त्व की जयन्ती मनाना प्रारम्भ कर दी। उस दिन बहिनश्री पर विशेष प्रवचन दिये। उन्हे मुनियो-आर्यिकाओ से श्रेष्ठ कहकर चारित्र का मखौल बनाया।

- यह भूलकर कि सम्यक्त्व एक परिणाम विशेष का नाम है और वह मात्र केवली ज्ञानगम्य है। दूसरे यह कि उपशम का काल सिर्फ अतर्मुहूर्त मात्र है, और क्षयोपशम मे मालिन्य होता ही है। फिर भी "परनिंदा और आत्म-प्रशसा" की प्रवृत्ति उसमे नही होती।

3. चम्पाबैन ने आगामी भवो मे श्री कहानजी को तीर्थंकर सूर्यकीर्ति के रूप मे उपजाकर अपना गणधर का स्थान सुरक्षित किया, तब श्री कहानजी कहने लगे कि हा, "कभी-कभी लगता तो था कि हम तीर्थंकर बनेगे। आज बहिनश्री की वाणी सुनकर सब सच-सच समझ मे आ गया।"

- यह भूलकर कि जातिस्मरण चम्पाबैन को हुआ है, उन्हे नही। उन्होने भी कहना शुरू कर दिया कि हम दोनो साथ-साथ सीमधर भगवान् के पास जाते थे। कई बार गये।

  बैन की वाणी तीर्थंकर की वाणी का सार है।

- पता नही कि न तो स्त्रीलिंग से मुक्ति मिली और न ही भोगभूमि की पर्याय मिली। क्यो ?

- चम्पाबैन को और आपको दोनो को ही क्यो इस कलि-काल मे यहाँ मिथ्यात्व सहित जन्म लेना पडा ?

4. चम्पाबैन ने कहा मेरे जातिस्मरण मे नौ भव का ज्ञान है। चार पिछले, एक वर्तमान और चार अगले। उत्तर मे श्री कहानजी ने कब क्या कहा इसे शायद वे भी याद नही रख पाये। कभी कहा—बहिन को असख्य भवो का ज्ञान है। कभी कहा—अरबो भवो का ज्ञान है।

- यह भूलकर कि जातिस्मरण "पिछले भवो के ज्ञान का नाम है। भावी भवो को दिखा सके यह जातिस्मरण का विषय ही नही है। वह तो शब्द ही "जातिस्मरण-जन्मो की स्मृति" अपने अर्थ स्वय बोलता है।

5 एक दिन चम्पाबैन ने लेखनी उठाई और वे सूक्तिया रच दो जो "बहिनश्री-वचनामृत" नाम से प्रकाशित हुई। इनका वास्तविक लेखक कौन है यह भी अब रहस्य नहीं रह गया है, परन्तु उसमे न भो झाके तो यह रचना बहिन-श्री की प्रथम और अन्तिम रचना है। न कभी पहले उन्होने कुछ लिखा, न कभी बाद मे। पर न जाने क्यो श्री कहानजी को वह लेखन द्वादशाग का सार और दिव्य-ध्वनि का मत्र दिखाई देता रहा। उन्होने उसकी दसो लाख प्रतिया छपवाने और पाटिये पर खुदवाने का निर्देश दिया।

उनकी श्रद्धा बोलती थी

स्वाभाविक है कि जब कोई व्यक्ति किसी पाखण्ड से इतना प्रभावित हो जायेगा, किसी मायाविनी के प्रति भक्ति या अनुराग से इतना भर उठेगा, तब अवश्य ही उसका चिन्तन अपना संतुलन खोकर अवैज्ञानिक और चमत्कार को नमस्कार करने-कराने वाला बनकर रह जायेगा। श्री कहानजी के बारे मे भी चम्पाबैन को लेकर यही हुआ। जिन्दगी भर समयसार पढने-पढाने के बाद, जीवन के सध्याकाल मे अपने अनुयायियो को देने के लिए श्री कहानजी के पास यही शेष बचा था कि —"बहिनश्री के दर्शन से भव के पाप कट जायेगे। सब इनके तलवे चाटे, उसी से बेड़ा पार होगा।

ये शिक्षाये श्री कहानजी ने बनावटी मन से नही दी थी। वास्तव मे उन्हे ऐसा ही श्रद्धान हो गया था। तभी तो स्वय अपने लिये भी उन्होंने सम्बोधन किया—"ओ हो, बहिन तो भगवती स्वरूप है। तुझे कहा ढूढने जाना है ? एक बार भाव से जो उनके दर्शन करेगा उसके अनन्त कर्म-बधन ढीले हो जायेंगे। उनके

चरणो से जो लिपटा रहेगा, उसे भले ही सम्यग्दर्शन न हो, भले ही तत्व का अभ्यास न हो, तो भी उसका वेडा पार हो जायेगा।"

ऐसी अद्भुत थी चम्पावेन की महिमा और ऐसा गहन था श्री कहानजी पर उनका प्रभाव। आज सोनगढ मे जो हो रहा है, वह उसी प्रपच का फल है और श्री कहानजी के उन्ही भटकाने वाले प्रलापो का नतीजा है। अन्यथा फोम के तीन गद्दो पर, पाच तकिये लगाकर विराजमान चम्पावैन की निर्मल अनुभूति और निर्विकल्प आनन्द के गीत गाये जाये, ऐसे चमत्कारो का जैन मान्यताओ से दूर दूर का भी नाता नही बैठता।

अब तो कहना ही क्या है

सानगढ मे बहिनश्री की सामूहिक प्रार्थना और आरती आदि के आडम्बर श्री कहानजी के रहते ही प्रारम्भ हो गए थे। इससे बहिनश्री की महिमा बढती गई। गुरु की आखे मुदते ही उन्होने अपनी गुरु-दक्षिणा चढा दी। अब वहा ऐसी झाकिया स्थायी रूप से बना ली गई हैं जिनमे श्री कहानजी के पच-कल्याणक दिखाये गये है।

इन झाकियो के दर्शन करते समय जैसे-जैसे आप आगे बढते है, वैसे-ही-वैसे प्रकाश और ध्वनि के विशेष से आपको उस दिवगत आत्मा के, गर्भ से लेकर मोक्ष तक, पाचो कल्याणक सजीव जैसे दिखाई देते है। वाह रे सम्यक्त्व, और वाह री आगम अनुकूलता।

ऐसा लगता है कि श्री कहानजी के मन मे यह बात कही गहरे पैठ गई थी कि अगले भव मे उन्हे तीर्थंकर और बहनश्री को उनका गणधर होना ही है। इसी भ्रान्ति के कारण सोनगढ का पूरा विकास "व्यक्ति-पूजा" के सिद्धान्त के ही आस-पास होता रहा। वे स्वय मानस्तम्भ पर सीमधरस्वामी से भी ऊपर

अकित अपनी मूर्ति की रोज परिक्रमा करते रहे और जब-जब उनके नाम के साथ ऊची-ऊची उपाधियो का प्रयोग किया गया, तब-तब उनका निषेध करने के बजाय, वे उसमे रस लेकर झूमते रहे। ऐसे सैकडो उदाहरण वहाँ के प्रकाशनो मे, और वहा की गतिविधियो मे भरे पडे है। उनका यह आचरण कोरा दिखावा या नाटक नही हो सकता। इसमे उनके मन की श्रद्धा बोलती थी।

दरार बढती गई

परम सौभाग्य की बात यह रही कि एक ओर जहा एक सुनियोजित दुरभिसधि के अतर्गत यह सब होता रहा, और पूर्व-सस्कारो से ग्रसित नव-दीक्षित, तथाकथित दिगम्बर भाई-बहिन उसमे मगन होकर प्रमुदित होते रहे, वही दूसरी ओर, मूल दिगम्बर आम्नाय के पोषक और दूरदर्शी मुमुक्ष भाई-बहिन, इस चकाचौध को निरर्थकता का अनुमान करके, मन-ही-मन इससे विलग और उदासीन होते चले गये। श्री कहानजी के लिये उनके मन मे भक्ति थी, परन्तु उस भक्ति के आवेश मे भी अपनी परम्पराओ और अपने सिद्धान्तो मे विसगतियो का प्रवेश उन्हे इष्ट नही था। इतिहास के आईने मे देखने पर सोनगढ के सुरक्षित दुर्ग मे यह दरार सबसे पहले परमागम-मन्दिर-प्रतिष्ठा के समय 1974 मे, दिखाई देने लगी थी, जो निरन्तर बढती गई और दस साल बाद, सोनगढ ट्रस्ट के विभाजन के रूप मे, उसकी अन्तिम परिणति हमारे सामने आई।

श्री कहानजी का दयनीय अन्त

जैसे-जैसे स्वर्णपुरी के आगन में चम्पाबैन की पाखण्ड-वृत्तियो का विस्तार होता गया, वैसे ही वैसे सोनगढ के सचालन

मे आस्थाहीन और हठाग्रही किस्म के लोगो का वर्चस्य बढता चला गया। मूल दिगम्बरो को सचालन के वृत्त से बाहर रखने के लिए वहा जितने मसालेदार पापड बेले गये, उनका जायका लेने का यहा अवसर नही है। एक ओर जो लोग बूढापे की दुहाई देकर ट्रस्ट की अध्यक्षता से दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व निवृत्ति ले चुके थे, ऐसे जनो को भी, मरघट की राह से पकडकर महत्वपूर्ण कुर्सियो पर बिठाया गया, तथा दूसरी ओर सारी योग्यताये और अटल निष्ठाए लेकर भी कुछ समर्पित लोग केवल इसलिये अस्वीकृत और उपेक्षित होते रहे क्योकि वे दिगम्बर सस्कारो से युक्त थे और मूढताओ के हामी नही थे। स्व बाबूभाई मेहता के साथ यही हुआ।

इस सारे घटनाचक्र का नतीजा यह हुआ कि श्री कहानजी अपने अत समय मे कुछ ऐसे लोगो के जाल मे फस गये जो उनका अधिक लाभ अपनी नीव की मजबूती के लिए करना चाहते थे। समाज मे उनकी लोकप्रियता, और उनके प्रभाव को भुनाने की यह होड इतनी विवेक-विहीन थी, इतनी स्वार्थ-प्रेरित थी कि श्री कहानजी की अन्तिम स्वास तक अपना स्वार्थ साधने वालो ने उनकी मृत-देह के साथ भी घोर अवमाननापूर्ण व्यवहार किये। वे उनके दाहकर्म को भुनाने से भी नही चुके।

यही वह मण्डली थी जिसने मरते-मरते भी उन्हे निमित्तो के द्वार तक भटकाया। अर्द्ध चेतन अवस्था मे उन्हे अस्पतालो मे शरण दिलाते रहे, और प्राणान्त के बाद उनकी देह को तीन दिनो तक विकृत होने दिया। महज इस प्रलोभन मे कि विदेशो से कुछ भक्त आ सके और उनके स्मारक के लिए अधिकाधिक राशि के वचन प्राप्त किये जा सके।

पुण्य के सद्भाव और पुण्य के अभाव का वह एक ज्वलत उदाहरण था। जिसके दर्शन के लिये कभी बड़े-बडे कोटाधिपति

लाइन लगाकर खड़े रहते थे, उसका पार्थिव शरीर आज उन्ही भक्तो की प्रतीक्षा मे सड रहा था। उसे इतनी मद गति से वम्वई-सोनगढ की दूरी तय करना थी जिससे अफ्रीकी देशो से चले हुए श्रद्धालु भक्त उसी के साथ मजिल पर पहुच जायें।

श्री कहानजी की अत्येष्ठि मे इस असाधारण विलम्ब का एक मात्र कारण यह लोभ ही था क्योकि जिस रफ्तार से मृतदेह मे त्रस जीवो की सख्या वढ रही थी, उसी रफ्तार से, वहिनश्री और उनके सहयोगियो की कल्पना मे, स्मारक-निधि का आकडा वढता जा रहा था। यह तो निर्विवाद है कि उस दिन स्वर्णपुरी की सारी सयोजना स्वर्ण-सग्रह को लक्ष्य वनाकर सचालित हो रही थी। दिवगत व्यक्ति की अविनय का अथवा जीव हिंसा का, वहा किसी को विचार तक नही था।

सोचता हू कि अपने उपकारी गुरु के साथ लोगो की यह कैसी स्वार्थान्ध चा र थी। कितनी कुटिल और कितनी लालसा भरी। परन्तु फिर सोचता हू कि एक मरने वाले के मन की आस्था यदि अडिग होती तो दस-वीस क्या दस हजार लोग मिलकर भी इतने षडयत्र नही कर सकते थे। जीवन के पचानवे वर्ष मे से यदि श्री कहानजी ने पेचानवे दिन भी मृत्यु-महोत्सव की तैयारी मे लगाये होते तो शायद वह पुण्यशाली जीव कुमरण से वच गया होता। एक ही प्रश्न वार-वार मन को कुरेदता है कि यदि जिनवाणी का कुछ अश भी उन्हे प्राप्त था, तो उसे अगले भव तक साथ ले जाने के लिये उन्होने क्यो उपाय नही किया ?

एक प्रश्न और मुझे आज तक कचोटता है कि जव श्रीकहान जी के मूढ और विवेक-विहीन शिष्य यह सव कर रहे थे तव उनके शास्त्रज्ञ, प्रवुद्ध और समयसार के व्याख्याकार, विद्वान् क्या कर रहे थे ? उन्होने अपने गुरु का अन्त सुधारने का उपाय क्यो नही किया ? क्या वे भी इन क्रिया-कलापो को सहमति देकर

इनका अग वन गये थे, या उनकी चली नही, या वे क्रमबद्ध पर्याय पर भरोसा करके, निष्क्रिय होकर बैठ गये थे ?

पचास-साठ-सत्तर साल का व्यक्ति यदि अपनी मौत को बहलाने के लिये, अस्पताल मे डॉक्टरों के निहोरे करता फिरे तब तक तो बात समझ मे आती है, परन्तु बानवे साल की आयु का उपभोग किया हुआ व्यक्ति, यदि मौत के भय से सैकड़ो किलोमीटर भागता हुआ, एक अस्पताल से दूसरे मे छिपता फिरे, तो चितनीय बात तो है। उसी प्रकार यदि मिथ्यात्व और मूर्च्छा से प्रेरित व्यक्ति ऐसा करे तो समझ मे आता है, परन्तु यदि आधी शताब्दी तक समयसार के गीत गाने वाला, सम्यक्त्व और विराग की सौगाते बाटने वाला प्रबुद्ध (!) ऐसा करता देखा जाये तो इतिहास उसका क्या मूल्याकन करेगा ? अत. स्पष्ट है कि श्री कहानजी के मरण मे कुछ-न-कुछ ऐसा अवश्य रहा है जो स्वाभाविक नही था। अपने युग के एक पुण्यशाली जीव का वह अत्यन्त दयनीय अन्त था। उसका सारा पुण्य पापानुबधी-होकर समाप्त हुआ।

इस प्रकार 1981 के प्रारम्भ मे ही उस युग का अन्त हो गया जिसे हम 'कहान-युग' कह सकते है। श्री कहानजी के अवसान से अनेक ऐसे प्रश्नो का जन्म हुआ है जो अब सदा अनुत्तरित ही रहेगे। उनके जाते ही स्वर्णपुरी मे ग्रहण लगना प्रारम्भ हो गया। फिर वहा जो हुआ, और जो हो रहा है, वह समाज के सामने है। दिगम्बरत्व और मूल आम्नाय की मर्यादा को खण्डित करने वाले एक नही अनेक उपद्रव नित्यप्रति सोनगढ से हो रहे है। धातकी-खण्ड के भावी तीथकर के रूप मे श्री कहानजी की प्रतिष्ठा का दुराग्रह उन सब उपद्रवो मे प्रमुख है। हमारी परम्पराओ पर यह बहुत बडा आघात है।

धर्म की साधना के क्षेत्र मे मरण का बडा महत्व है, दार्शनिको ने भी मरण को जीवन से अधिक प्रतिष्ठा दी है। जीवन-भर अपने अन्त को सवारने का ही निर्देश साधक को प्राय. सब धर्मो मे दिया जाता है। साधक के लिए मरण को "जीवन का परीक्षाफल" कहा गया है। जैन श्रावक "समाहिमरण च वोहिलाहो य, मम होउ जगद वधव" बोलकर नित्य ही समाधि मरण की कामना करता है, उसका सकल्प लेता है। शायद जैनाचार ही ऐसा विधान करता है जहा सद्यजात शिशु को, और विवाह के समय वर-वधू को भी, दीर्घायु, सुख और सौभाग्य के साथ-साथ, समाधिमरण का आशीर्वाद दिया जाता है—अपमृत्यु विनाशन भव, समाधिमरण भव।

इतना सावधानी और तैयारी करने पर भी मरण का सुधारना बडा कठिन है। जीवन भर साधना की जाये तब कही अन्त समय मे निराकुल और शान्त परिणामो से पर्याय का पर्यावसान हो पाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसकी कठिनता का वर्णन करते हुए लिखा है—

'कोटि-कोटि मुनि जतन कराही,
अत 'राम' कहि आवत नाही।"

जीवन भर चारित्र की उपेक्षा करने वाले, और मुनियो का अनादर करने वाले श्री कहानजी ने यदि किसी मुनि का तो दूर, श्रावक का भी समाधि मरण निकट से देखा होता तो शायद उनका अन्त इतना वीभत्स न हुआ होता। इस बात का अधिक महत्व नही है कि जीवन भर उन्होने क्या पढा और क्या पढ़ाया। महत्व तो इससे आका जायेगा कि समयसार से उन्होंने अपने लिये क्या पाया ? तब यही स्वीकार करना पडेगा कि जीवन के

उत्कर्ष की ओर उन्होने ध्यान ही नही दिया। उस परीक्षा मे खरे नही उतरे। उन्होने अपने लिये इस लोक और परलोक के मध्य एक नये लोक की स्थापना कर दी जिसका नाम है 'जसलोक।"

कहानी रह जायगी

यही कारण था जो मरणोपरान्त श्री कहानजी का कोई प्रभाव, उनके प्रति समादर की कोई भावना उनके अनुयायियो मे अतरंग से शेष नही रही। चम्पाबैन यदि स्वय गणधर बनने का स्वप्न अपने लिये न सजोये होती तो अब शायद श्री कहानजी का नाम भी न लेती। अपने कद से ऊचा बढ जाने की आकाक्षा मे इस महिला ने "धन्य-अवतार" जैसे प्रकाशनो से, अपने गुरु की छवि को निम्न-स्तर तक गिराने की कृतघ्नता की है। वास्तव मे श्री कहानजी के दयनीय मरण ने स्वत उनके सारे किये-कराये पर पानी फेर ही दिया था। यदि कुछ कसर बाकी रह गई थी तो उसे "धन्य-अवतार" ने पूरा कर दिया।

इतना सब होते हुए भी इतिहास के पन्नो पर श्री कहानजी का नाम बहुत काल तक अकित रहेगा। एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे जिसने अपनी गर्हित कुल-परम्पराओ और ग्रहीत मिथ्यात्व की बेडियो को तोडकर, सन्मार्ग पर चलने की अदम्य लालसा का परिचय दिया। उसके लिए भरसक प्रयत्न किया और उस सन्मार्ग के प्रति बहुमान का प्रदर्शन किया। एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे भी वे याद किये जायेंगे जिसने अपने साथ मिथ्या कूप मे पडे हुए हजारो ऐसे जनो मे तत्व की जिज्ञासा जगाकर उन्हे भी दिगम्बरत्व से परिचित कराने का प्रयास किया। और एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे भी जिसने दिगम्बर समाज मे शास्त्रो के पठन-पाठन को, स्वाध्याय की पद्धति को, जन-जन तक पहुचाने के लिये अनुपम और अपराजित पुरुषार्थ किया। अतिशय पुण्य लेकर

उत्पन्न हुए उस कर्मठ व्यक्ति ने आधी शताब्दी तक जैन समाज के बहुभाग को अपने ढग से प्रभावित किया। उसके बाद क्या हुआ यह एक अलग बात है।

बाद की परिस्थितियां

हम पहले यह चर्चा कर आये है कि सोनगढ-पथ की गिरती हुई शाख को बचाने के लिये 1975 से 1980 तक अनेक उपाय किये गये। चूकि विरोध का सबसे कारगर कदम मध्यप्रदेश मे उठाया गया था इसलिये वहाॅ अपने पक्ष मे जनमत बनाने की योजना को अधिक कारगर ढग से क्रियान्वित किया जा रहा था। इस बीच श्री कहानजी के अवसान के शीघ्र बाद सोनगढ के साम्राज्य का बटवारा हो गया। एक सीधी रेखा खीचकर यदि हम इस बटवारे को समझना चाहे तो अब अन्य सम्प्रदायो से, पूर्व मान्यताओ को त्यागकर आये हुए नव दीक्षित, तथाकथित दिगम्बर एक ओर हो गये थे। इनकी अधिष्ठानी देवी बहिनश्री थी और इनकी राजधानी सोनगढ ही थी। वही सौराष्ट्र मे और उसके बाहर इक्के-दुक्के लोगो पर ही इनका प्रभाव था। दूसरा पक्ष उन दिगम्बर मुमुक्षु भाइयो का था जो अपनी बुद्धि-विवेक से ही श्री कहानजी के अनुयायी बने थे, और जिन्हें दिगम्बरत्व पर पूरी श्रद्धा थी। उसके प्रति अमिट लगाव तथा अपनत्व की भावना थी। "श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट" और "श्री टोडरमल स्मारक" को अपने नियत्रण मे लेकर इस पक्ष ने अपनी गतिविधियो को जयपुर से सचालित करने का सकल्प किया। "आत्म-धर्म" को अपनी स्थापित अस्मिता खोना पडी। सोनगढ मे वह "आत्म-धर्म" ही रहा, परन्तु जयपुर मे उसका नाम बदल कर "वीतराग विज्ञान" कर देना पडा।

इस आपातकाल मे श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट

की गतिविधिया तेज की गई और उस बहाने ट्रस्ट की सम्पत्ति के बल पर प्रचार-प्रसार की एक अत्यन्त महत्वाकाक्षी योजना बनाकर सुनियोजित ढग से उस पर अमल प्रारम्भ हुआ। सर्वेक्षण के वहाने, सर्वेक्षण मे होने वाले व्यय से कई गुना अधिक राशि व्यय करके, तीर्थो पर पाच-पाच दिन के ऐसे मेले लगाये जाने लगे जिनमे सर्वेक्षण गौण रह गया और कहानपथ का प्रचार-प्रसार प्रमुख होकर दिखाई देने लगा। परन्तु मध्यप्रदेश को सजग समाज से प्रयोजन की यह लुकाछिपो अधिक समय ओझल नही रह सकी।

काठ की हांडी क्या पुन चढ़ी

हिन्दी की एक कहावत है कि—"काठ की हाडी दुबारा नही चढती।" अर्थ यह है कि खिचडी पकाने के लिये कभी काष्ठ-निर्मित पात्र को यदि अग्नि पर चढाया जाय तो वह अग्नि के तेज को सह नही पायेगा, एक बार मे ही जलकर कोयला बन जायेगा। फिर,वह हाडी दुबारा अग्नि का सामना नही कर सकेगी। श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की तीर्थ- सर्वेक्षण योजना का भी मध्यप्रदेश में यही परिणाम हुआ।

तीर्थ सर्वेक्षण योजना के पीछे छिपा हुआ पथ-प्रचार का प्रयोजन अधिक समय समाज से छुपा नही रह सका। समाज ने उसका भी तीव्र विरोध किया। लोगो ने अपने तीर्थक्षेत्रो का सर्वेक्षण कराने से ही मना कर दिया। कई तीर्थो ने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष से स्पष्ट मार्गदर्शन करने की अपील की। इस पर तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट के कर्णधारो को कहा गया कि वे शुद्ध सर्वेक्षण योजना ही तीर्थों पर क्रियान्वित करे और उसे अपने प्रवचनो तथा साहित्य-प्रचार के द्वारा पथ प्रचार का साधन न बनावे। प्रचार के लिए

जब, उन्हे जहा निकलना हो तब स्वतंत्र रूप से प्रचार के लिए ही जावे, उसे तीर्थ-सेवा का रूप देकर प्रचार कार्य न करे।

पीछे परमागम मन्दिर की प्रतिष्ठा के विवरण मे बताया जा चका है कि कैसे अपने विशिष्ट अभिप्रायो की सिद्धि के लिए ही तीर्थक्षेत्र कमेटी के समान उद्देश्यो को लेकर कुन्दकुन्द कहान तीर्थरक्षा ट्रस्ट की स्थापना जल्दबाजी मे रातोरात कर ली गई थी। अत तीर्थ-सर्वेक्षण योजना मे सर्वेक्षण एक ऐसा सुनहरा परिधान था जिसके भीतर पथ-प्रचार का बुभुक्षित कंकाल ही छिपा हुआ था। इसलिये तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रस्ताव का परिणाम जो होना था वही हुआ। सोनगढ के कर्णधारो को सर्वेक्षण योजना मे से प्रचार-पक्ष प्रथक कर लेना इष्ट नही हुआ। जिस प्रकार उन्होने कमेटी का परामर्श ठुकराया उससे यह बात एकदम उजागर हो गई कि उनके लिये प्रचार प्रथम है, सर्वेक्षण बाद मे।

जब सर्वेक्षण योजना को लेकर जगह-जगह से विरोध के स्वर उठने लगे और समाज मे भ्रान्तिया बढने लगी, तव भारत-वर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी को अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए समाज को सही दिशा निर्देश देने के लिए एक वक्तव्य प्रकाशित कराकर यह कहना पडा की कुन्दकुन्द कहान तीर्थ रक्षा ट्रस्ट का तीर्थक्षेत्र कमेटी के साथ कोई सम्बध नही है। उनसे किसी भी प्रकार का सहयोग या सहायता लेने अथवा न लेने का निर्णय तीर्थो को स्वत अपने विवेक से करना चाहिये। अध्यक्ष श्रीयुत श्रेयासप्रसादजी और महामत्री श्री जयचन्दजी लोहाडे के सयुक्त हस्ताक्षरो से प्रसारित वह वक्तव्य इस प्रकार था—

—"इसी सिलसिले मे प्राय श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट बम्बई के बारे मे भी प्रश्न उठ रहे हैं। इस सम्बन्ध मे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि "भारतवर्षीय

दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी" का श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के साथ किसी प्रकार का कोई अनुबध नही है। दूसरी ओर सदैव से प्रत्येक तीर्थ और मन्दिर आदि सस्थान, अपनी-अपनी प्रबध समितियो के अतर्गत, अपनी-अपनी नियमावली के अनुसार, कार्य करते हैं। समाज की किस सस्था से सहयोग या अनुदान लेना, तथा किससे नही लेना, यह निर्णय वे संस्थान स्वय करते हैं। प्रारम्भ से अब तक यही प्रथा रही है।"

—साहु श्रेयासप्रसाद जैन, अध्यक्ष,
—जयचन्द लोहाड़े, महामत्री,
बम्बई, दिनाक 13 जून 1985,

इस प्रकार प्रबुद्ध और जागरूक समाज ने एक बार पुन सिद्धान्त के एकागो और विवक्षा-विहीन प्रतिपादन के प्रति अपनी अरुचि, और अपना विरोध सशक्त ढग से व्यक्त किया। सबधित सस्थाओ के कर्णधारो ने यदि इन घटनाओ से कुछ सकेत भी ग्रहण किये होगे तो यह जैन शासन का सौभाग्य माना जायेगा।

जत्थ पुण उत्तमट्ठ मरणम्मि भत्ती ण विज्जदे तस्स,
किह उत्तमट्ठ मरणं सपज्जदि मरण-कालम्मि।

—मूलाराधना/683

समाधि-मरण के प्रति जिसमे भक्ति नही है, उसका आदर नही है, अन्त समय मे उसका मरण समाधिपूर्वक कैसे हो सकता है?

नही हो सकता।

समाज की प्रतिक्रिया

सोनगढ से सूर्यकीर्ति प्रतिष्ठा की तैयारी के समाचार फैलते ही दिगम्बर जैन समाज मे क्षोभ और विरोध का वातावरण निर्मित हो गया था। जगह-जगह से इस आगम-विरुद्ध योजना के विरोध मे आवाज उठाई गई। समाज के कर्णधारो ने, विद्वानो ने और प्रतिष्ठाचार्यो ने एक स्वर से दिगम्बरत्व की जड पर कुठाराघात करने वाली इस विवेक-विहीन योजना का कडे शब्दो मे विरोध किया।

सोनगढ मे सूर्यकीर्ति की स्थापना का षड्यन्त्र जब से प्रारम्भ हुआ, तभी से उसकी पूरी जानकारी टोडरमल स्मारक के कर्णधारो को रही है। यद्यपि थोड़े ही दिन पहले मूल आम्नाय के ट्रस्टी सदस्यो ने सामूहिक त्यागपत्र देकर सोनगढ ट्रस्ट से अपना सबध विच्छेद कर लिया था, परन्तु उनके सम्पर्क ऐसे थे जिससे पल-पल की खबर जयपुर पहुच रही थी। वे यह भी अनुमान कर रहे थे कि यदि यह षड्यन्त्र नही रोका गया तो दिगम्बर जैन समाज मे ऐसा भूडोल आयेगा जिसमे उनकी कल्पना के महल भी ढह जायेगे।

शायद इसी भय से आक्रान्त होकर टोडरमल स्मारक
ओर से सूर्यकीर्ति स्थापना के बारे मे विद्वानो की राय मागी
उनका यह प्रयास रहा कि विद्वानो के अभिमत दिखाकर सो
के अपने मित्रो को प्रभावित करें और इस स्थापना को रो
श्री अभिनन्दनकुमारजी प्रतिष्ठाचार्य के आमन्त्रण पर समा
वरिष्ठ विद्वान प्रतिष्ठाचार्य श्रीमान पण्डित नाथलालजी शा
और सिद्धान्ताचार्य पण्डित फूलचन्दजी के जो वक्तव्य उस स
प्राप्त हुए वे इस प्रकार है—

पं० नाथूलालजी का अभिमत—

क्या कहानजी स्वामी भावी तीर्थंकर हैं ?
क्या उनकी तीर्थंकर प्रतिमा शास्त्रानुकूल है ?

श्री अभिनन्दनकुमारजी प्रतिष्ठाचार्य श्री टोडरमल भ
जयपुर ने एक परिपत्र द्वारा जैन समाज के मान्य प्रतिष्ठाच
और विद्वानो से यह समाधान चाहा है कि बहनश्री चम्पा
सोनगढ ने अपने जातिस्मरण से श्री कहानजीस्वामी को भ
तीर्थंकर बताया है। क्या बहनश्री के अनुसार उनकी तीर्थ
मूर्ति की प्रतिष्ठा शास्त्रानुसार उचित है ?

मैने जैन शास्त्र भण्डार से पचमेरू सबधी त्रिकालवर्ती त
करो के नाम देखकर यह जानकारी प्राप्त की है कि सूर्यकीर्ति न
के तीर्थंकर उन नामो में कोई नही है। बहनश्री धातकीखण्ड
क्षेत्रो के तीर्थकरो मे सूर्यकीर्ति तीर्थंकर का नाम बताती है। प
धातकीखण्ड के पूर्व और पश्चिम के भरत एव ऐरावत
भविष्य कालवर्ती 24 तीर्थकरो के नामो मे से सूर्यकीर्ति क
नही है। पाचो विदेहो के कुल 160 देशो के तीर्थंकरो के न
सीमन्धर आदि बीस ही होते है, इनमे भी सूर्यकीर्ति कोई नही
पुष्करार्ध द्वीप के भरत एव ऐरावत क्षेत्रो मे भी

कालवर्ती तीर्थंकरो मे सूर्यकीर्ति कोई नही है, क्योकि इन नामो मे परिवर्तन नही होता। अत' केवल बहनश्री के जातिस्मरण के आधार पर कानजीस्वामी को भविष्यकाल के तीर्थंकर मान लेना जैनागम का घोर अपमान है। बहनश्री को पूर्व असख्यात भवो के जातिस्मरण साथ के भविष्य काल का भी जातिस्मरण होना सर्वथा आगम विरुद्ध और असभव बात है। वर्तमान काल की स्त्री पर्याय मे बहनश्री केवल परोक्षज्ञान वाली महिला है। उन्हे असख्य भूतकाल के और आगामी चार भवो का स्पष्ट ज्ञान सभव नही। जाति-स्मरण मे ऐसा हो भी नही सकता।

भरत चक्रवर्ती द्वारा कैलाश पर्वत पर 24 जिन मन्दिरो के निर्माण का केवल उत्तर पुराण मे उल्लेख मात्र मिलता है। किन्तु भविष्य काल की मूर्तिया कही स्थापित की गई मिल रही हो, ऐसा उदाहरण भी उपलब्ध नही है।

हमे आश्चर्य और दु ख यह है कि जिस महान जैन अध्यात्म के स्वाध्याय, मनन और प्रवचनो द्वारा श्री कानजीस्वामी ने सहस्त्रो मुमुक्षुओ को आत्महित का मार्ग बताया, वही विदेह क्षेत्र मे कुन्दकुन्दस्वामी के सामने पूर्वभव के राजकुमार और भावी तीर्थंकर बनने की ऐसी अपनी प्रशसा सबधी भ्रान्तियो मे पडकर, अपनी मर्यादा का अतिरेक कर गये और जीवन के अतिम दिनो मे अपने प्रवचनो मे बहनश्री की अत्यधिक सराहना करने लगे थे। सोनगढ मे बहनश्री का सम्यग्-दर्शन प्राप्ति दिवस मनाना, उनको तथा स्वामीजी को अर्घ चढाना, आदि अतिरेक तब से अभी तक चालू है। यहा तक कि स्वामीजी स्वय भी अपने को तीर्थंकर का जीव प्रगट करने लगे थे। जैसा कि उनकी 87वी जन्म जयन्ती (बम्बई) के अक से स्पष्ट है।

सोनगढ मे इसी वर्ष फाल्गुन शक्ला 1 से 7 तक होने वाली

पचकल्याणक प्रतिष्ठा मे सूर्यकीर्ति तीर्तंकर (कानजीस्वामी) और महापद्म तीर्थंकर (श्रेणिक राजा) की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की जा रही है। इन भविष्यकालवर्ती तीर्थंकरो की प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा विधि, प्रतिष्ठा शास्त्रानुसार सभव नही, क्योकि मत्र-सस्कार विधि मे इनके स्थान, माता-पिता, वश, कल्याणक तिथि, जन्माभिषेक, एव निर्वाण आदि के स्थान का ज्ञान अनिवार्य है। अन्यथा उनकी पूजा मे किसका वर्णन होगा ? बिना सस्कार के ऐसी अप्रतिष्ठित प्रतिमाओ का मदिर वेदी मे विराजमान करना देश-क्षेत्र और समाज के लिये, तथा हमारे लिये महान् अनर्थ एव अनिष्ट का कारण होगा। दि जैन मदिर किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नही है। वे समस्त दिगम्बर जैनो के आराधना के स्थल है। उनमे किसी की मनमानी (शास्त्र विरुद्ध कार्य) नही चल सकती। अत कानून की दृष्टि से भी ऐसे कार्य को रोकना हमारा धार्मिक अधिकार है। —नाथूलाल शास्त्री

विशेष—सीमन्धरस्वामी की दिव्यध्वनि मे बहनश्री ने कानजी का तीर्थंकर होना सुना सो यह इसलिये सभव नही कि दिव्यध्वनि मे ऐसी बात आती नही। ऐसे प्रश्न होने पर गणधर द्वारा उत्तर मिलता है। —जैन सन्देश 3-1-85

प० फूलचन्द जी का अभिमत—

प्रतिष्ठाचार्य ब्र श्री अभिन्दनकुमारजी, शास्त्री

सस्नेह जय-जिनेन्द्र,

आपका दिनाक 25 नवम्बर का डाला हुआ पत्र प्राप्त हुआ। पढ़कर आश्चर्य हुआ। आगमिक परम्परा की दृष्टि से विचार करते है तो अभी तक सभी जिन मदिरो मे भविष्य मे होने वाले तीर्थंकरो के जिनबिम्ब दृष्टिगोचर नही होते, क्योकि जो सिद्ध पद को प्राप्त हो गये है या वर्तमान मे हो रहे हैं उन्ही के श्री

जिनबिम्ब पाये जाते है, जहाँ पर भी भविष्यकालीन तीर्थंकरो के जिनबिम्ब विराजमान किये गये हैं, वह आगमिक परम्परा का अतिरेक है, अर्थात् आगम की परम्परा की अवज्ञा है। जातिस्मरण का नाम लेकर ऐसी अघटित घटना को सभव बनाना केवल अज्ञान का ही प्रचार प्रतीत होता है, इसमे अणुमात्र भी सत्यता प्रतीत नही होती है ।

वर्तमान मे एक बहिन के जातिस्मरण नाम के आधार से कहने पर भी कानजीस्वामी को भविष्य कालीन तीर्थंकर मान लेना यह मात्र कल्पना का विषय है, इसे सत्य मानना सभव प्रतीत नही होता, क्योकि जातिस्मरण का विषय भविष्यकालीन किसी घटना का निर्देश करना नही है। अभी तक आगम मे ऐसा कोई उल्लेख देखने मे नही आया कि किसी बहिन या भाई को असख्यात भवो का जातिस्मरण ज्ञान हुआ हो। पुराणो मे जो उल्लेख मिलते है वे मात्र कुछ पूर्व भव सबधी ही मिलते हैं, और श्रीकानजीस्वामी असयमी थे, फिर उनमे तीर्थंकर होने जैसा कौन-सा चिह्न था, जिसे देखकर उन्हे जातिस्मरण हुआ हो ?

सन् 1947 मे जब सोनगढ मे विद्वत्परिषद् का अधिवेशन हुआ था, उस समय मुझे वहाँ कारणवश रहना पड़ा था, इसलिये मैं समय-समय पर रात्रि-चर्चा मे भी सम्मिलित होता, तथा श्री कानजीस्वामी क्या कहते है यह भी एकाग्रता से सुनता था। उस समय सीमन्धर भगवान् के समवशरण मे जिन महानुभावो के नाम स्वामीजी के साथ होने मे लिये जाते थे, उनमे जो वर्तमान मे नाम लिये जाते हैं, उनमे अन्तर दिखाई देता है। उस समय समवशरण मे दोनो बहिने भी श्री कानजीस्वामी के साथ उपस्थित थी, इस रूप मे जो नाम लिये जाते है उन नामो मे भी परिवर्तन हुआ है, इससे मालूम पड़ता है कि यह घटना मात्र कल्पना के आधार पर ही रची गई है। इसमे वास्तविकता

अणुमात्र भी दिखाई नही देती।

श्री कानजीस्वामी ने वर्तमान मे अध्यात्म के प्रचार-प्रसार मे विशेष योगदान दिया है, इस अपेक्षा से उन्हे कदाचित बडप्पन भी दिया जा सकता है, परतु वे तीर्थंकर होने वाले है इस अपेक्षा से उन्हे अणुमात्र भी बडप्पन नही मिलना चाहिये।

पूर्वोक्त आधारो को देखते हुये सूर्यकीर्ति के नाम से उनकी प्रतिमा स्थापित करना घोर अज्ञान है, ऐसा तो होना नही चाहिये। जो ऐसा करते हैं वे दिगम्बर परम्परा को भ्रष्ट करने मे सहायक माने जायेगे।

—फूलचन्द सिद्धातशास्त्री
जैन सन्देश 3-1 85

हो सकता है इस प्रकार के कुछ और भी अभिमत आये हो, पर पत्रो मे यही वक्तव्य प्रकाशित हुए थे। टोडरमल स्मारक की ओर से इस बारे मे समाज को आगाह करने वाला कोई वक्तव्य प्रकाशित नही किया गया। उनके पत्रो ने इस बारे मे कुछ नही छापा। जहाँ तक मुझे याद है इस सबध मे समाज के सामने सबसे पहला परिपत्र दिगम्बर जैन समाज इन्दौर की ओर से प्रसारित किया गया। दिनाक 15 जनवरी 1985 को प्रसारित वह परिपत्र यहाँ अविकल रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है—

दिगम्बर जैन समाज इन्दौर

कार्यालय—शीशमहल, सर हुकुमचन्द मार्ग,
इन्दौर, दिनाक 15-1-1985

धर्मानुरागी,

सोनगढ ट्रस्ट की ओर से स्व० श्रीकानजी स्वामी को भावी तीर्थंकर घोषित कर सूर्यकीर्ति भगवान् के नाम से, सोनगढ से सबधित समाज, मन्दिरो मे कथित सूर्यकीर्ति भगवान् के नाम से मूर्ति स्थापित करने को सोनगढ ट्रस्ट सकल्पित है।

श्रद्धेय साहू श्रेयासप्रसादजी जैन अध्यक्ष तीर्थक्षेत्र कमेटी नेभी इस धर्म विरोधी षड्यन्त्र का घोर विरोध करने को समस्त समाज से निवेदन किया है।

अत आपसे निवेदन है कि आप आपके यहाँ की समाज एव विभिन्न पचायतो से इस कृत्य के विरोध मे सोनगढ ट्रस्ट को सलग्न मजमून का तार देकर अपना घोर विरोध जाहिर करे। साथ ही उसको एक कापी श्रीमान साहू श्रेयासप्रसादजी जैन, निर्मल, थर्ड फ्लोर, नरीमन पाइट वम्बई को भी भेजे।

आप तैयार रहे यदि आवश्यक हुआ और उन्होने अपनी हठ-धर्मी को नही छोडा तो अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज की ओर से इस आगम विरोधी कार्य के विरोध में असहयोग आन्दोलन एव सत्याग्रह करना होगा।

तार का मजमून इस प्रकार है—

दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ

आगम विरुद्ध सूर्यकीर्ति मूर्ति स्थापित करने से समाज में घोर असन्तोष है। इसे रोका जावे अन्यथा समस्त दिगम्बर जैन समाज असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह करेगी।

आपके सहयोग के आकाक्षी।

भवदीय,

देवकुमारसिंह कासलीवाल, अध्यक्ष नाथूलाल शास्त्री, वावूलाल पाटोदी राजावहादुर सिंह कासलीवाल, अपाध्यक्ष

कैलाशचन्द चौधरी, महामत्रीमनोहरलाल काला, मत्री

मुमुक्षु-मण्डल क्या कर रहे थे ?

हम देखते हैं कि जब सूर्यकीर्ति की स्थापना का प्राय: पूरी समाज ने जोरदार विरोध किया, और उसी विरोध के कारण, मिथ्यात्व की उस आँधी मे भी हमारे मन्दिर और तीर्थ अनायतन होने से बच सके, तब हमे यह जानने की इच्छा होती है कि उस समय देश के मुमुक्षु-मण्डल क्या कर रहे थे। निरन्तर आगम का अभ्यास करने वाले उन हजारो जिज्ञासुओ ने क्या इस मिथ्या-कल्पना का समर्थन किया, या वे इस प्रकरण पर मौन रहे, अथवा उन्होने किसी स्तर पर इसका कुछ विरोध भी किया। यह सर्वक्षण करने पर मैं पाता हू कि सूर्यकीर्ति को लेकर अधिकाश मुमुक्षु-मण्डलो की भूमिका उचित और विवेकपूर्ण रही। उन्होने अपने-अपने स्तर पर उसका विरोध किया और पूरे भारत मे, दो-तीन स्थानो को छोड़कर बलात् या घुसपैठ के द्वारा सूर्य-कीर्ति की स्थापना उस समय नही हो पाई। यही तथ्य मुझे आज जैन शासन का सबसे चमकीला नक्षत्र-सा लगता है।

मेरा विश्वास है कि मूल दिगम्बर परम्परा के मुमुक्षु भाइयों के पास आगम की दृष्टि है। युक्ति और आगम के द्वारा जो पद्धति उनके विश्वास मे बिठाई जा सकेगी उस पर वे आचरण करने मे हिचकेगे नही। मैं स्पष्टत यहा अपना विश्वास इन शब्दो मे दोहराना चाहता हू कि मुमुक्षु जनो का यह विशाल समुदाय चम्पाबेन द्वारा प्रकल्पित मायाजाल का हामी नही है। उनके मन मे श्री कहानजी के प्रति आदर की भावना भले ही हो, पर पथ-परिवर्तन करके आये हुए, तथाकथित नव-दिगम्बरो की तरह, अध-भक्ति और विवेक-विहीन हठाग्रह उनमे नही है।

कुछ मुमुक्षु-मण्डलो ने सूर्यकीर्ति के बारे मे विद्वानो से सीधे भी परामर्श किया। कहने की आवश्यकता नही कि उन्हे समर्थक

अभिप्राय कही से भी प्राप्त नही हुए। टोडरमल स्मारक द्वारा आमन्त्रित प्रतिष्ठाचार्य प नाथूलालजी शास्त्री एव सिद्धान्ताचार्य प फूलचन्दजी के अभिमत मे हम यह देख चुके हैं। कई जगह तो सोनगढ के पोपडम के प्रति गहरी और खरी आलोचना से भरे ही अभिप्राय विद्वानो ने उन्हे दिये। यह अलग बात है कि जयपुर के अनुशासन के कारण वह विरोध मुखर नही हो पाया क्योकि जयपुर की कमान कुछ ऐसे वेतन-भोगी अथवा निहित-स्वार्थी जनो के हाथ मे थी, जो सूर्यकीर्ति का खुला विरोध करने मे अपना हित नही देखते थे, और उसकी आलोचना वाले मतव्य प्रकाशित करने का साहस उनमे नही था।

अपनी बात को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करने के लिए यहा हम एक ऐसे विद्वान् बन्धु की राय प्रस्तुत करना चाहते है जिनकी मान्यता मुमुक्षु-मण्डलो मे भी है। यह परामर्श भी उन्होने उत्तर प्रदेश मुमुक्षु-मण्डल के अध्यक्ष के मागने पर ही दिया था। इस पत्र मे उन बन्धु की अपनी राय तो है ही, सोनगढ के तमाशो का आखे खोल देने वाला एक सर्वथा नवीन चित्र भी है। एक मित्र के प्रयासो से हमे इस पत्र-व्यवहार की फोटो प्रति उपलब्ध हुई थी। यहा वे दोनो पत्र प्रस्तुत हैं। पहले मुमुक्षु-मण्डल के अध्यक्ष का पत्र देखे, उसके बाद विद्वान् बन्धु की राय पढे —

आगरा, 15-1-85

आदरणीय विद्वान् श्री कान्तिलाल ईश्वरलाल शाह,
1 जोशी भवन,
मलाड।

विषय—भगवान् सूर्यकीर्ति प्रतिमा स्थापन के सबध मे।

महोदय,

वर्तमान मे सोनगढ के पचकल्याणक मेले मे जो वीतरागी, भविष्य मे होने वाले प्रतिमा स्थापन का कुछ विवाद समाज मे चल रहा है, उस विषय मे आपसे निर्णय चाहते है। कृपया खुलासा लिखे ताकि समाज का मतभेद दूर हो सके।

आशा है आप शीघ्र उत्तर देगे।

भवदीय,
पदमचन्द जैन,
अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश मुमुक्षु-मण्डल, आगरा,

प० कान्तिलाल शाह का अभिमत—

इस पत्र के उत्तर मे श्री कान्तिलाल ईश्वरलाल शाह का वह उत्तर देखिये जिसमे सोनगढ की, और श्री कहानजी की स्वय को विमुग्ध करने वाली लीलाओ का चित्रण है—

श्री कान्तिलाल ईश्वरलाल शाह,
1. जोशी-भवन, पोदार रोड,
मलाड पूर्व, बम्बई, 64,
ता 20-1-85,

श्रेष्ठीवर्य श्रीमान सेठ श्री पदमचन्दजी जैन,
अध्यक्ष-उत्तर प्रदेश मुमुक्षु-मण्डल,
आगरा,

दि 15-1-85 का आपका पत्र मिला। आपने श्रीकानजी स्वामी, भावी तीर्थकर सूर्यकीर्ति 'विषयक आगम आधारित अविरुद्ध निर्णय हम से प्राप्त करने की जो विज्ञापना की है, उसके अनुसधान मे मेरे अभिप्राय से आगम अविरुद्ध मार्ग यह है—

सोनगढ के श्रीकानजीस्वामी ने दिगम्बराचार्यों के शास्त्रो का अध्ययन करके, स्थानकवासी सम्प्रदाय की साधुता का परित्याग करके, दिगम्बर परिपाटी निहित, असयत सम्यग्दृष्टि की भूमिका स्वीकार की और उन्होने अध्यात्म-तत्व-प्रसार के साथ शास्त्र-प्रकाशन, जिनमन्दिर निर्माण आदि करवाया वह प्रशस्त है।

दिगम्बराचार्यो से प्रवाहित उपचार विनय विषय का शिष्टाचार से नवोन परिवर्तित स्थानकवासा साधुओ का समुदाय प्राय अज्ञात था। किन्तु दिगम्बर समाज के प. फूलचन्दजी शास्त्री, प हुकमचन्दजी, प. बाबूभाई, प नेमीचन्द पाटनी, श्री महेन्द्रकुमार सेठी आदि करीब गत 30-35 वर्षो से उपरोक्त श्रीकानजीस्वामी के सम्पर्क मे हैं। इन महानुभावो ने, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि, असयत सम्यग्दृष्टि के प्रति नमस्कार आदि का आगमोक्त विधान परिवर्तित अज्ञात स्थानकवासी बन्धुओ को न समझा कर, वे स्वय श्रीकानजीस्वामी को "अष्टाग-नमस्कार", "चरण-प्रक्षालन", "अर्घावतारन", आरती, चरणो को फोटो निकाल कर अपने घर मे पूज्य-प्रतीक के रूप मे रखना इत्यादि आगम-प्रतिकूल प्रवर्तन वे स्वय करते थे, कराते थे, और परम्परा दिगम्बर समाज के जो लोग और विद्वान् इन विपरीत चेष्टाओ को मान्य नही करते थे, उनके प्रति द्वेषयुक्त बनकर, वैमनस्यपूर्वक उनको "विरोधी" के रूप मे प्रसिद्ध करते थे।

उचित तो यह था कि जो दिगम्बर विद्वान् असयत सम्यग्दृष्टि के प्रति, जो आगम विधान दिखाते थे, उसको आगम सिद्धान्त स्वीकर करके तदनुरूप प्रवृत्ति करते और करवाते। मगर तब तो ये सभी उपरोक्त महानुभाव दिगम्बर समाज के जो-जो लोग

उन्हें नमस्कार, चरण प्रक्षालन आदि करते थे, उनको ही विद्वान् मानते थे। उन लोगो ने तो आगम के ज्ञाता को विद्वान् नही माना था। किन्तु असयत पद मे श्रीकानजीस्वामी की आगम-विरुद्ध अर्घ्य, आरती, नमस्कार करे, उनको ही वे पण्डित मानकर सराहना करते थे।

अब यहा प्रश्न होता है कि साक्षात् श्रीकानजीस्वामी का प्रत्यक्ष असंयत, आरम्भ-परिग्रह युक्त वेश और दशा मे भी, जब वे जिनेन्द्र-तुल्य पूज्यता करने मे सकोच नही करते थे, और अब विवादापन्न भावी तीर्थंकर सूर्यकीर्ति की प्रतिमा की, जो वीतराग स्वरूप होगी, उसका उनको क्यो विरोध है? बडा आश्चर्य है कि यदि भावी वीतराग तीर्थंकर सूर्यकीर्ति (?) आगम विरुद्ध हैं तो इन पं. फूलचन्द, प हुमकचन्द, नेमीचन्द पाटनी, प बाबूभाई वगैरह के द्वारा असयत, सवस्त्र दशा में स्थित, श्री कानजीस्वामी के प्रति चरण-प्रक्षालन, अर्घावतारण, नमस्कारादि करते-कराते समय क्या उनकी वे चेष्टाए आगम विरुद्ध नही थी? असयत की पूजा करने मे इन महानुभावो को तब यथोक्त आगम मार्ग दिखता था, और अब वीतराग पद की सूर्यकीर्ति की प्रतिमा मे आगम विरोध दिखता है, क्यो?

आप देखेंगे, हमारे पास पूरा रिकॉर्ड है कि मलाड, घाटकोपर मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय श्री कानजीस्वामी को बम्बई मरीन ड्राइव पर श्री महेन्द्रकुमार सेठी के फ्लैट मे ठहराये थे। वहा उस समय श्री महेन्द्रकुमार सेठी, श्री बाबूभाई, श्री नेमीचन्द पाटनी, प हुकचन्द भारिल्ल वगैरह ने मिलकर श्री सेठीजी के पास, जागड आया हुआ जवाहरात से, चांदी के थाल मे मोम के ऊपर हीरा-पन्ना वगैरह को चिपकाकर एक कृत्रिम समवशरण का प्रतीक बनाया था। उसमे जिनेन्द्र वेदी के स्थान पर, सिंहासन मे चारो दिशाओ मे, श्री कानजीस्वामी का असयत

आरम्भ परिग्रही पद का फोटो रखकर, ये धर्मोद्धारक महानुभाव स्वामीजी से कहलवाते थे कि—"यह समवसरण देखते जाओ, बीच मे भगवान् बैठे है।" और इस पर वे पण्डित लोग ताली बजाते थे। कहते थे इस समवसरण मे चालीस लाख रुपये के जवाहरात लगे है।

स्वय स्वामीजी ने मुझे भी कहा था कि—"कान्तिभाई, यह समवसरण महेन्द्रकुमारजी, बाबूभाई, हुकमचन्द, पाटनीजी आदि आपके दिगम्बरो ने भक्ति से बनाया है और होश-भक्ति से सिहासन मे मेरा फोटो रखा है। वे कहते है कि—"गुरुदेव, आप तो भावी तीर्थंकर होने वाले है।"

सोचिये, यह सम्यक्त्व क्रिया है या कि मिथ्यात्व क्रिया? "केवली-श्रुत-सघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य"—केवली का अवर्णवादतो मिथ्यात्व क्रिया कही गई है। सेठजी, आप ही बताइये कि इन दिगम्बर समाज के बाबूभाई, हुकमचन्द, पाटनीजी और सेठीजी की पार्टी को अब भावी तीर्थंकर सूर्यकीर्ति की वीतराग मूर्ति मे क्यो आगम-विरोध और धर्महानि दिखती है? उन्होने तो सवस्त्र, आरम्भ-परिग्रह युक्त कानजीस्वामी को स्वरुचि से ही जिनेन्द्र के स्थान मे, जिन रूप मे स्थान दिया है। उनके आगम से वीतराग रूप शायद अपूज्य है, और सराग रूप, परिग्रही रूप ही जिन पद होगा।

ऐसे लोगो को धर्म-प्रभावना के नाम से शास्त्र की गादी पर बैठने का कोई अधिकार नही है। उनकी ये सब परिणतिया उनके अन्तर की प्रतिकृति है कि वे न तो धर्मानुरागी है, न धर्मात्मा है, न शास्त्रज्ञ है, वे तो मात्र लोकैषणा-समर, विषय कषायानुरक्त लोकरजक है।

हम देखते है कि साप को दूध पिलाने वाले और पूजने वाले करोडो है। एकेन्द्रिय वृक्ष-पीपल आदि को पूजने वाले भी करोडो है। विष्ठा गोबर भी लोग पूजते है जब कि इन जीवो मे पापकर्म का ही उदय है। यानी पापी जीव पूजे भी जाते है, फिर भी उनके पुण्योदय का अभाव ही है। इसी प्रकार इन बन बैठे पण्डितो की यदि दो-एक लाख मनुष्य वाहवाही कर भी लेते है तो किसका पुण्योदय बडा है ? करोड़ो लोगो से पूजित साप और पीपलादि का या इन पण्डितो का ? करोडो लोग भी उनके समर्थक मिल जाये फिर भी यह पुण्योदय तो जीव-विपाकी है, न कि पुद्गल विपाकी। पापी की पूजा करने वाले भी अज्ञानी जीव सर्वत्र होते ही हैं।

इन धर्म के ठेकेदारो ने कई वर्षों पूर्व रखीयाल गुजरात मे दस हजार की जनता के सामने—"श्री कानजीस्वामी जैसा युग-पुरुप गत दो हजार वर्षो मे नही हुआ है" ऐसा कहा था। इन धर्म नेताओ ने धर्म-धुरधर आचार्यो श्री पूज्यपाद, श्री समन्तभद्र, श्रीवीरसेन, श्रीजिनसेन, औरश्रीअकलक आदि महान् आचार्यो से भी कानजीस्वामी को महान् बता दिया और आचार्यो को नीचे गिरा दिया। आपको इन सब करतूतो की प्रतीति करा सकता हू। हजारो दिगम्बर बन्धु यह जानते है। उपरोक्त महानुभावो को तो दिगम्बरत्व ही नही है। मात्र लोकेषणावश, धर्म का स्वाग बनाकर समाज को एक या प्रकारान्तर से भ्रमित करके मान और लोभ को साधना है। वरना आप ही सोचिये कि ये लोग आज धर्म-रक्षा के नाम पर जो सूर्यकीर्ति की वीतराग प्रतिमा के निषेध मे तुले है, ये वही लोग तो है जिन्होने स्वामी जी की सवस्त्र, असयत दशा की आरम्भ-परिग्रह युक्त फोटो जिनपद मे समवसरण मे स्थापित की थी। यदि असयत-आरम्भ-परिग्रही उनके लिए पूज्य था तो भला वीतराग रूप अब उनको

कसे निषेध्य है ?

यदि सूर्यकीर्ति की प्रतिमा का विरोध करे तो हम करें, और हम तो करते ही है, हमारा सूर्यकीर्ति स्थापना मे लेश भी समर्थन नही है। किन्तु इन लोगो को तो विरोध करने का भी कोई नैतिक अधिकार नही है, सिवाय कि उनके द्वारा कृत मिथ्यात्व क्रिया का प्रायश्चित और आलोचनापूर्वक प्रत्याख्यान किया जाय। विशुद्ध बनकर ही विरोध कर सकते है।

सिद्धान्त और आगम से हमने अनेक आधार दिये ही है कि सूर्यकीर्ति की मूर्ति स्थापित न की जाये। समाज सोचे और सावधान बने वरना यह आत्मघात ही सिद्ध होगा। इन लोगो ने लाखो रुपये समाज के सोनगढ मे खर्च करवाये और अब ट्रस्टी पद से राजीनामा देकर अधिकार भी सोनगढ को गिरवी कर दिया है। भारत भर मे दिगम्बर समाज के टुकडे किये, परस्पर बैर और वैमनस्य फैलाया, दलबन्दी की, और हम जैसे लोग जब आगम दिखाते थे तो हमको "विरोधी" कहकर अगुली करते थे, हासी उडाते थे। किन्तु उनसे की गई हासी हमारी नही है, आगम की है, उनकी आत्मा की ही है, जिसका विपाक आने पर आसू भी मगर के आसू बन जायेगे।

मात्र नेतृत्व की अभिलाषा और धर्म-शून्यता की अभिव्यजक उनकी चेष्टाये धर्म-हानि का फल ही सूचित करती है। यह लोगो के पाप का उदय है जो ऐसे धर्म-हीनो का समाज मे नेतृत्व है। धर्मात्मा पुण्यहीन और पापी की बलबत्ता का यह कलियुग है। 'सूर्यकीर्ति' नामकरण किए बिना, सग्रहनय के आश्रय से प्रतिमा स्थापन सभव है, व्यवहार से नही।

—आपका

कान्तिलाल ईश्वरलाल शाह

जैन आगम के एक मान्य विद्वान् का यह विना लाग-लपेट का उत्तर हमने प्राप्त नही किया। उत्तर प्रदेश मुमुक्षु-मण्डल के अध्यक्ष की याचना पर उन्हे यह दिया गया था। इस लम्बे पत्र की समीक्षा मे कुछ भी कहने की यहाँ आवश्यकता नही है। पत्र की हर पक्ति मे परम्परा और आगम का पक्ष लेकर सोनगढ की कपोल-कल्पित धारणाओ को, और वहाँ होने वाली लीलाओ को, हिम्मत के साथ उजागर किया गया है। अव इस पत्र का मुमुक्षु जनो पर क्या प्रभाव हुआ, इस पत्र को क्यो दवाकर रखने की कोशिश की गई, इन प्रश्नो के उत्तर मुमुक्षु-मण्डलो को, खासकर उत्तर प्रदेश के मुमुक्षु-मण्डल को देना चाहिए।

इस प्रकार तथ्यो से यह सिद्ध होता है कि टोडरमल स्मारक जयपुर द्वारा या उनके सहयोगियो द्वारा सूर्यकीर्ति के वारे में शास्त्रीय अभिमत एकत्रित किये गये। निश्चित ही उन्होने इन परामर्शो पर विचार भी किया होगा और उन्हे उन लोगो तक भी पहुचाया होगा जिन्हे श्री कहानजी पक्का दिगम्बर जैन (?) वना गये थे। परन्तु यह वात किसी भी तरह समझ मे नही आती कि इतने स्पष्ट अभिमत प्राप्त कर लेने के वाद सूर्यकीर्ति के प्रकरण मे इन सब लोगो ने सार्वजनिक रूप से मौन क्यो धार लिया। वे विरोध मे खुलकर सामने क्यो नही आये।

वास्तव मे भारिल्लजी और उनके साथियो की यह दुविधा उनकी ऐतिहासिक भूल हुई है। वाद मे उनके आचरण ने यह सिद्ध कर दिया कि वे क्रमबद्ध पर्याय के भरोसे चुप बैठे रहने वाले लोग नही है। अवसर आने पर कर्त्तव्य की वागडोर सम्हाल कर देशव्यापी आन्दोलन छेडने की राजनीति भी उन्हे आती है। दो साल वाद जिनवाणी-सुरक्षा के नाम पर आन्दोलन की योजना

करके उन्होने अपनी इस क्षमता का प्रदर्शन भी किया। परन्तु दादर और घाटकोपर मे सूर्यकीर्ति का अतिक्रमण उन्होने अपनी जानकारी मे होते रहने दिया। उनके सामयिक प्रयत्नो से शायद वह दुर्घटना टल सकती थी परन्तु उस समय उन्होने उसके लिए सार्वजनिक रूप से, जनशक्ति का आवाहन करके कोई विरोध नही किया। अपने बहु प्रचारित पत्रो मे भी इस बारे मे कुछ लिखने की आवश्यकता नही समझी।

समाज भले ही चुप रहे परन्तु इतिहास हमारे मित्रो से उनके इस दुविधापूर्ण आचरण का स्पष्टीकरण मागेगा और उनका मौन, इतिहास के पृष्ठो पर उनके लिए कलक और अपकीर्ति ही अकित करेगा। इस सन्दर्भ मे खासकर डॉ० भारिल्ल का मौन अकारण नही था। उन्होने उसका कारण भी अपने सम्पादकीय मे लिख दिया था। एक व्यग कही पढा था, **शायद आपने भी पढा** हो—एक सज्जन बस मे, भारी भीड-भाड के बीच, अपनी सीट पर आख बन्द किये बैठे थे। सामने अनेक महिलाए, वृद्धाए और बच्चेवाली भी खडी-खडी यात्रा कर रही थी और बस के हर झटके पर अपने को सम्हालने मे उन्हे कठिनाई हो रही थी। एक मित्र ने उन सज्जन से पूछ लिया—आप आख बन्द करके क्यो बैठे है? उत्तर एकदम सज्जनोचित था—"क्या करू, मुझसे बहिन-बेटियो की यह दशा देखो नही जाती।"

कुछ ऐसी ही दशा उस समय डॉ० भारिल्लजी की थी। बेचारे सोनगढ की दुर्दशा पर इतने विह्वल हो रहे थे कि सूर्यकीर्ति की बात भी नही करना चाहते थे। अप्रेल 85 के वीतराग-विज्ञान के सम्पादकीय मे उन्होने लिखा—

"इन कार्यों मे शेष समय और शक्ति को निश्शेष करना मुझे रचमात्र भी अभीष्ट नही है। पूज्य गुरुदेवश्री की साधनभूमि

तीर्थराज सोनगढ के प्रति गहन अनुराग भी मेरी एक ऐसी कमजोरी है कि वर्तमान सन्दर्भ मे उसकी चर्चा भी मुझे आन्दोलित कर देती है। अत वहाँ घटने वाले वर्तमान घटना-चक्र से भी मैं अपने को पूर्णत अलग रखना चाहता हू। इसमे भी आप सबका सहयोग अपेक्षित है।"

क्या डॉ० भारिल्ल के इस वक्तव्य का यह सीधा अर्थ नही है कि सोनगढ मे जो हो रहा है, और जो हो सकता है, उस सबके प्रति आख मूद कर, और मुह बन्द करके वैठिये और चुपचाप जो होता है सो होने दीजिये। इसमे से एक और प्रश्न निकलता है कि यदि सचमुच उनके मन मे सामाजिक या लौकिक वातो के प्रति इतनी विरक्ति थी तो फिर एक ही महीने के वाद उन्होने 'एक ही रास्ता' जैसा समाज-व्यापी आन्दोलन उठाने की संयोजना क्यो की? तब उनकी वह विरक्ति कहा चली गई?

तवरहिय जं णाणं णाणविजत्तो तवो वि अकयत्थो
तम्हा णाणतवेण सजुत्तो लहइ णिव्वाणं।

—आचार्य कुन्दकुन्द/मोक्षप्राभृत/59

तप से रहित ज्ञान और ज्ञान से रहित तप व्यर्थ है,
इसलिए ज्ञान और तप युक्त पुरुष ही मोक्ष का पात्र है।

भावी तीर्थंकर : आगम के आलोक में

यहा अवसर है कि हम सूर्यकीर्ति की, अथवा धातकीखण्ड के भावी तीर्थंकर की स्थापना के विषय मे आगम को और अपनी परम्पराओ को सामने रखकर विचार कर ले। यद्यपि जहा तक मैं समझता हू, इस सम्बन्ध मे आगम का कोई भी प्रसग शेष नही होगा जो हमारे मुमुक्षु प्रवक्ताओ की दृष्टि में नही लाया गया हो। सूर्यकीर्ति की स्थापना का निषेध करने के लिए दिगम्बर जैन समाज के अनेक विद्वानो ने, खासकर पण्डित कान्तिलाल ईश्वरलाल शाह ने और पण्डित नाथूलालजी शास्त्री ने अनेक आगम प्रमाण बताकर उन्हे समझाने की चेष्टा की थी। यहा एक वार उन प्रमाणो को देख लेने से विरोध की प्रामाणिकता को भली-भाति समझा जा सकेगा।

आचार्यों द्वारा उपासना के सन्दर्भ मे देव की स्थापना का विधान किया गया है। लोक मे जितने भी जिनबिम्ब और जिनालय प्रतिष्ठित है वे इसी स्थापना-विधान के अनुसार

अस्तित्व मे आये है। सरलता से कहा जाय तो मूर्ति हर की स्थापना किसी कृति की अनुकृति है। यानी वह असल की नकल है। यह बात कहने की भी आवश्यकता नही है कि प्रतिकृति या नकल तभी तैयार की जा सकती हे जब प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई कृति या असल कही न कही मौजूद हो। आगम की भाषा मे इसे इस प्रकार कहेगे कि—"व्यक्त पर्याय की ही स्थापना की जा सकती है।" अव्यक्त या भावी-पर्याय की स्थापना करने का कोई विधान भी नही है और सम्यक् रूप से वह सम्भव भी नही है।

भगवान् महावीर के शासन के इन ढाई हजार वर्षो में भारतवर्ष म, एकाध अपवाद को छोडकर, कही भी सीमधरस्वामी की मूर्ति स्थापित नही की गई, उनके मन्दिर नही बनाये गये। इसके पीछ भी यही रहस्य है। स्थापना के समय तीर्थंकर के पचकल्याणक कराए जाते है। उधर विदेह मे विराजमान सीमधर भगवान् के अभी तक चार ही कल्याणक हुए है। मोक्ष कल्याणक अभी हुआ ही नही है तब उसकी नकल कैसे की जाती ? सीमधरस्वामी के साथ दूसरा प्रश्न क्षेत्र का भी जुड़ा है। मध्यलोक की पूरी व्यवस्था मे तीर्थकर की मान्यता और स्थापना उनके अपने ही क्षेत्र मे होती है। हमारे आचार्य विद्यमान तीर्थंकर के रूप मे सीमधरस्वामी की विनय और वन्दना तो करते रहे, हमारे लिए उनकी पूजा का भी उन्होने उपदेश दिया, परन्तु सीमधर भगवान् की, या अन्य क्षेत्रो के किन्ही भी तीर्थकरो की, मूर्ति स्थापित करने का विधान उन्होने कभी नही किया।

सोनगढ़ पथ मे आचार्यो द्वारा दी गई क्षेत्र और काल की इन दोनो व्यवस्थाओ को अमान्य करके, अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए, स्थापना के क्षेत्र मे अतिरेक और अतिक्रमण किया गया। क्षेत्र के निषेध को तोड़कर उन्होने जगह-जगह

सीमधरस्वामी की स्थापना की और अब आगम तथा आचार्यों की सारी मर्यादाये तोड़कर उन्होने सूर्यकीर्ति का पाखण्ड रच दिया। वैसे तो मूर्ति स्थापना को लेकर प्रतिष्ठा शास्त्रो मे तथा आगम के अनेक ग्रन्थो मे बहुत कुछ लिखा गया है परन्तु यहां हम श्लोकवार्तिकालकार और षट्खण्डागम धवल—सिद्धान्त मे से कुछ प्रकरण उपस्थित करके अपनी बात को समझाने का यत्न करेंगे।

स्थापना किसकी

स्थापना विधान का हेतु अत्यन्त स्पष्ट है। सर्वज्ञता, वीतरागता और अनन्त-चतुष्टय आदि गुणो से सम्पन्न, जिन-पर्याय मे परिणत जो जीव हैं वे "तत्परिणत भाव जिन" कहे गये हैं। सर्वत्र उन्ही की स्थापना का विधान किया गया है।

विवादास्पद सूर्यकीर्ति अथवा धातकीखण्ड के भावी तीर्थंकर के जीव में वर्तमान में भावजिनपने का स्पष्ट ही अभाव है। और वर्तमान काल मे, वर्तमान क्षेत्र मे उनके भावी जिनत्व का प्रतिपादन करने वाली सर्वज्ञ की आज्ञा या आगम भी उपलब्ध नही है। और सबसे बडी बात यह है कि भावी जिनेन्द्रो की स्थापना का आगम मे स्पष्टत. निषेध किया गया है। आचार्य विद्यानन्द स्वामी ने श्लोकवार्तिक मे "सिद्ध भावमयेश्चैव स्थापनाया प्रवृत्तित." लिखकर समस्त शकाओ और विवादो से परे यह आदेशित कर दिया है कि सिद्ध, आविर्भूत, प्रगट, उत्पन्न और अभिव्यक्त भावो या पर्यायो की ही स्थापना हो सकती है। स्थापना शब्द को ही यदि देखे तो उसकी परिभाषा अपने आप में स्पष्ट है "स्थाप्यत स्थापना इति प्रतिकृत.।" फिर जहा कृति का ही अस्तित्व न हो वहा प्रतिकृति की कल्पना कैसे सम्भव हो

सकती है ? सूर्यकीर्ति के बारे मे यही हो रहा है।

भारी विरोध होने पर सोनगढ के हठाग्रही लोगो ने मूर्ति पर से "सूर्यकीर्ति" नाम हटाकर उसे "धातकीखण्ड के भावी तीर्थंकर" कहना प्रारम्भ किया। परन्तु आगम के आलोक मे देखने पर वह भी वर्जित-कृत्य ही सिद्ध हुआ। आचार्यो ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि स्थापना नाम सहित की ही होना चाहिए। जिसका कोई नाम ही नही रखा गया उसकी स्थापना ही नही हो सकती—

"स्थापना स्यान्नाम, अकृतनाम्न: स्थापनानुपपत्ते:।"

— आचार्य अकलक देव

राजवार्तिक, अध्याय 1/सूत्र 5/वार्तिक 23.

धवलाटोका मे पूज्य वीरसेन स्वामी ने 'जिन' के भेद और उनमे पूज्यता का विधान करते हुए बहुत विस्तार से पूज्यता को परिभाषित किया है। उन्होने नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से चार प्रकार के जिन माने हैं। इनमे से नाम जिन और द्रव्य जिन को नमस्कार आदि विनय का निषेध किया गया है। स्थापना जिन और भाव जिन को ही नमस्कार का पात्र बताया गया है।

आगम मे "भाव जिन" के दो प्रकार कहे गये है—

"नोआगम भाव जिन' 'उपयुक्त' और 'तत्परिणत' के भेद से दो प्रकार के हैं।

जिनस्वरूप को ग्रहण करने वाले ज्ञान से परिणत जीव "उपयुक्त" भावजिन हैं। जिनपर्याय से परिणत जीव 'तत्परिणत' भावजिन है।"

यह परिभाषा करने के बाद श्रीवीरसेन स्वामी ने प्रश्न उठाया है—

शका—इन जिनो मे किस जिन को यह नमस्कार किया गया है ?

समाधान—तत्परिणत भाव जिन और स्थापना जिनको यह नमस्कार किया गया है।

इसी बात को आगे विशेष रूप से व्याख्यापित करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है—

—पारिशेष रूप से जिनपरिणत भाव और जिनगुण-परिणाम को पाप का विनाशक स्वीकार करना चाहिये, क्योकि, इसके बिना कर्मो का क्षय घटित नही होता। वह भी जिनगुण-परिणाम भाव जिनेन्द्र के समान अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, विरति और सम्यक्त्वादि गुणो के अध्यारोप से युक्त, और अध्याहार के बल से ही, जिन के साथ एकता को प्राप्त हुई स्थापना से भी उत्पन्न होता है। इसी कारण जिनेन्द्र नमस्कार के समान जिन स्थापना नमस्कार भी पापका विनाशक है।

शका—नाम जिन, द्रव्य जिन और नोआगम उपयुक्त भाव जिन को नमस्कार क्यो नही करते ?

समाधान—नही करते, क्योकि, उनमे जिनत्व और जिन-स्थापनापने का अभाव है। कारण कि उन तीनो जिनो के जिनत्व तो बनना नही है, क्योकि जिनत्व के कारणभूत अनन्त ज्ञानादि गुणो से रहित होने से उनके जिनत्व का विरोध है। स्थापनापना भी उनके नही है, क्योकि, उनमे जिनत्व के आरोप का अभाव है।

—षट्खण्डागम, आचार्य वीरसेन,
खण्ड चार/भाग-1/पुस्तक 9/पृ० 6-7-8-9

"'स्थापना—'जिन' की परिभाषा आचार्यश्री ने अपने ग्रन्थ

प्रारम्भ मे ही कर दी है—

—"उन नामादि मगलो मे से अब स्थापना मगल को बतलाते हैं। किसी नाम को धारण करनेवाले दूसरे पदार्थको 'वह यह है' इस प्रकार स्थापना करने को स्थापना कहते है। वह स्थापना दो प्रकार की है, सद्भावस्थापना और असद्भाव-स्थापना। इन दोनो मे से, जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार को धारण करनेवाली वस्तु मे सद्भावस्थापना समझना चाहिए तथा जिस वस्तु की स्थापना की जाती है उसके आकार से रहित वस्तु मे असद्भावस्थापना जानना चाहिये।

लेखनी से लिखकर अर्थात् चित्र बनाकर, और खनन अर्थात् छैनी, टाकी आदि के द्वारा, बन्धन अर्थात् चिनाई, लेप आदि के द्वारा तथा क्षेपण अर्थात् साचे आदि मे वदलाई आदि के द्वारा मूर्ति बनाकर स्थापित किये गये और जिसमे बुद्धि से अनेक प्रकार के मगलरूप अर्थ के सूचक गुण समूहो की कल्पना की गई है, ऐसे मगलपर्याय से परिणत जीव के रूप को अर्थात् तदाकार आकृति को सद्भाव स्थापना-मगल कहते है।"

—आचार्य वीरसेन/धवला टीका,
खण्ड-1/भाग-1/पुस्तक 1-पृष्ठ-20

इस परिभाषा के अनुसार स्थापना के लिए सबसे पहले 'स्थाप्यमान' का अस्तित्व होना आवश्यक है। पहले वह पदार्थ या जीव होना चाहिए जिसकी स्थापना करनी है तब जैसी दशा या पर्याय स्थाप्यमान की होगी, वैसी ही स्थापना की जा सकती है। यदि आधारभूत वस्तु के बिना ही स्थापना कर ली जाएगी तो निश्चित ही अनिष्ट का प्रसग उपस्थित होगा—

—"स्थाप्यमानस्याभावे स्थापनाया. सभवायोगादिति चेन्न,

अनिष्टप्रसगात् ।"

—स्थापन करने योग्य हो रहे पदार्थ के अभाव होनें पर स्थापना की सम्भावना करना युक्त नही है क्योकि अनिष्ट का प्रसग हो जाएगा ।

—आचार्य अकलंक देव,

तत्वार्थ श्लोकवार्तिकालकार, खण्ड-4/पृ० 306-7

एक वार यदि यह मान भी लिया जाय कि श्रीकहानजी का जीव भविष्य मे तीर्थंकर होगा ही, तब भी आज उनकी उस पर्याय को, जो अभी घटित नही हुई है, स्थापना करना आगम की खुली अविनय है और स्पष्ट उल्लघन है, क्योंकि उपरोक्त सभी आगम प्रमाणो से यह सिद्ध है कि जीवकी तीर्थंकर जिनेन्द्र की पर्याय मे परिणत अवस्था ही स्थापना के योग्य मानी गई है। आचार्यो ने भावी जिनत्व को भाव नमस्कार का पात्र तो माना है परन्तु उनकी स्थापना का कोई विधान नही किया । हर जगह उसका निषेध ही किया है । श्रीकहानजी की तीर्थंकर पर्याय वर्तमान मे अनुत्पन्न, अनिष्पन्न और अनाविर्भूत होने से अरहन्त रूप मे भी उनकी स्थापना आगम विरुद्ध, कपोल-कल्पित और मिथ्यात्व-पोषक ही है। आगम से किसी भी प्रकार उसका समर्थन सम्भव नही है ।

क्या प्रतिष्ठा शास्त्रोक्त है—

इस सम्बन्ध मे यह भी विचारणीय है कि आगम के निर्देशो-सिद्धान्तो का उल्लघन करके सोनगढ़ मे जो प्रतिष्ठा की गई वह क्यो मान्य की जाय ? और उन प्रतिष्ठाचार्यो को भी क्यों मान्यता दी जाय ? इसीलिए जब उस प्रतिष्ठा मे प्रतिष्ठत बाहुबलि मूर्ति मधुवन के एक मन्दिर मे रखने का प्रयास किया

गया तव समाज मे दूर-दूर तक उसका विरोध हुआ और वह मूर्ति वहां से हटाना पडी।

समाज मे जव भी और जहाँ भी ऐसे विरोध होगे, आगम की रक्षार्थ उन विरोधो को सफल वनाने की कोशिश करना समाज का धर्म है।

नमस्कार किसे करना, किसे नहीं

स्थापना के प्रकरण को देखने के लिए आज धवल महाग्रन्थ के पन्ने खुले ही है तो लगे हाथ यह भी देख लिया जाय कि हमारे मान्य आचार्यों ने किसे नमस्कार करने का हमारे लिए आदेश दिया है, और किसे नमस्कार के लिये अपात्र माना है।

वीरसेन स्वामी ने नमस्कार के प्रसग मे अरहन्तो और सिद्धो के साथ आचार्य, उपाध्याय और मुनि को भी नमस्कार करने का हेतुपूर्वक आदेश दिया है। वह प्रकरण इस प्रकार है—

शका—सकल जिन नमस्कार, पाप का नाशक भले ही हो, क्योकि उनमे सव गुण पाये जाते है। किन्तु देशजिनो को किया गया नमस्कार पापप्रणाशक नही हो सकता, क्योकि, इनमे वे सब गुण नही पाये जाते ?

समाधान—नही, क्योकि सकल जिनो के समान देश जिनो मे भी तीन रत्न पाये जाते हैं। और तीन रत्नो के सिवाय, सकल जिन मे देवत्व के कारणभूत अन्य कोई भी गुण है नही, क्योकि, वे पाये नही जाते। इसलिए सकल जिनो के नमस्कार के समान, देश जिनो का नमस्कार भी सब कर्मो का क्षयकारक है, ऐसा निश्चय करना चाहिए।

शका— सकल जिनो और देश जिनो मे स्थित तीन रत्नो के समानता नही हो सकती, क्योकि, सम्पूर्ण और असम्पूर्ण की

समानता का विरोध है। सम्पूर्ण रत्नत्रय का कार्य असम्पूर्ण रत्नत्रय नही करते, क्योकि, वे असमान है ?

समाधान—नही, क्योकि ज्ञान, दर्शन और चारित्र के सम्बन्ध मे उत्पन्न हुई समानता उसमे पायी जाती है। और असमानो का कार्य असमान ही हो ऐसा नियम नही है, क्योकि सम्पूर्ण अग्नि के द्वारा किया जाने वाला दाह कार्य उसके अवयव मे भी पाया जाता है। अथवा अमृत के सैकड़ो घड़ो से किया जाने वाला निर्विषीकरणादि कार्य चुल्लू भर अमृत मे भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त देश जिनो मे स्थित तीन रत्नो का समस्त सकल जिनो मे स्थित रत्नत्रय से कोई भेद भी नही है, क्योकि, बाह्य और अभ्यन्तर समस्त पदार्थो से सम्बन्ध होने की अपेक्षा समानता पायी जाती है।

—आचार्य वीरसेन, धवला टीका,

खण्ड-4/भाग-1/पुस्तक-9/पृ०-11

असजदं न वदे

इसके साथ ही असयमी जीवो को सम्यग्दृष्टि होते हुए भी आचार्यश्री ने नमस्कार के योग्य नही माना। अपने निषेध का हेतु देते हुए उन्होने लिखा है—

शका—महाव्रतो से रहित दो रत्नो अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के धारक, अवधिज्ञानी तथा अवधिज्ञानो से रहित जीवो को भी, क्यो नही नमस्कार किया जाता ?

समाधान—अहकार से भरे जीवो में चरणाचार अर्थात् सम्यक्-चारित्र रूप प्रवृत्ति कराने के लिए, तथा प्रवृत्तिमार्ग विषयक भक्ति के प्रकाशनार्थ उन्हे नमस्कार नही किया जाता है।

नवीन प्रमाणो का परीक्षण

इस आलेख के प्रारम्भ मे हमने श्री चिरजीलाल पाटनी के उस लेख की चर्चा की थी जिसमे कुछ नवीन प्रमाण देकर सूर्य-कीर्ति का समर्थन किया गया है। यहा उन प्रमाणो का परीक्षण कर लेना ठीक होगा।

श्री पाटनी ने जैन-सन्देश के 26 जून एव 10 जुलाई 87 मे प्रकाशित अपने लेख मे सूर्यकीर्ति या "धातकीखण्ड के भावी तीर्थंकर" की मूर्ति को तत्वत. जिनागम अनुवर्ती, वीतराग दिगम्बर जिनबिम्ब" निरूपति करते हुए लिखा है कि—विज्ञ पाठको के ध्यानार्थ यह भी उल्लेख कर देना उचित है कि विभिन्न क्षेत्रो से सम्बद्ध एक सौ सत्तर तीर्थंकर समूह की प्रतिमा भी प्रतिष्ठित की जाती रही हैं। इस प्रकार यह एक आगमिक तथ्य है कि भूत, वर्तमान और भावी तीर्थंकरो के तथा अन्य क्षेत्रो से सम्बन्धित तीर्थंकरो के स्थापित करने की परम्परा रही है।" इस प्रकार एक हठाग्रही लेखक ने 'जैन-सन्देश' जैसे मान्य पत्र का सहारा लेकर कल्पित परम्पराओ की दुहाई से समाज को भ्रमित करने का दुस्साहस किया है।

श्री पाटनी ने अपनी धारणाओ के लिए 'जैन कला एवं स्थापत्य' भाग-3, पृष्ठ-499 का प्रमाण देकर चित्र सख्या (310-ख) का उदाहरण दिया है। इस प्रमाण का खुलासा इस प्रकार है—

1. वर्तमान चौबीसी प्रतिमाओ के अतिरिक्त भूत-भविष्यत-वर्तमान की तीन चौबीसी वाली 72 प्रतिमाए वनाने की प्रथा रही है, परन्तु इसमे आवश्यक यह रहा है कि तीन चौबीसी की प्रतिमाए मन्दिरों की दीर्घा मे स्थापित की जाती रही है,

या मानस्तम्भ आदि पर उन्हें अंकित किया जाता रहा है। मूल वेदी पर ऐसा अंकन मात्र 'समूह प्रतिमाओं' के रूप में ही हुआ है। भूत-भविष्यत के किसी भी तीर्थंकर की कोई भी स्वतन्त्र प्रतिमा दिगम्बर परम्परा में कहीं नहीं बनाई गई।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इन बहत्तर में सूर्यकीर्ति का नाम नहीं है, तथा ये सभी इसी भरतक्षेत्र के तीर्थंकरों की प्रतिमायें होती थीं। धातकीखण्ड आदि के तीर्थंकर भरतक्षेत्र में कभी नहीं स्थापित किये गये। यहाँ तक कि विद्यमान बीस तीर्थंकरों की प्रतिमायें भी हमारी परम्परा में प्राप्त नहीं होतीं।

2 इस लेख के लेखक पुरातत्व के विख्यात विद्वान् श्री उमाकान्त प्रेमानन्द शाह हैं। श्री शाह माने हुवे श्वेताम्बर शोध-शास्त्री हैं और वे जितना अपनी पुराविद्या के लिये विख्यात हैं, उतना ही अपने पूर्वाग्रहों के लिए कुख्यात भी है।

"जैन कला एव स्थापत्य" के जिस लेख को प्रमाण माना जा रहा है, उसमें उन्होंने एक सौ सत्तर तीर्थंकरों की समूहबद्ध प्रतिमाओं का उल्लेख तो किया है परन्तु प्राचीन प्रतिमा भण्डारों से उनका कोई प्रमाण या उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। ऐसी स्थिति में यह ज्ञात करने का कोई उपाय नहीं है कि एक सौ सत्तर की समूह-प्रतिमा का अस्तित्व सिर्फ श्री यू० पी० शाह की कल्पना में है, अथवा किसी श्वेताम्बर सरचना से उन्हें यह उपलब्ध हुआ है। कम से-कम दिगम्बर परम्परा में तो निश्चित ही आज तक ऐसी कोई समूह-बद्ध प्रतिमा देखने-सुनने में नहीं आई।

लेखक की वास्तविकता और उनका मन्तव्य समझे बिना पाटनीजी ने मात्र पाठकों को भुलावे में डालने के लिए यह

उदाहरण शायद रख दिया है। वास्तव मे इस बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण है ही नही कि एक सौ सत्तर आदि तीर्थंकरो की प्रतीकात्मक प्रतिमाए कभी कही प्रतिष्ठित की गई हो।

इस सन्दर्भ मे एक बात लिखने से अपने को नही रोक पा रहा हू। अधिकाश श्वेताम्बर लेखक जब जैन पुरातत्व पर लेखनी चलाते है तब उनके लेखन मे कही न कही पन्थ-व्यामोह प्राय बोल उठता है। इसलिये हमे हमेशा श्वेताम्बर विद्वानो की बात को प्रमाण कोटि मे लेते समय अतिरिक्त सावधानी से विचार करना चाहिए और उनकी स्थापना को दिगम्बर परम्परा से मिलान करके ही स्वीकार करना चाहिए। इस बारे मे एक-दो उदाहरण देना मुझे आवश्यक लगता है—

1. चित्तौड के जैन कीर्ति-स्तम्भ पर बडी-बडी दिगम्बर खड्गासन प्रतिमाए होते हुवे भी, अनेक श्वेताम्बर लेखको ने उसकी आयु मे दो-ढाई सौ साल का गोल-माल करके उसे श्वेताम्बर निर्माता की रचना बतालाने का प्रयास किया था। इन लेखको मे ग्रहस्थ तो थे ही, मुनि भी थे। उनकी स्थापनाओ का खण्डन करने के लिए मुझे "चित्तौड-दर्शन" नाम से प्रथक पुस्तक लिखना पडी जो 1979 मे श्री वीर निर्माण ग्रन्थ-प्रकाशन समिति इन्दौर से प्रकाशित है।

2 श्रवणबेलगोल के गोमटेश्वर बाहुबली भगवान् तो स्पष्ट ही दिगम्बर हैं, पर एक जाने-माने श्वेताम्बर लेखक ने उन्हे भी दिगम्बरो-श्वेताम्बरो की सम्मिलित निधि लिख दिया। शताब्दी महोत्सव मे मुझे उनके लेखन का सार्वजनिक रूप से खण्डन करना पड़ा।

यह सब लिखने मे मेरा उद्देश्य यही है कि परम्पराओ के परीक्षण मे बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।

परम्पराओ का यह परीक्षण तब तक पूरा नही होगा जब तक हम प्रतिष्ठाचार्यो के मत का उल्लेख नही करे। वर्तमान पीढी मे सहितासूरि श्रीमान पण्डित नाथूलालजी शास्त्री इन्दौर ही वरिष्ठतम और मान्यताप्राप्त प्रतिष्ठाचार्य है। पण्डित नाथूलालजी का व्यक्तित्व और विद्वत्ता, दोनो ही सदैव निर्विवाद रहे हैं। जब उनसे परामर्श लिया गया तब उनका स्पष्ट मत था कि 'धातकीखण्ड के भावी तीर्थंकर' अथवा 'सूर्यकीर्ति' दोनो ही नामों से की गई प्रतिष्ठा आगम-विरोधिनी और अशद्ध ही मानी जायेगी।

पण्डितजी का मन्तव्य था कि जिस तीर्थंकर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है, उनके माता-पिता और चिन्ह की स्थापना और उच्चारण उस प्रतिमा को स्पर्श करते हुए मत्रोच्चार पूर्वक करना आवश्यक है। केवल प्रथम तीर्थंकर के माता-पिता तथा चिन्ह के उच्चार से, मात्र पुष्प-क्षेपण करके, अन्य वास्तविक तीर्थंकरो की भी मूर्ति प्रतिष्ठा सम्भव नही हैं, फिर सूर्यकीर्ति जैसे कल्पित तीर्थंकरो की तो बात ही क्या है ?"

जब यह प्रतिष्ठा प्रस्तावित थी तभी प० नाथूलालजी ने अपना स्पष्ट मत इन शब्दोमे सोनगढ वालोको लिखकर भेजा था—

> "धातकी-खण्डस्थ विदेह के भावी तीर्थंकर" इस नाम की, बिना नाम व चिन्ह की प्रतिष्ठा भी, प्रतिमा पर तीर्थंकर शब्द लगा देने पर नही हो सकती। यह पहले भी आपको बताया जा चुका है। भावी शब्द लगाकर आप कानजी-स्वामी को सूर्यकीर्ति तीर्थंकर सिद्ध करना चाहते है और सामान्य शब्द से उनके माता-पिता तथा चिह्न आदि के

प्रश्नो से बचना चाहते हैं, यह ठीक नही है। यदि आप प्रतिमाओ पर चिन्ह की आवश्यकता नही मानते तो सूर्यकीर्ति को तीर्थंकर भी नही मान सकते। अहार क्षेत्र आदि का नाम लेकर कृपया आगम के साथ मनमानी न करे।"

श्रीमान पण्डितजी ने पिछले उदाहरण देकर सोनगढ के बन्धुओको समझाने का भी प्रयास अपने पत्रमे कियाथा—

—"पहले बिदिया स्थान की पचकल्याणक प्रतिष्ठा में कानजी स्वामी के हाथ से श्वेताम्बर मतानुसार अजनशल का कराने की हठ सोनगढ के पण्डितो ने की थी, और उसी 'जयसेन-प्रतिष्ठापाठ' का प्रमाण रखा था। पीछे उस प्रमाण का ठीक अर्थ समझाने पर आपने वह हठ छोड दी थी। इसी प्रकार बहनश्री चम्पाबहन से सोनगढ प्रतिष्ठा मे जन्माभिषेक कराने की हठ की गई थी, वह भी पूरी नही हो सकी।"

"शुद्धाम्नाय के जयसेन प्रतिष्ठापाठ के अनुसार आप लोगों को अग्नि-सस्कारपूर्वक शान्तियज्ञ (हवन) करना चाहिये। उसे आपने बन्द कर दिया है और मन्दिरो मे पखा-बिजली चालू कर रखी है, यह भी अनुचित है। अत. आशा है सद्भावनापूर्वक आप लोग आगमानुसार श्रद्धा, और समाज मे शान्ति बनाए रखने मे सहयोगी बनगे।"

—नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर

खेद है कि दिगम्बर जैन समाज के सर्वोच्च प्रतिष्ठाचार्य द्वारा दी गई व्यवस्था को अनसुना करके भी सोनगढ के हठाग्रही जनो ने पच्चीसवा कल्पित तीर्थंकर खडा करके अपने जिनायतनों को अपने हाथो अनायतन बनाने की आत्मघाती भूल

कर ली। और अधिक खेद की बात यह है कि इन सारी वास्तविकताओ के बावजूद ऐसे लोग हमारे ही बीच बैठे है, जो समाज-सेवक का मुखौटा लगाकर आज भी अनन्त मिथ्यात्व के पोषक इस कुकर्म का पोषण कर रहे है और उसे सरेआम तत्वत जिनागम अनुसारी, दिगम्बर जिनबिम्ब और पूज्य-प्रतिमा बताने की धृष्टता कर रहे है। यह भी कम दुर्भाग्य की बात नहीं है कि पुराने और प्रतिष्ठित पत्र भी इस प्रकार के षड्यन्त्रो के भागीदार होकर पाठको को भ्रमित कर रहे है।

मैं पूरे जोर से यह बात कहना चाहता हू कि चौबीस तीर्थंकरों और बाहुबली को छोडकर अन्य किसी भावी तीर्थंकर आदि की मूर्ति हमारी दिगम्बर परम्परा मे नही है। यह भी निर्विवाद है कि तीर्थंकरो की मूर्ति उनके क्षेत्र मे ही प्रतिष्ठित होती है, उसके बाहर नही। यही कारण है कि भगवान् महावीर का शासन पच्चीस सौ साल तक सीमधर स्वामी की प्रतिमा के बिना ही चलता आया है। सोनगढ मे उनके मन्दिर-मूर्तिया भी एक सुविचारित योजना की पूर्ति के लिए बनवाई गईं। बाद मे अन्यत्र उनकी नकल प्रारम्भ हुई। आज हम भले ही सीमधर स्वामी का मन्दिर बना ले, परन्तु विदेह मे क्या ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यंत किसी की भी स्थापना हम करा सकेगे ? यह विचारणीय तथ्य है।

परम्परा या पाखण्ड

दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ के ट्रस्टी श्री हीरालाल काला जैन ने इस सन्दर्भ मे एक वक्तव्य दिया था। "पच्चीसवे तीर्थंकर नही अपितु भावी तीर्थंकर" शीर्षक से यह वक्तव्य सन्मतिवाणी इन्दौर (वर्ष 14, अक 6) मे पृष्ठ 14 पर प्रकाशित है। इसमे कहा गया है कि—"पाच विदेहो मे 160 तक

तीर्थंकर एक साथ होते है। भूतकाल मे अनन्त हो चुके है और भविष्य मे ऐसे अनन्त होगे। जैन सिद्धान्तानुसार, उपासक की भावना के अनुरूप भूत, वर्तमान या भावी काल के किसी भी तीर्थकर की वीतराग प्रतिमा प्रस्थापित की जा सकती है, और ऐसी भूत, वर्तमान व भावी तीर्थंकरो की प्रतिष्ठित प्रतिमा अनेक गावो मे मौजूद है।"

मैं समझता हू कि अरहन्त भगवन्तो के बारे मे बोला गया यह ऐसा निकृष्ठ झूठ है जिसे बोलने वाले का ससार अभी बहुत दीर्घ है, और उसे दिगम्बर परम्पराओ की कोई समझ नही है। मैं कालाजी को चुनौती देता हू कि यदि उनमे जरा भी स्वाभिमान हो तो अपने इस कथन को ऐसी प्रतिमाओ के उदाहरण के साथ पुष्ट करे। ऐसा करके वे अपने अगले भव को काला होने से बचा सकते हैं।

इसी तरह बुन्देलखण्ड के अहार क्षेत्र का उदाहरण त्रिकाल चौबीसी और विदेह के तीर्थंकरो की मूर्तियो के लिए प्राय· दिया जाता है। यह भी नई रचना है। सोनगढ से सीमधर स्वामी की प्रतिष्ठा के बाद, उसी की नकल पर, बिना सोचे-समझे उस मन्दिर मे ये मूर्तिया स्थापित की गई है। प्रतिष्ठा-पद्धतियो से, परम्पराओ से और इतिहास से उनका जरा भी मेल नही खाता। इतना जरूर है कि वे वास्तविक महापुरुषो की प्रतिमाएँ है, कल्पित जनो की नही है।

इस प्रकार इतिहास की कसौटी पर सिद्ध होता है कि परम्पराविरूद्ध, कल्पित मूर्तियो की स्थापना, केवल सोनगढ की परम्परा मे है। वहा भी उनका होना कोई सहज या सयोगज घटना नही है। उसके पीछे एक बडी दुरभिसन्धि है उस कपट का उद्घाटन ही मेरे इस आलेख का मूल विषय है। ०

उगा और डूबा सूर्यकीर्ति का सूरज

महासभा की छटपटाहट

सोनगढ की एकागी और आगम विरोधी प्रवृत्तियों के खिलाफ भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने प्रारम्भ से ही कड़ा रुख रखा है। विशेषकर उनकी मुनि-विरोधी और मुनि-निदक गतिविधियो की तीखी आलोचना महासभा के पत्रो मे और उसके वक्तव्यो मे निर्भीकता के साथ प्रगट होती रही है। भले ही सामज के प्रगतिवादी और तथा-कथति उदारतावादी वर्ग ने इसके लिये महासभा की निन्दा की हो, पर अपनी सस्कृति पर होने वाले किसी भी हमले के समय महासभा की जागरूकता समाज मे किसी से छिपी नही रही।

सूर्यकीर्ति के षड्यन्त्र का पता चलते ही सदा की तरह महासभा पूरी शक्ति के साथ उसके निवारण के लिए सक्रिय हो उठी। जगह-जगह बैठके करके, पत्रो मे लिखकर और मुनियो-आर्यिकाओ के वक्तव्य प्रकाशित करके सभा की ओर से विशेष

का बीडा उठाया गया। इस बीच महासभा के अध्यक्ष ने सूर्य-कीर्ति-स्थापना के विरुद्ध अहमदाबाद मे न्यायालय से स्थगन आदेश प्राप्त करने का भी प्रयास किया। परन्तु मन्दिरो के स्वामित्व के प्रश्न पर अधिकारो की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने स्थगन आदेश देने का आवेदन निरस्त कर दिया। इस अप्रिय स्थिति की समीक्षा हम आगे करेगे।

महासमिति की चिन्ता

मूल आम्नाय पर आये हुए इस उपसर्ग से दिगम्बर जैन महासमिति के कर्णधारो का उद्वेलित हो उठना स्वाभाविक ही था। उन्होने अपने 3 फरवरी 85 के हस्तिनापुर अधिवेशन मे सूर्यकीर्ति का सक्रिय विरोध करने का सकल्प पारित किया जिसके फलस्वरूप महासमिति के अध्यक्ष साहू श्रेयासप्रसादजी के नेतृत्व मे एक शिष्ट-मण्डल सोनगढ गया और वहाँ चम्पाबहिन को तथा उनके अनुयायियो को समझाने का प्रयास किया, परन्तु समाज के इन प्रयासो का उस समय कोई फल नही हुआ। सोनगढ के नासमझ और हठवादी तत्त्वो ने शिष्ट-मण्डल की सारी बाते अनसुनी कर दी और उन्हे उल्टी-सीधी सुनाकर असफल वापस लौटने पर मजबूर कर दिया। महासमिति का वह प्रस्ताव इस प्रकार था—

भावी तीर्थंकर के रूप मे सूर्यकीर्ति नाम से स्वर्गीय कानजी स्वामी की मूर्ति प्रतिष्ठा का जो विवादास्पद उपक्रम सोनगढ मे चल रहा है, उससे सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज चिन्तित और आन्दोलित है। आगम के आधार बिना किये जा रहे इस कार्य से भविष्य मे अनेक गलत परम्पराये चल पडने की महती आशकाये है। परिणामस्वरूप समाज मे विघटन की सम्भावना है।

खेद है कि समाज में सर्वमान्य प्रतिष्ठाचार्यों, विद्वानो एव श्रीमन्तो के अनेक प्रयत्नो के वावजूद, तथा जगह-जगह से समाज के सैकडो विरोध प्रस्ताव सोनगढ के ट्रस्टियो को एव कर्णधारो को भेजे जाने पर भी, ये कुछ लोग सूर्यकीर्ति की स्थापना का सकल्प छोडने को तैयार नही हैं।

समाज को वास्तविकता का ज्ञान कराने के लिए दिगम्बर जैन महासमिति के हस्तिनापुर अधिवेशन मे इस प्रकार स्वर्गीय श्रीकानजीस्वामी की सूर्यकीर्ति प्रतिमा स्थापना का घोर विरोध करती है एव सोनगढ के ट्रस्टियो व कर्णधारो से निवेदन करती है कि जिनायतनो में ऐसा घोर दिगम्बर परम्परा विरुद्ध कार्य न करे, जिससे समाज मे विवाद और विघटन हो।

यह भी निर्णय लिया गया कि मूर्ति स्थापना के कार्य से समाज मे व्याप्त असन्तोष व अशान्ति से अवगत कराने तथा सोनगढ के जिम्मेदार व्यक्तियो को समझाने हेतु दिगम्बर जैन समाज का वरिष्ठ प्रतिनिधि मण्डल सोनगढ जाकर इस समस्या का समाधान करे।

हस्तिनापुर, प्रस्तावक—प० शीलचन्द शास्त्री, मवाना
दिनाक 3 फरवरी 1985 अनुमोदक—श्री प्रेमचन्द जैन,
जैना वाच कं० नई-दिल्ली

साहु श्रेयासप्रसादजी ने सोनगढ से लौटकर उसी दिन महासमिति की ओर से एक विज्ञप्ति प्रसारित करके सारी स्थिति समाज के सामने रख दी। विज्ञप्ति का प्रारूप इस प्रकार है—

दिगम्बर जैन महासमिति

सूयकोर्ति मूर्ति के विवाद सुलझाने हेतु शिष्टमण्डल का सोनगढ़ प्रवास

भावी तीर्थंकर के रूप मे सूर्यकीर्ति नाम से स्वर्गीय श्री कानजीस्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा का जो विवादास्पद उपक्रम सोनगढ मे चल रहा है, जिससे सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज चिन्तित एव आन्दोलित है। इस विवाद को लेकर समाज अशान्ति व विघटन के कगार पर पहुंच गया है। इस समस्या को शान्तिपूर्वक सुलझाने हेतु दिगम्बर जैन महासमिति के दिनाक 3 फरवरी 1985 के हस्तिनापुर मे पारित प्रस्ताव के अनुरूप 10 फरवरी को दिगम्बर जैन समाज का वरिष्ठ प्रतिनिधि मण्डल मेरे साथ सोनगढ गया। प्रतिनिधि मण्डल मे श्री रतनलालजी गगवाल कलकत्ता, श्री प्रेमचन्दजी जैन, जैना वाच कम्पनी दिल्ली, श्री जम्बूकुमारजी वज कोटा, श्री जयचन्दजी लोहाडे हैदराबाद, श्री कश्मीरचन्दजी गोधा दिल्ली, ब्र० माणिकचन्दजी चवरे कारजा-महाराष्ट्र, श्री वसन्त दोसी गुजरात एवं श्रीकान्तिलालजी जैन बम्बई-महाराष्ट्र सम्मिलित थे।

प्रतिनिधि मण्डल ने सोनगढ के प्रतिनिधि ट्रस्टीगण से तथा बहिन श्री से चर्चा की।

प्रतिनिधि मण्डल ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि सूर्यकीर्ति की मूर्ति की स्थापना आगम के अनुकूल नही है और इससे समाज मे भारी अशान्ति उत्पन्न होगी। इसके अतिरिक्त मर्ति स्थापना का कार्य स्वर्गीय श्री कानजीस्वामी की भावनाओं के भी प्रतिकूल है तथा इससे उनके द्वारा किये गये तत्व-प्रचार के प्रति समाज मे जो आदरभाव है, उसको भी आघात लगेगा। अत: इस प्रकार

का विचार त्याग देना सभी के हित मे है।

काफी देर विचार-विमर्श के पश्चात् सोनगढ के ट्रस्टीगण, बहिन श्रीचम्पाबेन एव जिम्मेदार व्यक्तियो ने मूर्ति से सूर्यकीर्ति का नाम हटाने की स्वीकृति दी है। इसके बजाय प्रतिमा पर—'धातकी खण्ड के भावी तीर्थंकर' लिखने का सोनगढ के ट्रस्टियो ने प्रस्ताव दिया, जिस पर असहमति व्यक्त करते हुए प्रतिनिधि मण्डल ने कहा कि इस बारे मे जो भी कार्य किया जाए, वह समाज की एकता के लिए, देश के प्रतिष्ठाचार्यों, विद्वानो के परामर्श एव सहमति से ही किया जाए।

वहाँ की परिस्थिति से प्रतिनिधि मण्डल को यह भी आभास हुआ कि कुछ महानुभावो के अतिरिक्त समस्त समाज एव मुमुक्षजन भी इस कार्य से सहमत नही है। प्रतिनिधि मण्डल ने अन्त मे इस कार्य से होने वाली हानि से सोनगढ ट्रस्टियो को बार बार अवगत कराया, परन्तु प्रस्तावित सूर्यकीर्ति नाम को हटा लेने के अलावा सोनगढ के ट्रस्टीजनो ने प्रतिनिधि मण्डल का कोई परामर्श स्वीकार नही किया।

बम्बई, —श्रेयान्स प्रसाद जैन, अध्यक्ष
दिनाक 12 फरवरी 1985 दिगम्बर जैन महासमिति

/

सूर्यकीर्ति बम्बई पहुच गये

इस बीच सूर्यकीर्ति की आँधी पूरे वेग से चलती रही। यदि वे सोनगढ मे उनकी मूर्ति रखकर सन्तोष कर लेते तो शायद इतनी चिन्ता की बात न होती। परन्तु इन कुछ ही महीनो के अन्तराल मे सोनगढ के बाहर सात-आठ जगह सूर्यकीर्ति की मूर्तियाँ दिगम्बर मन्दिरो मे रखे जाने का समाचार मिला।

सबसे बड़ा धमाका तो तब हुआ जब पाखण्ड की यह लहर बम्बई तक आ पहुची और वे कल्पित तीर्थंकर मूल दिगम्बर मुमुक्षु भाईयो द्वारा संचालित दादर और घाटकोपर के मन्दिरो मे भी विराज गये। इन दोनो स्थानो पर ये मूर्तियाँ रखने की पद्धति और भी अधिक चिन्तनीय थी। दोनो जगह समाज इस कृत्य के विरोध मे खड़ी थी परन्तु कुछ अलगाववादी और हठधर्मी किस्म के लोगो ने, पूजा-अनुष्ठान के सारे विधि-विधानो को धता बताकर कही लुक-छिपकर और कही जोर-जबर्दस्ती से अपना काम कर लिया।

दादर मे समाज के साथ गहरी दगाबाजी करके आधी रात को मूर्ति मन्दिर मे लायी गयी। उसी समय उसे वेदी पर रखकर रात मे ही पूजा-अभिषेक आदि क्रियाये कर ली गयी। परन्तु घाटकोपर मे यह तरकीब काम नही आयी। वहा समाज सतर्क हो गयी थी। मन्दिर पर आठो पहर पहरा दिया जा रहा था और कुछ लोग सूर्यकीर्ति के विरोध मे अनशन पर भी बैठ गये थे। तब उस मन्दिर के व्यवस्थापको ने, अधिकार के नशे मे मत्त होकर जो कदम उठाया उसने दिगम्बर जैनो की पूरी छवि को कलकित कर दिया। उन्होने पुलिस मे अशान्ति की आशका की रिपोर्ट कराई, विरोध करने वाले अपने ही भाईयो को बडी सख्या मे गिफ्तार कराया और न्यायालय मे यह तर्क दिया कि—"यह हमारा मन्दिर है, हम इसके स्वामी और व्यवस्थापक है। हम किसी परम्परा से बधे नही है और जो मूर्ति हम चाहे उसे इस मन्दिर मे रखने-पूजने का हमे अधिकार है।" इस प्रकार एक विश्वासघाती बयान देकर, अलगाव की एक जहरीली और गहरी खाई बनाकर उस मन्दिर मे सूर्यकीर्ति की स्थापना की गयी।

अभी तक देश मे, जहाँ जो कुछ भी हुआ था उसके लिए वे

नव-दीक्षित तथाकथित दिगम्वर जैन ही जिम्मेदार थे जिनका पदार्पण श्री कहानजी की भावुक और अदूरदर्शी करनी से हुआ था। पर अव वम्वई मे जो हो रहा था उसे अकेले उस समुदाय की करनी मान लेना वडी भूल होगी। निश्चित ही इस कपट चाल मे उन अनेक मुमुक्षु भाईयो का भी हाथ था, या कम-से-कम उनकी स्वीकृति अवश्य थी, जो इन मन्दिरो से सम्वद्ध थे। सहमति के दोषी तो सोनगढ पक्ष के वे नेता लोग भी थे जिनका देश के सारे मुमुक्षु मण्डलो पर अनुशासन चलता था, जो उस पक्ष के प्रवक्ता और नीति-निर्माता माने जाते थे और जो सीधे या प्रकारान्तर से इन दोनो मन्दिरो की व्यवस्था के साथ जुडते थे। उनके नही चाहते हुए, या वर्जते हुए इन मन्दिरो मे यह कार्य हो पाना कभी सम्भव नही था।

एक शका भरी समीक्षा

समीक्षको ने तो यह भी अभियोग लगाया है कि सोनगढ ट्रस्ट के आठ ट्रस्टियो के सामूहिक त्यागपत्र से ही सूर्यकीर्ति की स्थापना को निरापद मार्ग मिला है। त्यागपत्र का निर्णय असमय मे लिया गया एक गलत निर्णय सावित हुआ। स्थिति यह थी कि श्री कहानजी के निधन को प्राय तीन वर्ष हो चुके थे और वहाँ वहिनश्री का पाखण्ड दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। वास्तविक आगम की किसी को कोई चिन्ता सोनगढ मे नही थी। सूर्यकीर्ति की स्थापना की भावना और योजना सामने आ चुकी थी। और कोई किसी का परामर्श सुनने के लिए तैयार नही था।

उस समय सोनगढ ट्रस्ट मे वहिनश्री के अध समर्थक तीन ही ट्रस्टी थे। शेष आठ ट्रस्टी विवेकवान, समझदार और मूल आम्नाय की परम्पराओ को जानने वाले थे। सही बात तो यह

है कि यही वे लोग थे जिनके कारण मूल दिगम्बर जैन समाज मे सोनगढ पंथ की प्रतिष्ठा हुई थी। बहिनश्री की सारी हठधर्मी के बावजूद उस समय सोनगढ ट्रस्ट पर पूरा वर्चस्व इन आठ लोगो का ही था। कानून भी इनके पक्ष मे था और इनकी स्वीकृति या सहमति के बिना वहाँ एक पत्ता भी हिल नही सकता था।

कुछ लोगो का विचारना है कि यदि उस समय साहस करके ये लोग ट्रस्ट के भीतर सूर्यकीर्ति-स्थापना के विरोध मे ठहराव कर लेते तो वह प्रयास वही, सदा के लिए समाप्त हो सकता था। उन विषम परिस्थितियो मे साहस और सूझबूझ के साथ, अपने बहुमत के बल पर, सस्था को पाखण्ड की भवर से बचाकर, उसकी रीति-नीति मे मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता थी। यह काम एकदम असभव नही था। परन्तु न जाने क्यो इन महानुभावो ने वैसा नही किया। पूरी सस्था अल्पमत के तीन ट्रस्टियो को सौपकर इन आठो सज्जनो ने त्यागत्र दे दिया। यहाँ त्यागपत्र के कारणो की समीक्षा करना, या उसके लिए उन्हे दोष देना हमारा अभिप्राय नही है क्योकि हम जानते है कि शायद उनके लिए यही एक मात्र मार्ग शेष रह गया होगा।

कुछ तो मजबूरिया रही होगी,
यो कोई बेवफा नहीं होता।

सर्वाधिक चिन्ता और आश्चर्य की बात यह रही कि भारत के किसी भी मुमुक्षु-मण्डल से, या पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से, अथवा कुदकुद कहान जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट से इस स्थापना के विरूद्ध ईमानदार आवाज नहीं उठाई गयी। उल्टे पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से उस पर लीपापोती करने का ही प्रयास किया गया। "यह कार्य करने वाले भी अपने ही भाई

ई और उन्होने स्वामीजी के प्रति अतिशय रागवश ऐसा कर दिया होगा। अच्छा होता कि वे आगम सम्मत पद्धति अपनाते।"—आदि गोलमोल वाक्यो से इस प्रवृत्ति को सरक्षण ही दिया गया और उसका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास ही किया गया।

प्रश्न केवल सोनगढ का नही था। हमारे मित्र भारिल्लजी ख रहे थे कि भावनगर मे भी सूर्यकीर्ति विराजमान किये जा रहे ं। इतना भर नही, इन्ही लोगो की नाक के नीचे बम्बई मे, ादर और घाटकोपर के मदिरो मे जब कानून और पुलिस की हायता लेकर सूर्यकीर्ति को बिठा दिया गया तब भी यह पूरी ण्डली मूक-दर्शक की तरह तमाशा ही देखती रही। दादर और ाटकोपर के मदिरो की मालकियत मे और व्यवस्था मे कुछ से लोग थे जो श्री कुदकुद कहान ट्रस्ट मे और टोडरमल नारक मे भी अपना प्रभुत्व रखते थे। यदि उस समय वे अपनी री शक्ति के साथ सार्वजनिक रूप से सूर्यकीर्ति के विरोध मे डे हो जाते तो वहाँ शायद यह अनर्थ टल सकता था।

ऐसा लगता है कि अपनी मान-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, थवा उस दिग्भ्रमित समुदाय मे अपना वर्चस्व बचाये रखने के ाए, या फिर किसी अन्य अभिप्रायो की पूर्ति के लिए ऐसे कुछ ोग उस समय दो घोडो की सवारी का एक साथ आनन्द लेना ाहते थे। सोनगढ ट्रस्ट मे रहते हुवे जब वे अपने कानूनी धिकारो का प्रयोग करके इस उपद्रव को टाल सकते थे, और मानने की हालत मे पूरी सस्था का ही चक्का-जाम कर सकते तब उन्होने वैसा न करके सस्था ही छोड़ दी, और अब, जब हर जगह, हर स्तर पर सूर्यकीर्ति का विरोध, दिगम्बरत्व की ा के लिए जरूरी हो गया था, तब वे दोनो ओर अपनी

हाजिरी लगवाने के फेर मे थे। एक ओर बहुत सुरक्षित ढग से अपने सर्किल मे ही सर्यकीर्ति का विरोध व्यक्त कर रहे थे, वही दूसरी ओर जिन मन्दिरो पर उनका पूरा प्रभाव था उनमे सूर्य-कीर्ति की स्थापना को चुपचाप बर्दाश्त कर रहे थे।

दाणण दिण्णउ मुनिवरह।
ण वि पुज्जई जिण णाहु॥
पच ण वदिय परम गुरू।
किम हो सह सिव लाहु॥

—परमात्मप्रकाश 1-191

जिसने मुनियो को दान नही दिया, जिनेन्द्र की पूजा नही की तथा पच परमेष्ठी की वदना नही की, उसे मुक्ति का लाभ कैसे हो सकता है?

महासभा द्वारा ऐतिहासिक आन्दोलन

सूर्यकीर्ति के छद्म नाम से श्री कहानजी जैसे असयमी और अव्रती प्रवचनकार की, कपोल-कल्पित अरहत अवस्था की मूर्ति की स्थापना का वह देशव्यापी षडयन्त्र-जैसा सबल और सयोजित था, दिगम्बर जैन समाज मे उसका विरोध भी वैसा ही व्यापक और जोरदार हुआ। सुगठित सस्थाओ के जो क्रियाकलाप इतिहास मे स्पष्टता से दर्ज होते गये, उनके अतिरिक्त भी प्रादेशिक और आचलिक स्तरो पर समाज ने इस कपट का भरपूर विरोध किया।

मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान मे उठे विरोध के स्वर पूरे देश मे गूज उठे। उसी समय महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक मे गॉव-गॉव मे समाज ने अपने स्तर पर जहाँ जैसा आवश्यक था वैसा विरोध करके सामाजिक चेतना और जागरूकता का परिचय दिया। गुजरात मे ब्रह्मचारी—अब क्षुल्लकजी-श्रीकपिलभाई कोटडिया के पुरुषार्थ से, और "गुजरात

दिगम्बर जैन सरक्षिणी सभा" के प्रयत्नो से सूर्यकीर्ति-विरोधी अनेक सूत्री कार्यक्रम विधिवत चलाया गया। आगम-ममज्ञ प० मोतीलालजी कोठारी, प० कोदरलाल जीवराजजी शाह तलोद, श्री कान्तिलाल ईश्वरलाल शाह बम्बई और श्रीकान्तिलाल नेमचन्द शाह अहमदाबाद आदि का इस आदोलन मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस तरह विरोध का वह प्रयास एक सफल जन-आदोलन के रूप मे प्राय पूरी दिगम्बर जैन समाज मे व्याप्त हो गया।

यह प्रासगिक होगा कि आगे बढने के पूर्व यहाँ हम इस सन्दर्भ मे भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा किये गये उस आदोलन की चर्चा कर ले जिसने सूर्यकीर्ति के शिल्पियो को भीतर तक हिलाकर रख दिया, भयभीत कर दिया और समाज को दिशा देने का दभ भरने वाले कुछ तथा-कथित सगठनो को बेनकाब करके उनका असली चेहरा समाज के सामने खोलकर रख दिया। कहने की आवश्यकता नही कि ऐसे सगठनो मे जयपुर का टोडरमल स्मारक ट्रस्ट सबसे अधिक बेनकाब हुआ। उसकी विस्तृत चर्चा हमे आगे करना है।

महासभा का अतीत

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का जन्म उन्नीसवी सदी के अन्तिम चरण मे हुआ था। दिगम्बरो मे राष्ट्रीय स्तर की यह सबसे प्राचीन, और अनेक प्रकार की सबसे अधिक व्यापक सस्था है। महासभा के अन्तर्गत सचालित 'तीर्थ-रक्षा विभाग' जब देशभर के तीर्थो की सार-सम्हार करने के लिए अपर्याप्त माना गया तब, महासभा के कर्णधारो ने अपने अधिवेशन मे ही सन् 1902 मे भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की

स्थापना करके एक सशक्त संगठन समाज को दिया। इसी प्रकार समाज के बदलते मूल्यो के साथ संगति बिठाने का सुधारक या आधुनिक विचार रखने वाले महासभा के ही कुछ प्रगतिशील सदस्यो ने 1923 मे महासभा से निकलकर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् की स्थापना करके अपना कार्यक्षेत्र बनाया। यह भी महासभा के ही अधिवेशन में हुआ।

यहाँ बीते हुए कल की ये सारी घटनायें मुझे इसलिये याद आ रही हैं कि आज समाज मे एक फैशन हो गया है कि जिसे, जब, जहाँ अवसर मिलता है, वह महासभा को कोसने बैठ जाता है। देश मे बिखरी अनेक राजनैतिक सस्थाओ की तर्ज पर समाज की लगाम थामने का मिथ्या दभ भरने वाली अनेक सस्थाये ऐसी पैदा हो गयी है जिनके पास कोई कार्यक्रम तो है नही, वे केवल महासभा अथवा मुनि-आर्यिकाओ के विरोध की पूंजी पर ही अपना कारबार चलाना चाहती हैं। नकारात्मक रवैया और निराधार विरोध ही उनका एकमात्र उद्देश्य लगता है।

ऐसे जनो से मेरा अनुरोध है कि बीते हुए दिनो का अपना इतिहास पलट कर देखने का कष्ट करें और आज की परिस्थितियो का, सामाजिक चिन्ता के साथ यदि जायजा ले, तो उन्हे भी कही-न-कही महासभा की महत्ता स्वीकारना पड़ेगी। वह केवल विघटनवादी सस्था नही है और उसके अनुयायी मात्र अलगाववादी अथवा मालिन्य की नीति रखते हो ऐसा भी नही है। महासभा एक विचारधारा है, जिसे समाज के सही परिपेक्ष्य मे समझा जाना चाहिये। सूर्यकीर्ति प्रकरण में इस सस्था का वास्तविक चरित्र भली प्रकार उजागर हुआ है जिसका महत्त्व, आज नही तो कल, जिनके पास सामाजिकता की कसौटी है उन्हे,

स्वीकारना ही पडेगा। राजनीति जिनका आधार है उनकी बात मैं नही कह सकता।

सत्तर के दशक तक समग्र दिगम्बर जैन समाज को दृष्टि म रखकर विचार करने वाली महासभा ही एक मात्र सामाजिक सस्था रही है। इस बीच दक्षिण-भारत महासभा जैसी कुछ सस्थाए सक्रिय रही है, परन्तु या तो वे महासभा की आचलिक समितियो की तरह रही या फिर उनका स्वरूप नितान्त प्रादेशिक ही रहा।

दिगम्बर जैन परिषद्

इस बीच राष्ट्रीय स्तर पर एक ही सगठन खड़ा हो सका—अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्। अपनी स्थापना के बीस-पच्चीस साल के भीतर ही परिषद् के कर्णधारो ने भी यह महसूस किया कि पूरी समाज का एक ही सगठन होना समाज के लिए अधिक हितकर है। अत कई बार महासभा और परिषद् को मिलाकर पुन एक करने के प्रयास दोनो ओर से किये गये। परिषद् ने 1961 मे अपने फिरोजाबाद अधिवेशन मे समाज की एकता और सगठन के सकल्प को दाहराते हुए पारित किया कि—"अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् समाज के सगठन और एकता के लिए चला रहे प्रयत्नो का हार्दिक अभिनदन करता है और आशा करता है कि सभी सस्थाए और व्यक्ति शीघ्र ही सगठन की सर्वसम्मत योजना बनाने मे सफल होगे।"

परन्तु किन्ही कारणो से सामाजिक एकता के ये प्रयास कभी साकार नही हो पाये। उन कारणो पर विचार करना यहा

प्रासगिक नही है। परन्तु परिषद् अपने चौसठ वर्ष के जीवन मे कभी अपना अखिल भारतीय रूप प्रगट नही कर पायी। उसका भौगोलिक क्षेत्र और सगठन का स्वरूप दोनो ही मुख्यता उत्तर-भारत के एक विशेष भू-भाग तक ही सीमित रहे। अपनी क्रान्तिकारी और सुधारक योजनाओ को पूरी समाज मे फैलाने का सकल्प प्राय उसके प्रस्तावो तक ही सीमित रहा।

महासमिति का जन्म

1974 मे दिगम्बर जैन महासमिति का अभ्युदय समाज के लिए एक शुभ-सकेत-सा दिखाई दिया था। हमारे पूज्य तीर्थों की अस्मिता को चुनौती देने वाले सघर्षों से समाज मे बडी बेचैनी और चिन्ता फैल रही थी। भगवान् महावीर के 2500वे निर्वाण महोत्सव वर्ष मे पूज्य आचार्यो, मुनिराजो, आर्यिकाओ और विद्वानो की कृपा से, तथा समाज के अग्रणी पुरुषो के प्रयत्नो से, सारा दिगम्बर जैन समाज एक साथ खडे होकर संगठन और एकता का विचार करने लगा था। उस माहौल मे महासमिति जैसे सार्वभोम और एकीकृत सगठन का सकल्प एक सुहावना और अभयदायक सपना था।

महावीर निर्वाण महोत्सव वर्ष के दौरान, और उसके वाद, स्वर्गीय श्रावक-शिरोमणि साहु शान्तिप्रसाद जी के मन मे महा-समिति की परिकल्पना को मैंने वहुत निकट से देखा है। उन्हे इस सगठन मे वहुत सम्भावनाये दिखाई दे रही थी। किन्तु काल के एक प्रहार मे साहुजी की प्रेरणा रमारानी जी गयी और दूसरे झोके मे स्वयं शान्तिप्रसाद जी चिर-शान्ति मे लीन हो गये। मुझे यह कहने मे कोई सकोच नही है कि महासमिति का वह सतरगा सपना स्व साहुजी के जाते ही अपने रग खो बैठा। फिर उसकी

जो छवि शेष बची वह बहुत धूमिल और अस्पष्ट होकर रह गयी। महासमिति के गठन को लेकर महासमिति पत्रिका के जून 86 के अक मे जो दोहराया गया है उससे मेरी बात आसानी से समझी जा सकती है—

"समस्त दिगम्बर जैन समाज ने मिलकर भगवान् महावीर का 2500वा निर्वाण महोत्सव बड़े विशाल रूप मे मनाया। सगठन शक्ति के कारण समाज को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसके कारण सगठन को बनाये रखने की देश भर से आयी माँग के कारण दिल्ली मे 24 और 25 अगस्त 1975 को एक सम्मेलन बुलाया गया। इसमे सभी अखिल भारतवर्षीय सगठनो के प्रतिनिधि तथा समाज के अन्य प्रमुख महानुभाव सम्मिलित हुए व सभी ने समाज सगठन की आवश्यकता प्रगट कर, दिगम्बर जैन महासमिति का गठन कर, अपनी संस्थाओं को उसमे विलीन करने का आश्वासन दिया। परन्तु फिर वह पीछे हट गये। जिससे समस्त समाज परिचित है।

तत्पश्चात् मई 1976 मे दिल्ली मे कुछ समाज के ही प्रमुख महानुभावो ने बैठकर, दिगम्बर जैन महासमिति के गठन का निर्णय, बिना किसी सस्था के विलीन हुए किया, जिस पर समाज के सभी धर्मप्रेमी, समाज प्रेमी एव जागरूक व्यक्तियो ने प्रसन्नता प्रकट की।"

—महासमिति पत्रिका, जून 86, पृष्ठ-14

साहु शान्ति प्रसादजी के जाने के बाद, श्रीमान साहू श्रेयासप्रसादजी के नायकत्व और मार्गदर्शन मे महासमिति का काफी विस्तार हुआ। दिगम्बर जैनो की सर्वोच्च ससद के रूप मे महासमिति ने समाज मे जागृति पैदा की है, एकता और सगठन के लिए कार्य किया है। अब आचार्य पूज्य विद्यानन्दजी का प्रत्यक्ष

आशीर्वाद और श्री बाबूलालजी पाटोदी जैसा एकनिष्ठ महामंत्री मिल जाने के बाद महासमिति की ओर सारी समाज की आँखें लगी हैं। परन्तु आज की महासमिति और साहु शान्ति प्रसाद जी की कल्पना की महासमिति मे कुछ मूलभूत अन्तर हैं।

महासभा की प्रगति

इन सारी सस्थाओ से विलग महासभा का अपना एक निश्चित और निर्धारित लक्ष्य है। उसका अपना अलग चिन्तन है। पचानवे साल से वह अपने लक्ष्य की ओर यथासभव गति से चल रही है। राजा लक्ष्मणदासजी मथुरा, रायबहादुर सेठ मूलचन्दजी सोनी अजमेर, लाला उग्रसैनजी जैन सहारनपुर और दानवीर सेठ माणिकचन्दजी बम्बई आदि अपने समय के महापुरुषो का रोपा यह पौधा समय-समय पर समाज के कर्णधारो द्वारा सीचा-सम्हारा जाता रहा है।

साहु श्रेयास प्रसाद और साहु शान्तिप्रसाद जी के पितामह दानवीर साहु सलेखचन्द जी नजीबाबाद और श्रीमत सेठ ऋषभकुमारजी के पिता श्रीमत सेठ मोहनलालजी खुरई जैसे प्रभावक व्यक्तित्व महासभा से जुडकर अपने आप को गौरवान्वित मानते रहे हैं। सर सेठ हुकुमचन्दजी इन्दौर, और उनके अवसान के उपरान्त सर सेठ भागचन्दजी सोनी अजमेर ने वर्षो नही, युगो तक महासभा को स्वय सचालित किया। उसके माध्यम से दिगम्बर समाज ने समय-समय पर अनेक विपत्तियो का सामना किया है। समाज की नाव को अनेक भवरो और चट्टानो से बचाकर आगे बढाने का श्रेय, दिगम्बर जैनो के इतिहास मे, महासभा के नाम दर्ज है और रहेगा।

किसी भी सस्था की उपलब्धियो का आकलन करते समय उसके तात्कालिक परिवेश को, उसकी सम-सामयिक परि-

स्थितियो को ध्यान मे रखना बहुत आवश्यक होता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व, आज से चालीस-पचास साल पहले तक का हमारा समाज, अशिक्षा और भाति-भाति की कुरीतियो के सिकजो मे बुरी तरह जकडा हुआ समाज था। लोगो मे सामाजिक चेतना जगाना ही एक कठिन और दु साध्य कार्य था। प्रचार-प्रसार के साधन ऐसे नही थे और इतने नही थे। मुनियो की मर्यादा और तीर्थो की पवित्रता की रक्षा के लिए, आम नागरिक के हितो और अधिकारो की गारण्टी देने वाला कोई सविधान और कानून देश मे नही था। पूरा देश छोटे-छोटे रजवाडो मे बटा हुआ था और राजा की धरती पर राजा की जुबान ही कानून मानी जाती थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन परिस्थितयो मे धर्म और समाज के लिए जितना किया जा सकता था, महासभा उसे करने मे कभी पीछे नही रही। और यह भी कि उन परिस्थितियो मे कोई भी सस्था उससे अधिक शायद कुछ नही कर सकती थी।

मूलत हमने यह कहने का प्रयास किया था कि सूर्यकीर्ति के प्रकरण मे महासभा ने क्या किया, परन्तु विचारो की धारा समाज के इतिहास की ओर मुड गयी और हमने अतीत का थोड़ा-सा सिंहावलोकन कर लिया। अब महासभा के मूल उद्देश्यो की चर्चा करते हुए हम प्रसग पर आते हैं।

मुनिराजो, आर्यिका माताओ और व्रतियो की मर्यादा सुरक्षित रखना, तीर्थो के सरक्षण के प्रति जागरूक रहना और सामाजिक चेतना का पोषण करते हुए वीतराग धर्म तथा मूल आम्नाय की रक्षा के उपाय करते रहना ही महासभा का शास्वत उद्देश्य रहा है। अपने पूरे जीवन मे यही उसका सतत प्रयास भी

रहा है। आधुनिक विचारो की दुहाई देने वाले जो व्यक्ति, या जो सन्थाएं, समन्वय और समझौते की पद्धति मे समाज का हित देखते हैं। उनसे महात्मा ने सदा यही निवेदन किया है कि समन्वय और समझौतो की पद्धति राजनीति मे, और व्यापार मे तो मुफीद हो सकती है, परन्तु धर्म और सिद्धान्त मे समन्वय की बहुत थोडी गुंजायश होती है। समझौते की जरा भी नही।

सोनगढ़ पथ के एकान्त प्रतिपादन का, और उनके अलगाववादी रवैये का विरोध करने मे समाज का एक वर्ग सिर्फ इसलिए घबराता रहा कि इसमे श्री कहानजी द्वारा परिवर्तित नवदिगम्बरो के हममे पुन. विलग हो जाने का डर है। मैं जानता हू कि अनेक समाज नेताओ ने, और कतिपय सस्थाओ ने मात्र इसी भय से सूर्यकीर्ति के विरुद्ध भी खुलकर बात करने से परहेज किया। आज दिगम्बर समाज की सख्या की दृष्टि से उनका विचार सही हो सकता है, परन्तु मूलसघ की परम्पराओ के साथ ऐसे कातर विचारो का कोई मेल नही है।

दिगम्बर जैन धर्म ने, और समाज ने बार-बार विषय परिस्थितियो का सामना किया है। बार-बार उसी के बीच से निकल कर लोगो ने अपनी सुविधा के अनुसार मत-मतान्तरो की स्थापना की है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की स्थापना तो बहुत मोटा और बहुत पुराना उदाहरण है, परन्तु अभी चार सौ साल पूर्व तारणस्वामी तक ऐसे अनेक उदाहरण इतिहास मे भरे पडे हैं जहा यदि हमारे पूर्वज आचार्य, अपने सिद्धान्तो के साथ जरा भी लचीला रुख अपना लेते, छोटी-मोटी बातो पर समझौते कर लेते, तो शायद आज हमारी सख्या जितनी है उससे कई गुनी अधिक होती। परन्तु हम देखते हैं कि हमारे परम विवेकी

आचार्यों ने ऐसा नही किया। उन्हे पथ की गुणवत्ता का मान था, सख्या का नही। यही मूलसघ की पवित्रता का रहस्य है।

समझौते की भाषा और परिभाषा

यहा समझौते की चर्चा करते समय एक ताजी घटना मुझे याद आ रही है। अपने पाठको तक उसे पहुचाने का प्रलोभन मैं रोक नही पा रहा हू।

सत्रह नवम्बर 1974 को रामलीला मैदान दिल्ली में महावीर निर्वाण महोत्सव वर्ष की प्रथम सार्वजनिक सभा होने जा रही थी। तात्कालिक प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी उस सभा को सम्बोधित करने वाली थी। श्रीमती गाधी निर्वाण महोत्सव वर्ष के लिए गठित राष्ट्रीय समिति की अध्यक्ष भी थीं। इस सभा मे दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरहपंथी, इन चारो ही सम्प्रदाय के साधु-साध्वियो को एकता और गरिमा के साथ विराजमान करने के उपाय किए जा रहे थे। मुनिराजो के आवागमन, आसन और क्रम को लेकर तीन-चार दिन तक बडा ऊहापोह सभा के सयोजको मे चलता रहा। वह कैसे निर्णीत हुआ यह एक अलग प्रसग है।

उन दिनो परमपूज्य आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज दिल्ली में ही विराज रहे थे। वे बडे फक्कड स्वभाव के साधु थे और किसी से लाग-लपेट की बात करना उनकी आदत नहीं थी। एक दिन दिगम्बर जैन महोत्सव वर्ष समिति के अध्यक्ष श्रीमान साहु शान्तिप्रसादजी आचार्यश्री से कुछ चर्चा करने उनके पास गये। उन्होने उस दिन मुझे भी साथ ले लिया। एकता की बात चल रही थी तभी साहुजी ने कहा—"महाराज, आप भी कुछ

नरम होकर समझौता करने की कृपा कीजिए न ?

साहुजी की वात सुनते ही धर्मसागरजी महाराज हसने लगे। फिर उन्होने कहा—"समझौता तो एक ही हो सकता है कि उनके कपड़े उतरवा दे, या हमे कपडे पहना दे। और क्या समझौता करना है ?"

बात वहुत आसानी से और सहज लहजे मे महाराज ने कही, पर शान्ति प्रसादजी को उसके तीखेपन का अनुभव हो गया। तभी महाराज ने कुछ कडे पड़कर कहा— 'सिद्धान्तो के साथ समझौते की बात करता है तो सम्हाल अपनी दिल्ली, हम चले जायेगे यहा से।"

सुनते ही साहुजी तिलमिला उठे। मुझे ऐसा लगा कि कडवी होते हुए भी महाराज की बात भीतर कही उन्हे अच्छी लगी। अपने गुरु की दृढ़ता ने उनका मन अभिभूत कर दिया। वे नीची निगाह किये दोनो हाथ जोड़कर बैठे रहे।

सब जानते हैं कि आचार्य महाराज कड़ा और दो टूक बोलते थे, परन्तु मन उनका नवनीत के समान कोमल था। उन्होंने साहुजी की ओर देखा और खूब हसकर उनसे कहा—"हम तो तेरे से समझौता करना चाहते है। इतना बडा आदमी होकर वहा नीचे क्यो बैठता है। जरा-सी हिम्मत करले और हमारी बराबरी से बैठ। हम तो उन्हे भर नही तुझे भी, सबको अपनी बराबरी से बिठाना चाहते हैं।"

क्षण भर मे माहौल की बोझिलता दूर हो गयी। सब हस पड़े।

आज इस घटना को कागज पर उतारते हुए मै सोचता हू कि वे दोनो अपनी जगह महान थे। एक सहज से प्रसग पर कितनी बड़ी बात उस दिन आचार्य महाराज ने कह दी। क्या यह

उदाहरण पर्याप्त नही है यह बताने को कि मूलसघ की हमारी परम्पराये आचरण के किन मूल्यो पर आधारित आज तक चली आयी हैं। भगवान् महावीर के जीवन्त प्रयोग हमारी पीढी तक पहुचाने मे इन परम्पराओ का ही हाथ है, समझौतो का नही। दिगम्बरत्व की महिमा दिगम्बरत्व की पूजा से ही बचाई जा सकती है, लौकिक हानि-लाभ का खाता देखकर, आस्था-विहीन और मूढता ग्रसित जनो के साथ समझोते करके नही। एक दिन महासभा के सस्थापको ने देव-गुरु-शास्त्र की साक्षी पूर्वक इन्ही सस्कारो और परम्पराओ के सरक्षण की सौगध ली थी। उसमे कितनी सफलता मिली यह परखना यहा प्रासगिक नही है।

आन्दोलन की भूमिका

सघ की पवित्रता के प्रति सचेत और जागरूक रहना, सस्कारो को अक्षुण्य बनाये रखना तथा मुनियो-आर्यिकाओ को जिनेन्द्र भगवान के बाद सबसे अधिक विनय और सम्मान देना, महासभा का मन्तव्य रहा है। अपने आयतनो की सुरक्षा को इस सस्था ने अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य माना है। अपने इन्ही सस्कारो के कारण, जब सोनगढ से आगम का अपलाप करने वाले एकान्त का प्रसार किया गया तब महासभा चिन्तित हो उठी। जब सोनगढ के प्रवक्ताओ ने मुनियो-त्यागियो के लिए अपशब्दो की बौछार करते हुए जिनवाणी माता को परस्त्री के समान कहने का दुस्साहस किया तब महासभा मुहतोड उत्तर देने के लिए कटिबद्ध हो उठी और जब सूर्यकीर्ति के नाम से अव्रती और असयमी व्यक्ति की कल्पित मूर्तिया रखकर हमारे जिनायतनो को अनायतनो मे परिवर्तित करने के घृणित और कपट भरे प्रयास प्रारम्भ हुए तब महासभा को चुप बैठना पाप लगने लगा। असह्य

हो उठा। बस यही पृष्ठभूमि थी जिसमे महासभा सूर्यकीर्ति को अंधी आंधी का प्रतिरोध करने के लिए अपनी पूरी शक्ति के साथ सक्रिय हो उठी।

यह एक सराहनीय तथ्य है कि संस्कृति पर इतना गहरा आघात लगने पर भी, उसके प्रतिकार के लिए महासभा ने जो कदम उठाये वे बहुत संतुलित आगम-सम्मत और शान्तिपूर्ण कदम थे। सबसे पहले महासभा ने न्यायालय की शरण लेने का प्रयास किया। पर उसका कोई फल नही निकला। वास्तव मे सूर्यकीर्ति की स्थापना को लेकर कई स्थानो पर विवाद न्यायालयो मे ले जाये गये परन्तु मुमुक्षु-मण्डलो के द्वारा निर्मित, और उन्ही के अनुशासन मे संचालित जिनालयो के बारे मे यह तर्क उठाया गया कि इन मन्दिरो पर मुमुक्षु-मण्डलो का ही पूर्णाधिकार है। मन्दिर के ट्रस्टीगण जिसकी चाहें उसकी मूर्ति मन्दिर मे रखने के लिए स्वतंत्र हैं और दिगम्बर समाज की किसी परम्परा को पालने की उन पर कोई बाध्यता नही है। कानून की दृष्टि मे यह सबल तर्क था। अत कही भी सूर्यकीर्ति की स्थापना के खिलाफ स्थगन आदेश प्राप्त नही किये जा सके। दूसरी दृष्टि से विचार करे तो मुमुक्षु-मण्डलों की अलगाववादी प्रवृत्ति इन प्रकरणो मे उनके ही तर्क से बिलकुल स्पष्ट हो गयी।

महासभा ने अनेक आगम-ज्ञाता विद्वानो से परामर्श किया और चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य पूज्य शान्तिसागर महाराज के प्रमुख पटटधर आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज, से इस विषय मे आदेश देने की प्रार्थना की। पूज्य धर्मसागरजी महाराज और उनके साथ-साथ सम्पूर्ण साधु वर्ग समाज और धर्म पर आये हुए इस उपद्रव के प्रति अपने अंत.करण से चिन्तित था। आचार्यश्री

ने साभर मे महासभा के कर्णधारो की प्रार्थना पर स्पष्ट आदेश प्रसारित करने की अनुकम्पा की। इस आदेश मे इस तरह की धर्म-विरूद्ध मूर्ति को मन्दिरो मे रखने का निषेध तो किया ही, साथ ही इस प्रकार के धर्म-विरूद्ध कार्यों को करने वाले व्यक्तियो को, तथा उनके द्वारा निर्मित साहित्य को अपने मन्दिर मे जगह न देने का भी समाज को आदेश दिया।

पूज्य आचार्य धर्मसागरजी महाराज के इस हितकर और शुभकर आदेश को प्रचारित करने के लिए, और उसे क्रियान्वित कराने के लिए महासभा ने एक बडा आन्दोलन प्रारम्भ किया। कुछ निहित-स्वार्थी लोगो, या सस्थाओ ने इस सर्वमान्य आदेश की अवहेलना करने के लिए समाज मे कैसी-कैसी भ्रातियाँ फैलाईं, कितनी गलत बयानी का सहारा लिया और कैसे समाज मे फूट डालकर विग्रह कराने के प्रयास किये, उनका हिसाब आगे को पक्तियो मे प्रस्तुत करना है।

सोनगढ-साहित्य का बहिष्कार पहले भी हुआ

पूज्य आचार्य धर्मसागरजी के आदेश मे सोनगढ साहित्य के बहिष्कार की जो बात कही गयी, वह कोई नयी बात नही थी। वर्तमान दिगम्बर परम्परा के प्रथम आचार्य श्री शान्तिसागरजी से लेकर आज तक के प्राय सभी आचार्य महाराजो ने कानजी-पथ के एकान्त कथन का विरोध करते हुए समाज को सदा सोनगढ साहित्य के बहिष्कार का परामर्श देकर उससे बचने का ही मार्ग बताया है। उनके वे वक्तव्य पच्चीस-तीस सालो से बराबर प्रकाशित होते रहे है। आचार्य धर्मसागरजी के आदेश मे वही परामर्श दोहराया गया था। यहा हम पिछले कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

- श्री चारित्र-चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य शान्तिसागरजी ने कहा था—

 —' दिगम्बर जैन धर्म के नाम पर, जैन सिद्धान्त के विपरीत यह जो नया मत चलाया गया है, यह कानजी मत ही कहलायगा। समाज को इससे सावधान रहना चाहिए जिससे दिगम्बर जैन धर्म मे यह मिथ्या विकार पनपने न पावे।"

- उनके द्वितीय पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागरजी कहते थे—

 —' कानजी स्वामी के धर्म-विरुद्ध प्रवचनो से समाज को सावधान रहना चाहिए। इससे जैन सिद्धान्तो का मूलोच्छेद होने की आशका है।"

- आचार्य शान्तिसागरजी के तृतीय पट्टाधीश आचार्यश्री शिवसागरजी ने स्पष्ट निर्देशित किया था—

 —"कानजी के मिथ्या साहित्य के प्रचार को रोकना चाहिए। अन्यथा समाज का इसमे भारी अहित होगा और इन मिथ्या मान्यताओ से धर्म का मूलोच्छेद हो जायगा।"

- परमपूज्य आचार्यरत्न देशभूषणजी का आदेश भी यह था—

 —"कानजीस्वामी का समस्त साहित्य दिगम्बर जैन धर्म के विरुद्ध है। इसे रोकना चाहिए। दिगम्बर जैन मन्दिरो से इनका, और इनके साहित्य का वहिष्कार करना ही उचित है।"

- उनके शिष्य पूज्य विद्यानन्दजी मुनिराज ने बहुत पहले ही अपना मन्तव्य जताने के लिए एक स्वतंत्र पुस्तक ही लिख दी थी—"जैन साहित्य मे विकार।" उन्होने अपने तर्कों से कहानपथ की धज्जिया उडा दी थी। उनका मत है—

—"ये लोग निश्चय एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि है। इनके शास्त्र कल्याणकारी न होकर घातक कुशास्त्र है। उनका पठन-पाठन क्या, अवलोकन तक नही करना चाहिए। उन्हे स्वाध्याय-मण्डलो मे तथा जिन मन्दिरो मे नही रखना चाहिए। कानजी ने विकृत साहित्य लिखकर दण्डनीय अपराध किया है और जैन समाज मे भ्रामक स्थिति पैदा कर दी है। सोनगढ से प्रकाशित साहित्य आर्ष परम्परा के विरूद्ध है।"

- पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी ने घोषित किया था—
—"कानजी का कथन और साहित्य ससार मे डुबाने वाला है।"

- क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र वर्णी ने लिखा है—
आज का यह कानजी का शुष्क अध्यात्म तो न स्वय कुछ करना जानता है, और न किसी अन्य करने वाले को सहन कर सकता है। उनकी दृष्टि मे अन्य सब अज्ञानी हैं। अभिमान के शिखर पर बैठे हुए ये स्वय कोरे अध्यात्मवादी हैं। या अध-श्रद्धालु, रूढिवादी, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि है। इन्होने दिगम्बर जैन धर्म के मूल सिद्धान्तो को भी बदल दिया है।"

- श्रवणबेलगोल मे 1967 के महामस्तकाभिषेक के अवसर पर उपस्थित सभी भट्टारको ने अपने सम्मेलन मे सोनगढ साहित्य के बहिष्कार का प्रस्ताव पारित करके समाज को सावधान किया था। प्रस्ताव के शब्द हैं—

—'· इस प्रकार कानजी के अनेक मन्तव्य दिगम्बर जैन धर्म से सर्वथा विपरीत, एकान्त-मिथ्यात्व रूप हैं। इनसे धर्म का घात हो रहा है। इसलिए श्रवणबेलगोला महामस्तकाभिषेक मे उपस्थित सब भटटारक बडे दुख के साथ सर्व समाज को सावधान करते है कि ऐसे आर्ष-परम्परा विघातक

सोनगढ के साहित्य को दिगम्बर जैन साहित्य नही माना जाय, और बहिष्कार करके इसे दिगम्बर जैन मन्दिरो मे नही रखा जाय।"

—वर्धताम् जिनशासनम् । श्रवणबेलगोल/30-3-67.

- वर्तमान मे सुप्रसिद्ध दिगम्बराचार्य पूज्यश्री विद्यासागरजी आगम के उदाहरण और अकाट्य तर्क देकर कहानपथ की एक-एक मिथ्या धारणाओ का खण्डन करते हैं। इस सदर्भ मे उनके कुछ प्रवचनो का एक सकलन 'प्रवचन-प्रमेय' नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमे व्रत-चारित्र, शुभ और शुद्ध उपयोग तथा अकालमृत्यु आदि के बारे मे श्री कहानजी की धारणाओ को गलत और आगम-विरुद्ध सिद्ध करते हुए उनकी प्राय सभी मनमानी स्थापनाओ का जोरदार खण्डन किया गया है।

इसके अतिरिक्त पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी, आचार्यकल्प मुनि श्रुतसागरजी, आचार्य श्रीविमलसागरजी, उपाध्याय मुनि भरतसागरजी, क्षुल्लक सन्मतिसागरजी तथा कर्मयोगी चारुकीर्ति भट्टारकजी श्रवणबेलगोल और ज्ञानयोगी भट्टारकजी मूडबिद्री आदि सभी ने अपने प्रवचनो मे और लेखन मे कहानपथ का खण्डन करते हुए उनके साहित्य को 'मिथ्यात्व-प्रेरित' और 'मिथ्यात्व-पोषक' कहा है तथा समाज को उससे बचने का परामर्श दिया है। पिछली तीन दशाब्दियो के जैन साप्ताहिक और मासिक तथा विपुल मात्रा मे अन्य प्रकाशित पुस्तको मे इस विषय की अपार सामग्री सामने आयी है। बहुत-सा टेप कैसिट्स मे और डायरी के पन्नो पर सुरक्षित है।

क्या था महासभा का प्रस्ताव ?

दिवगत आचार्य पूज्य श्री धर्मसागरजी समस्त दिगम्बरो के सर्वाधिक मान्य आचार्य थे। उनको सल्लेखना के समय देश के कोने-कोने से समाज द्वारा जो चिन्ता व्यक्त की गई, और बाद मे उनकी समाधि हो जाने के उपरान्त सर्वत्र उनका जितना व्यापक गुणगान हुआ, उन्हे जितनी विविध और विनयपूर्ण श्रद्धाजलिया अर्पित की गयी, उससे यह भली-भाति प्रकट हो गया कि समाज मे उनके प्रति कितनी गहन आस्था और कैसी समर्पित भक्ति प्रवर्तमान थी।

सूर्यकीर्ति के बारे मे पूज्य धर्मसागरजी जैसे महान प्रभावक आचार्य का आदेश प्राप्त हो जाने के बाद दिगम्बर जैन महासभा ने उस आदेश को जैन समाज के घर-घर तक पहुचाने और उसके पालन कराने का प्रयत्न किया। शायद वही महासभा का अपराध हुआ जिसके कारण उसका विरोध करते हुए कुछ सस्थाओ ने, और उनके निहित-स्वार्थी कार्यकर्ताओ ने 'अलगाववादी' 'फूट फैलाने वाले' और 'समाज-विरोधी' जैसे कई तमगे महासभा के गले मे पहना दिये। कहना न होगा कि जयपुर का टोडरमल स्मारक ट्रस्ट उनमे सबसे आगे रहा। अब अवसर है

कि हम उन सारी परिस्थितियो का और कृत्यो का परीक्षण करे।

यह वह समय था जब हस्तिनापुर मे जम्बूद्वीप के जिनालयो की पचकल्याणक प्रतिष्ठा हो रही थी। महासभा के कार्यकर्ताओ ने उस मेले मे अपना अधिवेशन किया तथा देश भर से आये हुए हजारो हजार दिगम्बर भाई-वहिनो के समक्ष सूर्यकीर्ति का सारा प्रकरण रखते हुए आचार्य श्री के उस आदेश के क्रियान्वयन के लिए समाज से अपील की। उस दिन खचा-खच भरे हुए पण्डाल मे, सारे देश का प्रतिनिधित्व करने वाली समाज ने एक स्वर से आचार्य श्री के इस मार्ग दर्शक आदेश के लिए उनके चरणो में कृतज्ञता-ज्ञापित करते हुए सारी समाज को इस आदेश की पालना के लिए प्रेरित करने का प्रस्ताव पारित किया। वह प्रस्ताव अविकल रूप मे यहा प्रस्तुत है—

> श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा (धर्म सरक्षिणी सभा) के श्री निर्मलकुमार सेठी लखनऊ की अध्यक्षता मे सम्पन्न, 90 वे महाधिवेसन मे सर्वानुमति पारित प्रम्ताव दि 30-4-85.

प्रस्ताव क्रमाक-एक

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का हस्तिनापुर मे श्री जम्बूद्वीप पचकल्याणक प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर आयोजित यह खुला अधिवेशन, दिगम्बर जैन आगम-विरोधी, मनगढत, कपोल-कल्पित, मिथ्या धारणाओ के आधार पर कानजी भाई को भावी तीर्थंकर के रूप मे, श्रीदिगम्बर जैन मन्दिर जी सोनगढ मे जो मूर्ति स्थापित की गयी है, उसका घोर विरोध करते हुए, इस सबध में परमपूज्य आचार्य 108 श्री धर्मसागरजी महाराज

ने साभर-राजस्थान मे जो आदेश दिया है उसके प्रति यह अधिवेशन अपनी पूर्ण विनयवान श्रद्धा एव आस्था प्रगट करती है, एवं इस आदेश को सिरोधार्य करती है। महासभा समस्त जैन समाज से विनम्र अपील करती है कि वह इस आदेश का पूर्णतया पालन करे। साथ ही समस्त पूज्य त्यागी-वृन्द, विद्वत्जन तथा सभी जैन सस्थाओ से करबद्ध प्रार्थना करती है कि वे सभी इस आदेश को क्रियान्वित करने के लिए प्रेरणा एव सहयोग देवे।

आचार्यश्री का आदेश

सोनगढ मे स्थित श्री दिगम्बर जैन मन्दिर मे, स्वप्न या जातिस्मरण के आधार पर, कानजी भाई की भावी तीर्थंकर के रूप मे मूर्ति बनाना, व स्थापना करना दिगम्बर मूल आम्नाय के विरूद्ध है। समस्त दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियो से मेरा कहना है कि वे इस तरह की धर्म-विरुद्ध मूर्ति को अपने तीर्थो मे, मदिरो मे, और गृह-चैत्यालयो मे कदापि न रखें, और इस तरह के धर्म विरूद्ध कार्यो को करने वाले व्यक्तियो को तथा उनके द्वारा निर्मित साहित्य को अपने मदिरजी मे जगह न देवे।

उस दिन हस्तिनापुर मे इस प्रस्ताव के प्रस्तावक थे आगम के प्रसिद्ध ज्ञाता प मोतीचन्दजी कोठारी फलटण। समर्थको मे प्रमुख नाम थे—प सागरमलजी विदिशा / श्री गणेशीलालजी रानीवाला कोटा / उम्मेदमलजी पाण्ड्या देहली / त्रिलोकचन्दजी कोठारी कोटा / ब्र कपिलभाई कोटडिया हिम्मतनगर / डॉ सुरेश जैन मैनपुरी / कल्याणदासजी पाटनी कलकत्ता / मोतीचन्द जी शास्त्री हस्तिनापुर/भरतकुमार काला बम्बई / प मल्लिनाथ जी शास्त्री मद्रास / डॉ शेखर जैन भावनगर / श्री पदमचन्द जैन मद्रास / श्री पन्नालाल जी सेठी डीमापुर / श्री राजकुमारजी

सेठी डीमापुर / प. उत्तमचन्द "राकेश" ललितपुर / श्री भागचन्दजी पाटनी मुजफ्फरनगर एव समस्त भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज हस्तिनापुर।

हस्तिनापुर अधिवेशन के वाद महासभा के उत्साही अध्यक्ष ने इस ऐतिहासिक प्रस्ताव की पालना के लिए दिन-रात एक करके समाज को प्रेरित किया और सामाजिक सस्थाओ से भी ऐसा ही करने का आग्रह किया। इतना भर नही, इस दिशा मे अन्य सस्थाओ या व्यक्तियो ने जो भी कार्य किये थे, महासभा ने सदा उन कार्यों की सराहना की और उसके प्रति समाज को आभारी होना चाहिये ऐसा बोध भी दिया। अधिवेशन के एक सप्ताह बाद ही महासभा के अध्यक्ष द्वारा, दिगम्बर जैन महासमिति के अध्यक्ष माननीय साहु श्रेयासप्रसाद जी को इस सदर्भ मे जो पत्र लिखा गया था उस पत्र से महासभा की सदाशयता और अपने प्रस्ताव तथा आचार्यश्री के आदेश के प्रति उसकी प्रति सर्मपित भावना स्पष्ट रूप मे प्रगट होती है। वह पत्र इस प्रकार था—

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

अध्यक्ष,
निर्मलकुमार जैन,
गोखले मार्ग, लखनऊ   दिनांक 9 मई, 1985.

श्रद्धेय बाबजी,

सादर प्रणाम,

आपने कहानजी भाई की मूर्ति की भावी तीर्थंकर के रूप मे प्रतिष्ठा रुकवाने के लिए जो प्रयास किये हैं, उनके लिए समस्त दिगम्बर जैन समाज आपकी आभारी है। हमें दुख है कि सोनगढ

के ट्रस्टियो को हठधर्मता के कारण आपक प्रयास सफल नही हो सके ।

दिनाक 30 अप्रैल 1985 को जम्बूद्वीप-स्थल हस्तिनापुर मे सम्पन्न हुए भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के 90वे वार्षिक अधिवेशन मे विशाल जन समुदाय के बीच सर्वानुमति से पारित प्रस्ताव की प्रतिलिपि प्रेषित करते हुए आपसे विनम्र निवेदन है कि कहानजी भाई की धर्म-विरुद्ध मूर्ति तथा उनके द्वारा निर्मित साहित्य को, मन्दिरो आदि मे न रखे जाने के विषय मे दिये गये पूज्य आचार्य-प्रवर श्रीधमसागर महाराज के आदेश को स्वीकार कर, उसे पालन करने के लिए श्री दिगम्बर जैन महासमिति से भी, इसी प्रकार का प्रस्ताव पास कराकर दिगम्बर जैन धर्म के अवर्णवाद को रोकने के अभियान मे अपना सहयोग प्रदान करने की कृपा करे । आपका ही

सधन्यवाद, निर्मलकुमार जैन

श्रीमान साहु श्रेयासप्रसादजी जैन,
अध्यक्ष-दिगम्बर जैन महासमिति,
'निर्मल' तीसरी मजिल,
नरीमन पाइण्ट, बम्बई-21

इसे दुर्योग ही कहना चाहिये कि जब यह पत्र श्रीमान् श्रेयास प्रसाद जी के पास पहुचा, उसके पूर्व ही उनके पास कुछ ऐसी सूचनाए पहुचाई जा चुकी थी कि हस्तिनापुर मे महासमिति की बहुत आलोचना की गयी है और तीर्थ क्षेत्र कमेटी के महामत्री के साथ मच पर दुर्व्यवहार किया गया है। इन सूचनाओ के कारण बाबूजी का नाराज होना स्वाभाविक था। इस बारे मे उसी समय, 15 मई 85 को बाबूजी ने दिगम्बर जैन महासमिति के अध्यक्ष के नाते एक विज्ञप्ति भी प्रसारित की थी जिसमे

सूर्यकीर्ति योजना के विरोध मे महासमिति द्वारा किये गये प्रयासो का उल्लेख करते हुए जिनवाणी के प्रति महासमिति के रुख को स्पष्ट किया था।

बाद मे यह सिद्ध हुआ कि श्रीमान साहुजी को इस बारे मे जो सूचनाए प्राप्त हुई थी वे कुछ हद तक भ्रान्त थी। महासभा अध्ययक्ष ने अपना स्पष्टीकरण देते हुए बाबूजी को एक पत्र लिखा और मीटिंग को पूरी वीडियो कैसिट ही उन्हे भेज दी थी। परन्तु यह एक अलग प्रसग है और यहा उसके ब्यौरे मे जाने की आवश्यकता नही।

यहा इस घटना के उल्लेख से मेरा अभिप्राय केवल इतना बताना ही है कि इन कुछ कारणो से उस समय महासभा और महासमिति के सबध, समान उद्देशीय सस्थाओ के परस्पर सहयोगी सबधो की तरह सामान्य नही रह गये थे। उनमे कुछ तनाव आ गया था। इससे एक बडी हानि यह हुई कि आचार्य श्री के आदेश के अन्तिम वाक्य के सबध मे समाज को स्पष्ट मार्ग-दर्शन देने की जिम्मेदारी का निर्वाह महासमिति ने फिर नही किया।

इस बीच समाज की प्राय सभी सस्थाए विरोध की सक्रिय भूमिका निभा रही थी। उस समय सूर्यकीर्ति के विरोध से परहेज करके चुप रहने वाली एक ही सस्था थी—जयपुर टोडरमल स्मारक ट्रस्ट।

विद्वत्परिषद का प्रस्ताव

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ने अपने फीरोजाबाद के अधिवेशन मे सर्वमत से पारित प्रस्ताव मे

सोनगढ़ क पाखण्ड का घोर विरोध किया। वहा श्रीनीरज जैन द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के समर्थन मे बोलते हुए मूडबिद्री के भट्टारक ज्ञानयोगी श्री चारुकीर्तिस्वामीजी ने इस अभियान को दिगम्बर परम्परा पर 'इतिहास की सबसे बडी डकैती' की सज्ञा दी। उसी सभा मे श्रवणबेलगोल के स्वस्तिश्री कर्मयोगी भट्टारक स्वामीजी ने भी इसका विरोध किया और समाज को जागरूक एव सावधान रहने का परामर्श दिया। प्रस्ताव इस प्रकार था—

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का यह पन्द्रहवा अधिवेशन दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ द्वारा, तथाकथित भावी तीर्थंकर 'सूर्यकीर्ति' के नाम से जो मूर्ति स्थापित की गयी है, उसे कपोल-कल्पित एव दिगम्बर परम्परा तथा आगम के प्रतिकूल घोषित करती हुई, इस कार्य को मिथ्यात्व प्रेरित और मिथ्यात्व-वर्द्धक मानती है तथा इसकी निन्दा करती है।

प्रस्तावक – नीरज जैन,

समर्थक—लक्ष्मीचन्द जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

अनुमोदना—ज्ञानयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामीजी,

फिरोजाबाद कर्मयोगी चारूकीर्ति भट्टारक स्वामीजी,

दिनाक 27-5-85 श्रवणबेलगोल,

तीर्थक्षेत्र कमेटी और कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट

यह पहले बताया जा चुका है कि किस प्रकार, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के समानान्तर, सोनगढ मे रातो-रात 'श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट' की स्थापना कर डाली गयी थी। सोनगढपंथ की अलगाववादी प्रवृत्तियो का यह ज्वलत प्रमाण था। उस समय समाज मे इसकी खूब चर्चा हुई।

कई जगह से इसका विरोध भी उठा। हमने मार्च 74 मे ही इस भावना के पीछे छिपे अभिप्राय पर प्रश्नचिन्ह लगाया था। हमारा वह आलेख उसी समय जैन-सन्देश मे और वाद मे पुस्तक रूप मे प्रकाशित हो चुका था।

प्रारम्भ मे कहा तो यही गया कि इस ट्रस्ट की स्थापना तीर्थ-क्षेत्र कमेटी के कामो में सहायता करने और उसे सहयोग देने के लिए ही की गयी है। ट्रस्ट की नियमावली मे भी यही लिखा गया था—

"To help to and to co-oprate with Shri Bharat Varshiya Digamber Jain Tirthakshetra Committee, at Bombay and likewaise institutions having Similar Objects, in all Possible ways ।"

परन्तु यह मात्र एक दिखावा रहा। ट्रस्ट ने एक दिन भी न तो तीर्थक्षेत्र कमेटी के कामो मे सहायता की और न उसके साथ सहयोग हो किया। प्रारम्भ से ही उन्होने अपनी अलग अस्मिता बनाने और सर्वेक्षण या अनुवाद के बहाने अपना प्रचार करने की ही दृष्टि रखी। उनकी यही गतिविधिया देखकर समाज मे शका और अविश्वास का वातावरण पनपता रहा और कमेटी तथा ट्रस्ट के सबधो को लेकर समाज के मन मे तरह-तरह के प्रश्न उठने लगे। तीर्थक्षेत्र कमेटी से इस बारे मे अपनी नीति स्पष्ट करने के लिए चारो ओर से दबाव आने लगे।

परन्तु इस विषय मे कमेटी का दृष्टिकोण हमेशा से स्पष्ट ही रहा है। उसमे कभी कोई दुविधा नही रही और पिछले तेरह वर्षो मे उस दृष्टिकोण मे कोई परिवर्तन भी नही हुआ। इसके प्रमाण मे कमेटी के अध्यक्ष का एक पत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है जो दिगम्बर जैन युवा परिषद् विक्रोली-बम्बई के पत्र के उत्तर मे

उन्होने अगस्त 1974 में लिखा था। पत्र के कुछ अश उधृत हैं—

'कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट दूसरे ट्रस्टो की भाति एक ट्रस्ट है। कोई भी संस्था या व्यक्ति ट्रस्ट बना सकता है। कितने ही ट्रस्ट बने हुए है जिनका उद्देश्य समान है। ऐसे भी उदाहरण हैं कि एक ही परिवार मे समान उद्देश्यो के लिए एक से अधिक ट्रस्ट बने हुए हैं।

अच्छा होता कि कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट के व्यवस्थापक अलग ट्रस्ट न बनाकर तीर्थक्षेत्र कमेटी को अपना सीधा सहयोग प्रदान करते। परन्तु यह प्रश्न कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट के स्थापक और ट्रस्टियो को समझना था। अब, यह ट्रस्ट अस्तित्व मे आ ही गया है, चाहे कोई पसन्द करे या न करे। तीर्थक्षेत्र कमेटी ने उक्त ट्रस्ट के लिए, न कोई निवेदन किया है, न कोई अपील निकाली है, और न निकालने का सकल्प था। कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट का उद्देश्य केवल तीर्थ सुरक्षा ही नही है, परन्तु उनके उद्देश्यो मे साहित्यसृजन तथा प्रचार आदि का भी समावेश है। इन और उद्देशो के प्रति समाज मे विभिन्न विचार हैं और हो सकते हैं। इसलिए मेरी समझ से इस ट्रस्ट का अलग रहना ही उचित है।

आपको शायद यह जानकारी होगी कि कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट या उसके समर्थक तीर्थो को आर्थिक सहायता देते रहे हैं और तीर्थो से भी सहायता प्राप्त करने के लिए उनके पास पत्र आते है।

उपरोक्त बातो को ध्यान मे रखकर तीर्थक्षेत्र कमेटी के पदाधिकारियो को यह चिन्ता हुई कि तीर्थों की सुरक्षा तीर्थक्षेत्र कमेटी से ही हो, वरना जैसे सिद्धान्तो के प्रति विचार-

भेद हैं उसी प्रकार तीर्थो को लेकर समाज मे वैमनस्य पैदा न हो।

उपरोक्त आशय को ध्यान मे रखकर कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट के ट्रस्टियो, विशेषकर श्री बाबूभाई मेहता से बातचीत हुई और उनसे कहा गया कि आप जो कुछ भी सहायता तीर्थों के लिए देना चाहते है वह तीर्थक्षत्र कमेटी के माध्यम से ही दे। मेरे मन पर ऐसी छाप पड़ी कि वे इसके लिए तैयार थे। मेरा प्रस्ताव सिद्धान्त स्वीकार होने पर उनसे निवेदन किया जाता कि वे प्रस्ताव या पत्र द्वारा अपनी स्वीकृति प्रदान करे ताकि उसको पूर्णतया वैधनिक रूप दिया जाता।

अब मैं आपका ध्यान इस ओर भी दिलाना चाहूगा कि समाज मे समय-समय पर सैद्धान्तिक और सामाजिक विषयो को लेकर मतभेद होता रहा है। उसके लिए अलग-अलग सस्थाओ का निर्माण भी हुआ है। इन सस्थाओ के द्वारा भिन्न विचारो की पुष्टि और अपुष्टि होती रही है। लेकिन तीर्थक्षेत्र कमेटी ही एक सस्था है जहा पर भिन्न-भिन्न विचारो के लिए एक मच पर बैठकर तीर्थों की सुरक्षा और उनके प्रति उनका जो उत्तरदायित्व है, उस पर विचार करते रहे है। यही तीर्थक्षेत्र कमेटी का बल है और इसीलिए जितना हो सका उस दिशा मे तीर्थों की सुरक्षा की जा रही है। सम्भवत. ऐसा न होने पर तीर्थो की सुरक्षा के प्रश्न मे भी बाधा पड़ने की सम्भावना हो सकती थी।

भवदीय,

लालचन्द हीराचन्द, अध्यक्ष,
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई,

इस प्रकार तीर्थक्षेत्र कमेटी का दृष्टिकोण बहुत साफ रहा परन्तु कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट की भूमिका सदैव रहस्यमय रही। उनकी कार्य-पद्धति यह रही कि वे तीर्थक्षेत्र कमेटी के साथ सहयोग का दिखावा करके तीर्थों तक अपनी पहुच बनाना चाहते थे और वहा सर्वेक्षण के बहाने अपना प्रचार करना और अपने पैर जमाना चाहते थे। कमेटी के साथ उनका सहयोग मात्र एक छल था। वास्तविकता उसमे नही थी। एक बार तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री बाबूभाई मेहता ने एक प्रारम्भिक बैठक के पूर्व श्रीयुतश्रेयासप्रसादजी को वचन दिया था कि ट्रस्ट की गति-विधिया तीर्थक्षेत्र कमेटी के अन्तर्गत ही संचालित होगी और ट्रस्ट स्वतत्र रूप से किसी क्षेत्र पर कोई कार्य नहीं करेगा। पर कुछ ही घण्टो में बाबूभाई को अज्ञात कारणों से अपना संकल्प बदलना पडा और उनकी वह घोषणा कभी सार्वजनिक मच पर नही आयी।

इस अस्वच्छ पृष्ठभूमि मे यह स्वाभाविक ही था कि अधिकाश तीर्थों ने ट्रस्ट की योजनाओ को शका की दृष्टि से देखा तथा ट्रस्ट की सहायता लेने मे हिचकते रहे। तीर्थों के सर्वेक्षण की योजना के बहाने से अपने प्रचार और अपने साहित्य की बिक्री का ट्रस्ट द्वारा एक नया जाल बिछाया गया, पर अधिकाश तीर्थों ने सहायता की ही तरह सर्वेक्षण का भी उनका ऑफर अस्वीकार कर दिया।

अब इन बदली हुई परिस्थितियो मे समाज के भीतर पनपने वाली कुशकाए निरन्तर बढ रही थी। तीर्थक्षेत्रो के प्रबन्ध और पदाधिकारी अपने-अपने तीर्थों को सूर्यकीर्ति की अमगल छाया से तो बचाना ही चाहते थे, कुन्दकुन्द-कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट से

अपने तीर्थ का सर्वेक्षण कराने मे, और उनसे कोई भी आर्थिक सहयोग लेने मे उन्हे अनेक खतरे दिखाई देने लगे थे। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी से इस बारे मे स्पष्ट मार्गदर्शन की अपेक्षा की जा रही थी और कमेटी के कार्यालय मे ऐसे पत्रो का ताता लगा हुआ था। तब जून 85 मे, अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए, तीर्थक्षेत्र कमेटी ने इस प्रकार विज्ञप्ति प्रसारित करके समाज को सावधान किया—

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई,

सूर्यकीर्ति या घातकी खण्ड के
भावी तीर्थंकर की स्थापना आगम विरुद्ध

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ की ओर से स्वर्गीय श्री कानजीस्वामी के भावी तीर्थंकर के कल्पित रूप मे 'सूर्यकीर्ति' या धातकी खण्ड के भावी तीर्थंकर के नाम से मूर्ति की स्थापना का जब से समाचार मिला, तभी से भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के हमारे सभी सहयोगी इस बारे मे चिन्तित रहे, और इसे रोकने के लिए प्रयत्नशील रहे।

समाज के मूर्धन्य विद्वानो की राय लेकर, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की पदाधिकारी परिषद् की 17 दिसम्बर 1984 की बैठक मे इस विषय पर विस्तृत चर्चा की गयी, जहा सभी उपस्थित सदस्यो ने इस प्रकार की मूर्ति स्थापना को आगम विरुद्ध, परम्परा विरुद्ध और धर्म के सिद्धान्तो के विपरीत होने से उसका विरोध किया।

मूर्ति स्थापना को रुकवाने के लिए वार्ताओ और पत्र-व्यवहार के द्वारा बहुत प्रयास किये गये। दिगम्बर जैन महासमिति से प्रेरणा पाकर इन्दौर के सज्जनो द्वारा तथा बाद मे भारतवर्षीय

दिगम्बर जैन महासभा द्वारा यह प्रकरण न्यायालय मे भी उठाया गया। समाज के मान्य विद्वानो मे प्रतिष्ठाचार्य पण्डित नाथूलाल जी शास्त्री आदि ने भी इस स्थापना को धर्म-विरुद्ध और मिथ्यात्व-प्रेरित निरूपित किया। जैन पत्रो ने भी इसके विरोध मे बराबर लिखा। इस तरह पूरी दिगम्बर जैन समाज ने अनेक स्तरो पर इस गलत कार्य का विरोध किया।

अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि इस सारे विरोध के बावजद सोनगढ ट्रस्ट की हठधर्मी के कारण 'धातकी खण्ड के भावी तीर्थंकर' नाम से कुछ मूर्तियो की तथाकथित प्रतिष्ठा करा ली गयी है और अब उन्हे कई जगह मुमुक्षु-मण्डलो के दिगम्बर जैन मन्दिरो मे स्थापित किया जा रहा है।

कमेटी का निर्देश

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी ऐसी मर्तियो की स्थापना को सर्वथा-धर्म विरोधी और लोकमूढता का कार्य मानती है, इसलिए देश के सभी तीर्थों, मन्दिरो तथा चैत्यालयो के प्रबन्धको मे अनुरोध करती है कि इस स्थापना के प्रति सजग और सतर्क रहे तथा किसी भी हालत मे अपने तीर्थ पर मन्दिर मे या चैत्यालय मे ऐसी किसी मूर्ति को रखने की अनुमति नही दें। सगठित और जागरूक विरोध के द्वारा ही इस आगम विरूद्ध कार्य को रोका जा सकेगा। इसलिए आपमे अपेक्षा है कि दिगम्बर जैन सस्कृति और परम्पराओ की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहते हुए अपने प्रभाव का उपयोग करे और इस पाखण्ड से अपने धर्मायतनो की रक्षा करे।

यदि किसी छलबल से किसी मन्दिर मे इस प्रकार की मूर्ति

रखने का प्रयास किया जाए तो उसे किसी प्रकार भी बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए और ऐसी मूर्तियो को हटा देने मे कोई सकोच नही करना चाहिए तथा पूरी समाज को सगठित होकर ऐसे सारे प्रयास विफल करने चाहिए।

ट्रस्ट से कोई सबंध नहीं

इसी सिलसिले मे प्राय श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, बम्बई के बारे मे भी प्रश्न उठ रहे है। इस सबध मे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी का श्रीकुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के साथ किसी प्रकार का कोई अनुबध नही है। दूसरी ओर सदैव से प्रत्येक तीर्थ और मन्दिर आदि सस्थान अपनी-अपनी प्रबध समितियो के अतर्गत अपनी-अपनी नियमावली के अनुसार कार्य करते है। समाज की किसी संस्था से सहयोग या अनुदान लेना तथा किससे नही लेना, यह निर्णय वे सस्थान स्वय करते है। प्रारम्भ से अब तक यही प्रथा रही है।

हमारी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि इन गम्भीर प्रश्नो पर आप विचार करे तथा उपरोक्त सदर्भो मे सावधानीपूर्वक दिशा-निर्देशो पर अमल करे। इस सबध मे यदि आप कोई मन्तव्य या सुझाव देना चाहे तो उसका स्वागत है।

बम्बई	जयचन्द लोहाडे	साहु श्रेयासप्रसाद जैन,
13-6-85	महामंत्री,	अध्यक्ष,

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी

उपरोक्त दोनो विज्ञप्तियो को मिलाकर देखने से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी का

कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के साथ कभी कोई सबध नहीं रहा। इस बारे मे तीर्थक्षेत्र कमेटी का कोई आग्रह भी नही रहा और ट्रस्ट के गठन से लेकर आज तक उसके बारे मे कमेटी की नीति स्पष्ट रही है। उसमे जरा भी बदलाव नही हुआ है। इतना ही नही, यह भी एक तथ्य है कि सूर्यकीर्ति का विरोध करने वाली सबसे पहली सस्था तीर्थक्षेत्र कमेटी ही रही। दिनाक 17-12-84 को अपनी पदाधिकारी-परिषद् की बैठक मे कमेटी ने सूर्यकीर्ति की स्थापना का विरोध करने का सकल्प किया और उस दिशा मे समाज को समय रहते सचेत करने के सारे प्रयास किए।

वर व्रतै पद दैव नाव्रतैर्वत नारकम्
छायातपस्थयोर्भेद प्रतिपालयतो महान्।

—आचार्य पूज्यपाद/इष्टोपदेश/

व्रतधारण करके पाया हुआ देव पद श्रेष्ठ है,
अव्रतो से मिला नरक नही।
छाया और आतप में बैठकर
समय बिताने मे बडा भेद है।

एक ही रास्ता-दूसरा नहीं

सूयकीर्ति की मूर्तियो और सोनगढपथ द्वारा रचित एकागी साहित्य के बारे मे पूज्य आचार्य धर्मसागरजी महाराज के मार्ग-दर्शक आदेश को पूरी दिगम्बर जैन समाज मे मान्यता दिलाने के लिए महासभा ने 30 अप्रैल 85 को अपने हस्तिनापुर अधिवेशन मे सर्वमत से एक सकल्प पारित किया। इसी प्रकार कुछ ही सप्ताहो के भीतर अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ने अपने फिरोजाबाद अधिवेशन मे सूर्यकीर्ति विरोधी प्रस्ताव पारित किया। इन दो सक्रिय सस्थाओ द्वारा आचार्यश्री के आदेश का प्रचार करने का सकल्प ज्ञात होते ही सोनगढ पथ मे खलबली मच गयी। उन्हे अपना अस्तित्व ही छीजता हुआ दिखाई देने लगा। उनके प्रमुख-प्रवक्ता श्री हुकम चन्दजी भारिल्ल तो ऐसे व्यग्र हो उठे, और कुछ ऐसी व्यूह रचना की सोचने लगे जो समाज के लिए तो अहितकर थी ही, स्वय उनके लिए भी हानिकर होने जा रही थी।

भारिल्लजी का सांघातिक कदम

आचार्यश्री के आदेश का विरोध करने के लिए भारिल्लजी

न जयपुर से एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन छेडने की तैयारी कर डाली। समाज मे बिखराव, अलगाव और फूट पैदा करके अशान्ति उत्पन्न करना ही उन्हे अपने अस्तित्व की रक्षा का एकमात्र उपाय लगा। उन्होंने वामपथी बदनाम राजनैतिक दलो की पद्धति पर आधारित एक कपटपूर्ण योजना तैयार की और उसे नाम दिया—'एक ही रास्ता'। वीतराग विज्ञान के जून 85 के सम्पादकीय मे उन्होने अपनी योजना प्रकाशित की और इस आन्दोलन की विस्तृत रूपरेखा अपने अगले सम्पादकीय मे प्रगट कर दी। यदि उनके परामर्श के अनुसार मुमुक्ष-मण्डलो द्वारा ऐसा कोई आन्दोलन छेड दिया गया होता तो निश्चित ही दिगम्बर जैन समाज मे विद्वेष और अशान्ति का ऐसा ताण्डव होता जिसे रोकना फिर बहुत कठिन हो जाता और जिसके दुष्परिणाम पूरी समाज को कई शताब्दियो तक भुगतना पडते। स्वय उनके लिए तो वह 'आत्मघाती' निर्णय था ही। उसी पर से उन्हे अपनी वास्तविक शक्ति का सही ज्ञान हो जाता और उनकी बहुत-सी गलत फहमी दूर हो जाती।

क्या था एक ही रास्ता

जिनवाणी सुरक्षा एव सामाजिक एकता आन्दोलन के नाम से प्रस्तावित यह आन्दोलन पूरी तरह श्री भारिल्ल के खुराफाती मन की उपज थी। उसके सचालन का भार भी टोडरमल स्मारक ट्रस्ट पर ही था। इसके बहुत पहले श्री बाबूभाई मेहता का निधन हो चुका था परतु श्री भारिल्ल ने दावा किया था कि इस योजना का सूत्रपात उन्ही के परामर्श और सहमति से किया गया है। शायद यह एक ऐसा असत्य था जिसमे भारिल्लजी के अनुयायियो को भी कोई सदेह नही था। सच बात तो यह थी कि बाबूभाई

को, या सामान्य मुमुक्ष भाइयो को भी इस योजना से कोई लेना-देना नही था। जैसा कि बाद मे सिद्ध हुआ यह सारी योजना कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ से प्रेरित थी और बिलकुल बिना विचारे इसकी रूपरेखा तैयार करके प्रकाशित कर दी गई थी। 'एक ही रास्ता' का यह आलेख वीतराग-विज्ञान के अलावा पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया और जैन-सदेश के 20-6-85 के अक मे भी इसे छपाया गया।

आन्दोलन के तीन चरण बताये गये थे। प्रथम चरण मे भाग लेने वाले कम-से-कम दस हजार कार्यकर्ताओ के सकल्प-पत्र प्राप्त किये जाने थे। इन पत्रो में यह सकल्पित करना था कि—"हम देव-शास्त्र-गुरु की अवज्ञा न तो स्वय करेंगे और न करने वालो की अनुमोदना ही करेंगे।"

दूसरे चरण मे जगह-जगह शान्ति-प्रार्थना सभाओ का निर्देश था। इन सभाओ में सभी स्त्री-पुरुषो को हाथ पर पीली पट्टी बाध कर उपस्थित होना था। प्रार्थना के बाद अपनी गणना करानी थी।

आन्दोलन के तीसरे चरण मे किसी जिन मदिर मे, स्वाध्याय-भवन मे या फिर धर्मशाला आदि किसी सार्वजनिक स्थान पर सामूहिक अनशन करने का विधान था। भारिल्ल जी ने इस दिखावटी अनशन को उपवास का लुभावना नाम दिया था। हम यह मानने को तो तैयार नही हैं कि हमारे मित्र को राजनैतिक सत्याग्रह और धार्मिक उपवास का अतर ज्ञात नही है, परतु यह हम अवश्य जानते हैं कि जब मायाचारी का तीव्रोदय आता है तब ज्ञानी की भूमिका मे इस प्रकार का मायाचार स्वय आये बिना रहता नही है। इस दौरान भारिल्ल जी के साथ यही हो रहा था। क्रमबद्ध पर्याय का वितान छिन्न-

भिन्न हो गया था और 'होता स्वय जगत परिणाम' वाला गणित फेल हो चुका था। अब हमारे मित्र इस सिद्धात के सामने नत-मस्तक दिखाई देते थे कि जैसा पुरुषार्थ करेगे वैसा ही कार्य होगा।

विसगतियो से भरी राह

इसमे तनिक भी सदेह नही कि आन्दोलन के ये ज्ञापित उद्देश्य लुभावने थे और इनमे कोई समाज-विरोधी बात दिखाई नही देती। परतु आन्दोलन की पूरी पृष्ठभूमि का अवलोकन करे, भारिल्लजी द्वारा निर्देशित सिद्धान्तो की समीक्षा करे और उनके द्वारा दिये गये कारणो पर विचार करे तभी हमे इस दुरभिसधि का असली चेहरा दिखाई दे सकता है। उसकी कुछ प्रमुख विसगतियो पर हम यहा विचार करेगे।

1. पूरा आन्दोलन शातिपूर्वक करने की बात कही गई थी, परतु यह भी हिदायत दी गई थी कि सम्पूर्ण कार्यक्रम मे हाथ पर पीली पट्टी अवश्य बाधे रहेगे और इस कार्यक्रम की सूचना पुलिस को पहले ही अवश्य करेगे जिससे यह शात-प्रिय अहिसक निर्विघ्न चल सके और अवाछित तत्व इस आन्दोलन को बदनाम न कर सके।

2 इस पूरी योजना मे हर जगह जिनवाणी की सुरक्षा का नारा तो दिया गया था परतु एक जगह भी सूर्यकीर्ति के रूप मे अपने गुरू की कल्पित मुर्ति की स्थापना का विरोध भारिल्लजी ने नही किया था। उल्टे कई जगह उसका प्रच्छन्न समर्थन किया गया प्रतीत होता था। एक स्थान पर तो उन्होने सूर्यकीर्ति की स्थापना करने वाले अपने नव-दीक्षित दिगम्बर भाइयो की स्पष्ट

अनुमोदन भी की थी। एक ही उद्धरण काफी होगा—

"हमारे जिन साथियो ने सबकी भावनाओ की अवहेलना कर जिनागम के आधार बिना जो कार्य किया है, उसमे भी उनकी अतिशय भक्ति ही मूल प्रेरक रही है। जिन पूज्य स्वामीजी ने उन्हे मिथ्यात्व के महा-अधकार से निकालकर सत् धर्म का मार्ग-सुझाया, उनके प्रति उनकी अतिशय श्रद्धा होना स्वाभाविक ही है।"

और एक जगह तो यह भी तर्क था कि—"सूर्यकीर्ति की प्रतिष्ठा भी गाव-गाव मे नही, एक स्थान विशेष पर ही हो रही थी, उससे सम्पूर्ण समाज क्या आन्दोलित हुआ ?" यहा हमे भारिल्ल जी के इन तर्कों और निर्देशो की समीक्षा करने की आवश्यकता नही है। उनका सारा अभिप्राय उनके शब्दो मे ही स्पष्ट झलकता है।

3. इस आन्दोलन के लिए जिनवाणी की कोई परिभाषा निर्धारित नही थी। इसका मुख्य कारण यह था कि जिनवाणी-सुरक्षा की आड मे अपने द्वारा रचित अथवा प्रवचन किरणो के रूप मे अपने गुरुजी द्वारा कथित एकान्त-समर्थक और कल्पित साहित्य की रक्षा ही भारिल्लजी का सर्वोपरि उद्देश्य था। उस अभिप्राय की पूर्ति के पक्ष मे भारिल्लजी के पास कोई तर्क तो था नही। अत वे दया और उदारता की दुहाई देकर भी अपने साहित्य की सुरक्षा के लिए गिडगिडा रहे दिखाई देते थे। एक जगह तो उन्होने यहा तक लिख दिया था—

—"हमारे मदिरो मे, घरो में, गीता भी है, पुराण भी है, कुरान भी हैं। हमारे पूर्वज तो सभी प्रकार का साहित्य इकट्ठा करते थे। और हम जिनवाणी पर भी प्रतिबध

लगावे, यह कैसे सोचा जा सकता है।"

4 हमारे मित्र का साहस सराहनीय है क्योकि उपरोक्त तर्क देने के बाद भी उन्होने आगे लिखा था कि—"हमारा यह प्रयास विशुद्ध जिनवाणी की सुरक्षा एव सामाजिक एकता के लिए ही है। इसमे हमारा कुछ भी स्वार्थ नही है।"

धर्म पर राजनीति का मुलम्मा

बार-बार निस्वार्थ भावना की दुहाई देकर ही हमारे मित्र ने अपनी स्वार्थपरता को स्वत स्पष्ट कर दिया था। अच्छा होता कि भारिल्लजी उन मदिरो का नाम भी स्पष्ट लिख देते जिनमे गीता और कुरान की प्रतिष्ठा उन्होने कराई हो। इससे उनका सर्वधर्म सभाव तो प्रकट हो जाता।

आन्दोलन की रूपरेखा प्रगट करके भारिल्लजी ने एक अच्छी बात की। वह यह कि उन्होने अपनी सस्थाओ और सगठनो का चरित्र उजागर कर दिया। 'मोक्तु इच्छति इति मुमुक्षु' मोक्षार्थी ही मुमुक्षु है को परिभाषा से मण्डित अपने मुमुक्षु-मण्डलो की सही परिभाषा उन्होने स्पष्ट कर दी थी कि वे आध्यात्मिक सगठन नही है वरन सामाजिक और कुछ हद तक राजनीति प्रेरित सस्था के अग है। यह पहली बार भारिल्लजी की लेखनी से व्यक्त हुआ। एक स्थान पर उन्होने लिखा—"हम अपने कार्यक्रमो को देश भर मे फैले मुमुक्षु मण्डलो और अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की शाखाओ के माध्यम से करना चाहते है। वीतराग-विज्ञान पाठशालाओ को हम इसमे नही उलझाना चाहते हैं, क्योकि वे हमारी विशुद्ध शैक्षणिक सस्थाए हैं।"

इस घोषणा के बाद भारिल्लजी के मतव्य के बारे मे और

उनके सगठनो के उद्देश्यो के बारे मे कुछ भी कहने की आवश्यकता हम नही समझते। अब हमे केवल एक बात देखनी है कि आचार्य श्री के आदेश का पालन करने वालो के लिए और उसका विरोध करने वालो के लिए जिनवाणी का स्वरूप क्या था, और जयपुर से आहूत इस विघटनवादी आन्दोलन का नाटकीय अन्त किस प्रकार हुआ।

सोनगढ पथ के प्रमुख प्रवक्ता डॉ हुकमचन्द भारिल्ल ने 'जिनवाणी सुरक्षा' के नाम पर जो एक ही रास्ता अपने अनुयायियो को दिखाना चाहा था, और जिसके माध्यम से दिगम्बर जैन समाज मे अकारण विक्षोभ और अशाति के बीज बोने की कोशिश की गई थी, उस योजना को पूरा पढने पर यह बात सूरज के उजाले की तरह स्पष्ट हो जाती है कि येन-केन-प्रकारेण आचार्यश्री धर्मसागरजी के आदेश को अमान्य करा देना ही भारिल्लजी का एकमात्र उद्देश्य था। इसके लिए अपने आलेख मे परस्पर विरोधी बयान देते हुए भी उन्हे कोई सकोच नही हुआ।

गलत मूल्यांकन

दिवगत श्रीकहानजी और मायाविनी वहिनश्री की सराहना करते समय भारिल्लजी ने अपना हृदय ही खोलकर रख दिया था। उन्होने लिखा कि—"कुछ मनमानी करने वाले सत्तालोलुपी लोग स्वामी के प्रताप से बने नए दिगम्बरो मे वहिनश्री की अपरिमित प्रतिष्ठा का अनुचित लाभ उठा रहे है।" अपने गुरु के मलिन-मुख को चमकाने की कोशिश मे पूरी जैन समाज के मुख

पर कालिख पोतने का हास्यास्पद प्रयास करते हुए उन्होने एक जगह लिखा कि—

> "हमारे मदिरो मे माली काम करते है, सात-सात पीढी से वे हमारे मदिरो की सेवा करते आ रहे है, पर आज तक हम एक माली को भी जैन नही बना सके है, और स्वामी जी के प्रताप से हजारो पक्के दिगम्बर जैन बन गये है।
>
> उनके प्रताप से जो हजारो भाई दिगम्बर जैन बने है, क्या उन्हे आप अपने से अलग होने को बाध्य कर देना चाहते है ?

समय ने स्वत सिद्ध कर दिया था कि श्रीकहानजी के बनाये हुए हजारो पक्के दिगम्बर जैनों की आस्था कहा है और कैसी है ? इतिहास गवाही है कि दिगम्बर-श्वेताम्बर सघ भेद के बाद श्वेताम्बर भाइयो ने भी कोई इतनी निराधार कल्पना नही की थी जितनी ये नव-दिगम्बर अपने जन्म काल से करने लगे थे। किसी ने जैन शासन मे पच्चीसवे तीर्थंकर और नवीन गणधर की स्थापना करने का दुस्साहस नही किया था जो इन नव-दीक्षितों ने कर दिखाया था। दो-चार नही आठ-आठ दिगम्बर जैन मदिरों मे सूर्यकीर्ति की प्रतिष्ठा हो चुकी थी, और सोनगढ मे चम्पा बहिन का पाखण्ड अपने चरम पर पहुचा हुआ था। इस प्रकार एक सर्वथा नवीन पथ का उदय हो चुका था। परतु हमारे मित्र 1985 के उन दिनो मे भी 1981 के ही चश्मे से सारा परिदृश्य देख रहे थे, उसकी गुणवत्ता आक रहे थे और उसी अनुरूप समाज का मार्गदर्शन करना चाहते थे।

ऐसा लगता है कि भारिल्लजी को दिगम्बर जैन समाज के बारे मे बड़ी गलत-फहमी थी। वे समझते थे कि जैसे उनके प्रवचन

चाव से सुने जाते रहे हैं, वैसे ही चाव से समाज उनकी योजना को आंख मूद कर मान लेगी और जगह-जगह विक्षोभ तथा अशान्ति पदा करके, वे सोनगढ़ के पाखण्ड की ओर से समाज का ध्यान बटाने मे, तथा अपनी पूज्य, अपरिमित प्रतिष्ठा धारिणी वहिनश्री को मुमुक्ष-मण्डलों की मान्यता दिलाने मे कामयाव हो जायेगे। वे यह भूल रहे थे कि इस दिगम्बर समाज ने इतिहास के बडे-बडे आरोह-अवरोह देखे है, पिछले ढाई हजार साल मे मिथ्यात्व और धर्म-द्रोह के बड़े-बडे आघात सहे है, किन्तु इस समाज ने अपनी आस्था को कभी कलकित नही होने दिया। सच्चे देव-शास्त्र गुरु की मान्यता और श्रद्धा इस समाज के मन मे इतनी गहरी पैठी है कि एक नही हजार कहानजी पैदा हो जाये, और हजार चम्पाए अपने चमत्कार दिखाये, तो भी इसके सस्कारो मे जी रही आस्था को डगमगाया नही जा सकेगा। वह एक ऐसी अमृत वेल है जो गणधर भगवन्त की वाणी से रोपी गयी, असख्य आचार्य भगवन्तो द्वारा समय-समय पर सीची गयी और हर दिगम्बर के मन मे माता के दूध के साथ उसका प्रतिरोपण पच्चीस सौ वर्षों से होता चला आ रहा है।

दूसरी ओर भावकलक से दूषित हृदयो मे, कहानजी और चम्पाबहिन जैसे यश-लोलुप स्वयभू-भगवानो द्वारा जब और जहा इस अमृत बेल को रोपने का नाटक किया जायेगा तब उसमे कैसे और कितने जहरीले फल-फूल उगेगे यह देखने के लिए आज दूर जाने की आवश्यकता नही है। स्वीकार कर सके या नही, परन्तु भारिल्लजी भी उन फलो की कडवाहट और जहरीलेपन का पर्याप्त अनुभव कर चुके है।

एक रास्ता यह भी था

भारिल्लजी द्वारा प्रस्तावित आन्दोलन की रूपरेखा समाज के लिए जितनी हानिकारक और घातक थी उसके अनुमान से ही दिगम्बर जैन समाज का प्रवुद्ध वर्ग आन्दोलित हो उठा। कई जगह जवावी कार्यवाही की योजना की जाने लगी और इस प्रकार एक विस्फोटक परिस्थिति का निर्माण हो गया। उस समय कुछेक सवेदनशील विचारक विद्वानो ने इस प्रकरण पर लेखनी चलाकर समाज को सही मार्गदर्शन देने का प्रयास किया। प्रो. नरेन्द्रप्रकाशजी का जैन गजट का सम्पादकीय उनमे सर्वाधिक प्रासगिक और विचारपूर्ण रहा। इस लेख ने आन्दोलन के शिल्पियो को बहुत आगा-पीछा सोचने पर मजबूर किया जिसके फलस्वरूप आन्दोलन का यह आत्मघाती कदम टोडरमल स्मारक के कर्णधारों द्वारा वापस ले लिया गया। नरेन्द्रप्रकाशजी के लेख की मुख्य वाते ये थी—

अलगाव का नारा आपने ही दिया

जून 1985 के 'वीतराग विज्ञान' मासिक के सम्पादकीय लेख का शीर्षक है—'एक ही रास्ता'। इसी पत्र के जुलाई मास के अक मे जिनवाणी की सुरक्षा और सामाजिक एकता के लिए एक आन्दोलन की रूपरेखा प्रस्तुत होने जा रही है। दोनो लेख एक पुस्तिका के रूप मे छपाकर समाज के प्रवुद्धजनो को भेजे गये हैं। हम सोनगढ-अनुयायियो के इस कदम का स्वागत करते हैं।

दोनो लेखों को पढकर पहली प्रसन्नता तो हमें यह हुई कि अध्यात्म को एकमात्र आदर्श मानने वाले लोग अब आन्दोलन के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। अध्यात्म तो अकेले के आन्तरिक

विकास का लक्ष्य लेकर आगे बढता है, जब किसी भी आन्दोलन मे समूह के कल्याण की चिन्ता रहती है। पहला वीतरागता की ओर जाने वाला मार्ग है, जबकि दूसरे मार्ग पर चलते हुए राग का अश अवश्यमेव रहता ही है। एक तरह से यह ससार मे रहते हुए सराग दशा की ही स्वीकृति है। हमारा तो हमेशा से ही यह कहना रहा है कि संस्थाये चलाने वाले लोग राग से बच नही सकते, वीतरागता के गीत वे कितने ही गाते रहे। सस्था बनाना, चन्दा मागना, फण्ड इकड्ठा करना, प्रचार-प्रसार और प्रकाशन मे अनुराग होना, ये सब सरागी की ही परिणतिया है, वीतरागी के ये विकल्प होते ही नही।

सोनगढ के अनुयायी, जो अपनी अलग सस्थाये, अलग अखबार, अलग पण्डित-मण्डली, अलग तीर्थ रक्षा फण्ड, अलग ग्रथ आदि लिखकर दिगम्बरो मे अपनी अलग पहचान बनाये रखना चाहते है, वे अध्यात्म का प्रवक्ता होने का दावा भले ही करे, अध्यात्म के प्रवक्ता कहलाने के अधिकारी हर्गिज नही है। अध्यात्म-मार्ग पर चलने और बोलने के वास्तविक अधिकारी तो सिहवृत्ति वाले अयाचक निर्ग्रन्थ मुनिराज ही हो सकते है। आन्दोलन के रास्ते पर बुद्धिपूर्वक चलने का सकल्प जब आपने ले ही लिया है, तो हम इसका अर्थ यही लेते है कि अब आप अपने इस व्यवहार धर्म का पालन उसे उपयोगी समझकर ही कह रहे है। सिद्धान्त-रूप मे भी यदि इसे आप स्वीकार कर ले तो उससे निश्चित ही सामाजिक एकता का मार्ग प्रशस्त होगा। समाज मे जो एकता का अभाव आपने अनुभव किया है, उसका एक कारण आपका अपना एकान्तवादी दृष्टिकोण भी रहा है, इसे मान लेने से आपके एकता के मिशन और मतव्य की पूर्ति सहज ही हो सकेगी।

जैनत्व की परिभाषा क्या है

लेख में कहा गया है—"आज तक हम एक माली को भी जैन नही बना सके है और स्वामीजी के प्रताप से हजारों पक्के दिगम्बर जैन बन गये है।" हम इस बात से इस रूप मे सहमत हैं कि स्वामीजी ने नामधारी दिगम्बर जैन तो हजारो बनाये हैं किन्तु वे सच्चा दिगम्बर (निर्ग्रन्थ) पिछले पचास सालो मे एक भी नही बना सके। दिगम्बरत्व की सुरक्षा दिगम्बरो से ही होगी, अम्बरधारको (सग्रन्थियो) से नही। आज जरूरत पक्के जैनो की नही, सच्चे जैनो की है।

आपका यह कहना कि महासभा के कर्णधार, "एक ऐसे व्यक्ति का जो मूलत अजैन है और जिनका सम्पूर्ण परिवार आज भी अजैन है, कहना मानकर वेसिर-पैर की बातो का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। वह व्यक्ति सोनगढ की रीति-नीति का प्रवक्ता नही हो सकता।" श्रीमन् इस सवध मे हम कहना चाहते है कि वह व्यक्ति भी आपके कथनानुसार ही स्वामीजी द्वारा बनाये उन हजारो जैनो मे से ही एक है और विभाजन से पहले तक आप भी उन्हे जैन धर्म का प्रवक्ता बनाकर अष्टान्हिका और पर्यूषण पर्व के अवसरो पर देशभर मे जगह-जगह भेजते रहे है। वीतराग विज्ञान में भी पण्डितो की सूची मे उनका नाम छपता रहा है। आज इतने बर्षो के बाद आप यह रहस्य खोल रहे है कि वह अजैन है। ऐसे और कौन-कौन अजैन वहा है, आपको इसकी एक सूची छपा देनी चाहिए, ताकि समाज को उन्हे समझने में सहूलियत हो। हम तो किसी भी उस व्यक्ति को, जो वर्तमान मे किसी भी दिगम्बर मुनि के चरणो मे अपना माथा नही टेकता, व्रतरूप चारित्र को धारण किये बिना ही उसे बन्ध का कारण

मानता है, और श्रावकोचित संयम को न तो स्वयं अंगीकार करता है तथा न दूसरो के लिए ही उसकी प्रेरणा करता है, जैन नही मानते । वे जैनाभास है ।

और यह पुलिस किसलिए ?

हमे खुशी है कि आपने उपवास-जैसी पुण्य क्रिया से स्व और पर के होने वाले उपकार को स्वीकार किया है । अब तक तो शुभ भाव को आप आत्मा का विकार कहते रहे है । उसी शुभ भाव के आश्रय से आपने सामाजिक एकता और शान्ति का मार्ग प्रशस्त करने का संकल्प घोषित किया है, यह हमे भी इष्ट है । सभ्य समाज के द्वारा ऐसे अच्छे कार्य के विरोध का कोई प्रश्न ही पैदा नही होता ।

लेकिन विद्वान लेखक महोदय का अपने अनुयायियो से यह कहना हमारी समझ मे नही आया—कि "इस कार्यक्रम (उपवास-आन्दोलन) की सूचना पुलिस को पहले ही अवश्य करें, जिससे यह शान्तिप्रिय अहिंसात्मक आन्दोलन निर्विघ्न चल सके और इस आन्दोलन को अवाछित तत्त्व बदनाम न कर सके ।" अब क्या आनेवाले युग मे आपके अध्यात्म का रथ पुलिस वाले खीचेगे ? सम्यग्दृष्टि को तो भय नही होता और कदाचित् कोई उपसर्ग होता भी है तो वह उसे समतापूर्वक सहता है । ऐसे अच्छे कार्य मे कोई उपसर्ग होगा नही, होना भी नही चाहिए । फिर भी इस तरह की आशका या तो आत्मविश्वास और आत्मबल की कमी की सूचक है अथवा इसमे से किसी षड्यन्त्र या निहित स्वार्थ की गन्ध आती है । आपका यह कथन आपके अनुयायियो की कमजोरियो की तो उपज नही है ? आपको यह देखना होगा कि आपके अपने अनुयायियो के बीच मे घुसकर, कुछ अवाछित तत्त्व इस आन्दोलन

के बहाने आपकेप्रभाव से अछूते कुछ मदिरो पर भी कब्जा करने का प्रयास न करे। हम यह चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझते है कि आन्दोलन या पुलिस की आड़ मे किसी भी तरह की नयी घुसपैठ को समाज बर्दाश्त नही करेगा। मदिर कमेटियो की बिना पूर्वानुमति के जोर-जबरदस्ती से भी ऐसे उपक्रम वहा नही किये जाने चाहिए। यह तो सामान्य शिष्टाचार है।

एक रास्ता यह भी है

आपने लेख के अन्त मे प्रो नरेन्द्रप्रकाशजी ने भारिल्ली को और उनके साथियो को एक हितकर परामर्श इन शब्दो मे दिया था—

आपने जो रास्ता चुना है, उस पर आप चले। महासभा अथवा समाज को उस पर कोई आपत्ति नही होगी। किन्तु समाज मे स्थायी एकता के लिए एक रास्ता यह भी है कि आप नयपक्षपात को छोडकर गृहस्थोचित समीचीन सयम-सदाचार की प्रभावना के लिए अपनी शक्ति और प्रभाव का उपयोग करे।

सामाजिक एकता हम भी चाहते है किन्तु आगम, आम्नाय और सिद्धान्तो की कीमत पर नही। उसके लिए 'एक ही रास्ता' नही, 'एक रास्ता यह है' है जिसका हमने ऊपर सकेत किया है। यह दूसरा रास्ता स्थायी समाधान की दिशा मे जाने वाला है। आशा है सोनगढ-पक्ष (उभय) गभीरतापूर्वक हमारे इस निवेदन पर विचार करेगा।

—नरेन्द्र प्रकाश जैन,
—जैनगजट सम्पादकीय 9-7-85

इस प्रकार पुलिस के सरक्षण मे छेडे जाने वाले उस कपट भरे

आन्दोलन के खिलाफ सोनगढ पथियो को समाज ने जो आक्रोश भरी प्रतिक्रिया दर्शायी उससे उनमे सदवुद्धि का संचार हुआ और वह आन्दोलन समय रहते वापस ले लिया गया। खेद की बात यह रही कि पलायन की इस दौड मे भी भारिल्लीजी ने नाटकीयता का सहारा लेकर अपने अहकार को सुरक्षित रखने का एक बडा हास्यास्पद प्रयास किया। अब हम उसी का विश्लेषण करेगे।

आदेहि कम्मगठी जावद्धा विषयरामोहेहिं,
तं दिदंति कयत्था तवसंजम्सीलयगुणेण।

—आचार्य कुदकुद/शीलपाहुड/27

विषयो मे राग और मोह के द्वारा
आत्मा मे कर्मो की जो गाठ बंध गई है
ज्ञानीजन उसे तप-सयम और शील के द्वारा खोल लेते हैं।

आचार्यश्री के आदेश का विश्लेषण

पूज्य आचार्य धर्मसागर महाराज के आदेश का विश्लेषण करने पर हम पाते है कि वह अत्यत स्पष्ट और निर्देशात्मक है। उसमे कही भी ऐसी कोई बात नही कही गयी है जो किसी भी प्रकार से समाज को अहितकर हो या किसी भी सस्था के उद्देश्यों के प्रतिकूल हो। पूज्य दिगम्बर आचार्यो और मान्य विद्वानो द्वारा रचित आगम के विरोध का तो उसमे कोई प्रश्न ही नही है। वह जिनवाणी की अविनय का प्रेरक नही है, बहुमान का विधायक है। दुर्भाग्य की बात यह है कि कोई तटस्थ होकर और पूर्वाग्रह छोडकर उसका अर्थ करना ही नही चाहता। यह केवल दो वाक्यो का आदेश है। पहला वाक्य सूर्यकीर्ति के परिचय का है और उसमे किसी को कोई आपत्ति शायद नही है। अब दूसरे वाक्य पर विचार करे।

—"समस्त दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियो से मेरा कहना है कि वे इस तरह की धर्म-विरुद्ध मूर्ति को अपने तीर्थों मे, मदिरो मे,

और गृह-चैत्यालयो मे कदापि न रखे, और इस तरह के धर्म-विरुद्ध कार्यों को करने वाले व्यक्तियो को, तथा उनके द्वारा निर्मित साहित्य को अपने मदिर जी मे जगह न देवे।" बस यही वह वाक्य है जिसे लेकर सोनगढ़ पथ मे खलबली मच गयी है। जिसके परिहार के लिए हमारे मित्रो को 'एक ही रास्ता' दिखाई दिया है और जिसे अब पूज्य आचार्यश्री की समाधि हो जाने के बाद, 'मन-माफिक तोड़ा-मरोड़ा आदेश' कुछ लोगो द्वारा कहा जा रहा है।

कौन-सा साहित्य

सूरज के उजाले की तरह यह बात स्पष्ट है कि आचार्यो या प्राचीन विद्वानो के द्वारा रचित साहित्य के खिलाफ इस आदेश मे कुछ नही कहा गया है। उसका वैसा अर्थ निकालना मात्र एक पूर्वाग्रह होगा और आचार्यश्री की अविनय ही होगी। आचार्यो की मूल रचनाए तो, चाहे जहा से प्रकाशित हुई हो, हमारे लिए सदा आदरणीय हैं और कैसे कोई श्रावक उनके बहिष्कार की बात कर सकता है? इस आदेश मे सूर्यकीर्ति की स्थापना को धर्म-विरुद्ध निरूपित करते हुए "इस तरह के धर्म-विरुद्ध कार्यो को करने वाले व्यक्तियो के द्वारा निर्मित साहित्य" के बहिष्कार की बात कही गयी है। इसका सीधा अर्थ है कि यह आदेश उस नवीन साहित्य की बात करता है जो निपट एकान्तवादी, पक्ष-व्यामोह से दूषित और कुटिल अभिप्रायो के लिए लिखा गया तथा जिसे जिनवाणी के नाम से हमारे गले उतारने की योजना-बद्ध कोशिश की जा रही है। अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहना चाहे तो—

1 यह आदेश विभिन्न ग्रथो की प्रवचन मालाओ और उन

प्रवचन सग्रहो के खिलाफ है जो जिनवाणी को नही, कहान-वाणी को प्रसार देने के लिए सोनगढ़ से प्रकाशित की गई हैं।

2 यह आदेश अनन्त बकवास से भरे हुए उस मौलिक लेखन के खिलाफ है जिसकी रचना श्रीकहानजी के परिकर के लोगो ने स्व-कल्पित धारणाओ की पुष्टि के लिए की है। इस विधा मे 'द्रव्य-दृष्टि-प्रकाश' 'बहिनश्री वचनामृत' और 'धन्य-अवतार' जेसे प्रकाशनो को रखा जा सकता है। और—

3 यह आदेश डॉ. भारिल्ल तथा उनकी विचारधारा वाले उन विद्वानो के ऐसे लेखन के खिलाफ है जिसमे अनेकान्त और स्याद्वाद की अवहेलना करके अनेक ऐकान्तिक-प्ररूपण किये गये है, व किये जा रहे है।

ऐसा साहित्य कैसे तैयार हो जाता है इसकी एक ताजा मिसाल हमारे सामने है। जैन सदेश के सह सम्पादक प रतनलाल कटारिया ने 27 अगस्त 87 के अक मे 'शका-समाधान' के अतर्गत अखबार के दो पन्नो पर अपना आगमज्ञान बिखेरा है। उनका वह निरूपण कितना एकाकी, कितना आगम-विरोधी है यह उसे पढकर सहज ही समझा जा सकता है। पर यह समझना हर पाठक के लिए तो सभव नही है। अब यदि वह लेखन आगे चलकर सग्रह रूप मे प्रकाशित हो तो वह 'जिनवाणी' ही तो माना जायेगा। ऐसे लेखन-प्रकाशन के खिलाफ भी वह आदेश है।

यह तो अच्छा हुआ कि श्री कटारिया का वह लेखन केवल पाच सप्ताह तक ही 'सम्यक्-प्ररूपणा' रहा। सदेश के ही

8 अक्टूबर 87 के अक में श्री सुलतानसिंह वकील ने अकाट्य तर्कों की पैनी कटार से कटारियाजी का बखिया उधेड़ कर रख दिया है। उन्होने श्री कटारिया की एक-एक बात की समीक्षा करते हुए बड़ी स्पष्ट और बिल्कुल सच्ची बात कही है कि—"श्रीरतनलाल कटारिया का यह लेखन एकान्तपरक होने से मिथ्यात्व का प्रतिपादन करता है, और यदि यह कहा जाय कि कटारियाजी को जैनधर्म का सामान्य ज्ञान भी नही है, तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही होगी।" हमारी दृष्टि से भी विद्वान लेखक श्री सुल्तानसिंह जी द्वारा विद्वान सम्पादक श्रीकटारिया पर की गयी यह टिप्पणी एकदम सही है। हम इसकी अनुमोदना करते हैं और लेखक को इसके लिए बधाई देते हैं। हमारे सही होने का यह भी एक आधार है कि सदेश के सम्पादक श्रीदरबारीलाल जी कोठिया ने भी इस समीक्षा की अनुमोदना करते हुए स्वीकार किया है कि—"हम मानते है कि कभी-कभी 'सदेश' मे ऐसी सामग्री छप जाती है, जो 'सदेश' की नीति एव गरिमा के अनुकूल नही होती।"

यही सब वे लोग है जिनके द्वारा निर्मित साहित्य से परहेज करने का परामर्श आचार्यश्री ने दिया। इसमे सदेह की जरा भी गुंजाइश नही है कि कहान-वाणी से लगाकर भारिल्ल-वाणी तक अधिकांश साहित्य की इसी प्रकार की कटु-समीक्षा की जा सकती है और उसे आगम-विरोधी सिद्ध किया जा सकता है। पूर्व मे कई विद्वानो द्वारा ऐसा किया भी जा चुका है। मिथ्यात्व के कोई सींग-पूंछ थोड़े ही होते है। आगम का पूरा कथन विविध-नयो से अनुशासित है। उसमे से किसी भी कथन का नय-निरपेक्ष या एकान्तिक अर्थ कर देना ही तो मिथ्यात्व है। हमे स्वय ही निर्णय

करना चाहिए कि ऐसी 'एकान्तवाद दूषित समस्त' मिथ्यात्व-पोषक वाणी का वहिष्कार न किया जायगा तो मार्ग की क्या परिणति होगी।

यहा एक वात और ध्यान देने की है। आचार्यों और विद्वानो के मूल-ग्रथो मे कोई परिवर्तन नही करते हुए, उनके अनुवाद मे भावार्थों के बहाने कई जगह असवद्ध और आगम-विरुद्ध अर्थ भर दिये गये हैं। इसलिये कई बार ऐसे ग्रथो के वहिष्कार की आवाज उठनी स्वाभाविक लगती है। उदाहरण के लिए छहढाला को ले। उसके अनुवाद मे अनेक विसगतिया उत्पन्न की गयी है। जो मूल मे नही हैं उसे अर्थ मे डालकर दौलतराम की वाणी कहने का प्रयास किया गया है। इस पर वहुत लिखा जा चुका है और लिखा जा रहा है। ऐसी स्थिति मे एक कसौटी हमारे मार्ग-दर्शन के लिये काम की हो सकती है। "लेखक की प्रामाणिकता से ही लेखन की प्रामाणिकता मानी जाती है।" यहा कसौटी इस आदेश को मानने के लिए काम मे लानी चाहिये।

साहित्य की कसौटी

आचार्यों और विद्वानो की वाणी को हम सर्वज्ञ की वाणी क्यो मान लेते है, इसीलिये तो कि वह आगम और आम्नाय पर आधारित है और वीतरागी गुरुओ ने उसे इस प्रकार प्रमाणित किया है। वही हमारे लिए जिनवाणी या शास्त्र है। कुशास्त्र की परिभाषा भी तो इतनी ही है कि वह एकान्तवाद दूषित हो, और/या विषयादिक पोषक हो, और या अप्रशस्त हो। या फिर वह जो रागी जीवो और/या कुमत-पोषको द्वारा रचा गया हो।

शास्त्र और कुशास्त्र की परीक्षा करने के लिए यही कसौटी हमारे पास है।

जब वक्ता या लेखक की प्रामाणिकता के बल पर हम वाणी को प्रमाण मानते है तब एक और बाध्यता हम पर आ जाती है। वह यह कि किसी आचार्य या लेखक का कोई एक अश-विशेष नही वरन् सपूर्ण साहित्य मिलाकर हमें देखना होगा। उसके समग्र लेखन की धारा से जो मेल खाती हो, वही व्याख्या, वही विचार-सारणी उस लेखक की प्रामाणिक वाणी कही जायेगी इधर-उधर के कुछ अंश जोड़कर अर्थ करने से ही अर्थ का अनर्थ है। मै कहना यह चाहता हू कि समयसार की चद गाथाओ को ही कु दकु द मानकर बैठना ठीक नही। कर्ता-कर्म, बध-मोक्ष आदि सभी अधिकारो पर दृष्टि रखकर, और प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड तथा द्वादस अनुप्रेक्षा और दस भक्तियो को ध्यान मे रखकर, आचार्य कु दकु द के समग्र साहित्य का अनुशीलन करके ही उनकी वाणी के सही अर्थ किये जा सकते है। मोक्षमार्ग प्रकाशक का मात्र सातवां अधिकार ही प. टोडरमल की वाणी नही है। पहला-दूसरा-तीसरा और आठवां अधिकार भी उनका ही लिखा हुआ है। लब्धिसार और क्षपणासार की टीकाए और गोमटसार की वृहद वचनिका भी उन्ही मनस्वी विद्वान की रचनाएं है। इन सबको पढकर ही समझा जा सकता है कि प टोडरमलजी क्या थे और वे वस्तु-स्वरूप के निरुपण में क्या कहना चाहते थे।

यह बडा दुर्भाग्य रहा है कि किसी भी आचार्य या विद्वान के समग्र साहित्य का अनुशीलन या मूल्यांकन सोनगढ की पद्धति में कभी नही रहा। मैंने कभी नाटकत्रयी को छोडकर कुंदकुंद भगवान की वाणी का वैसा प्रसार-प्रचार सोनगढ़ से न सुना,

न देखा। कहान-कथा मे कहा जाता है कि जब श्रीकहान जी ने मोक्षमार्ग-प्रकाशक पढा तब सातवा अध्याय उन्हें इतना प्रिय लगा कि उसे उन्होने अपनी कापी पर उतार लिया। हम देखते हैं कि तब से अब तक, वे और उनके अनुयायी, उसी सातवें अध्याय को ही लेकर मगन दिखाई देते है। सोनगढ मे मैंने स्वय देखा था कि अकेला सातवा अध्याय अलग छपाकर बाटा गया और उसी के प्रवचन हुए। यह सोनगढपथ की सबसे बडी त्रासदी है। यदि वे कभी आठवा अध्याय भी श्रद्धापूर्वक पढ लें तो उन्हे ज्ञात हो जायेगा कि, जो उनकी स्वाध्याय पद्धति है, या प्रवचन-पद्धति है, उसे स्वय प टोडरमलजी ने दोषपूर्ण पद्धति कहकर उसकी वर्जना की है।

आचार्यश्री के आदेश का विरोध करने वाले भाइयो से मैं पूछना चाहता हू कि जब आप सूर्यकीर्ति के पाखण्ड जैसे उपक्रमो का मौन समर्थन करेंगे, उसके विरोध मे सारा दिगम्बर समाज क्षुब्ध हो रहा हो तब आप एक शब्द तक नही लिखेंगे और अपनी कपट चाल से समाज को भ्रमित करते रहेंगे तो कैसे आपके कथन और लेखन को प्रामाणिक मानकर मदिर मे प्रतिष्ठित किया जाए? यहा सूर्यकीर्ति तो मात्र उपलक्षण है, अधिक औगुनकारी तो वह हठवादी साहित्य ही है जो कही से भी जिनवाणी नही है, पर जिनवाणी का रूप धरकर हमारे ग्रथागारो को अपवित्र, और हमारे मानस को दूषित करने के लिए प्रचारित किया जा रहा है। परम रागियो द्वारा कल्पित ऐसे साहित्य का बहिष्कार इस समय जैन शासन की सबसे बडी सेवा है। वही करने का परामर्श आचार्यश्री ने समाज को दिया था।

एक बात और हमारे मन मे साफतौर पर अकित होना

चाहिए कि ऐसे साहित्य को मन्दिर मे स्थान न देने का ही आदेश हमे दिया गया है। उन ग्रन्थो या पुस्तको की किसी प्रकार अविनय करने, जलाने या जल मे प्रवाहित करने का कोई आग्रह न आचार्यश्री ने हमें दिया है और न हम लोगो को ही ऐसा कुछ इष्ट है। शास्त्रो को जलाने या फेकने की बात जो बार बार प्रचारित की जाती है वह भी उन्ही दूषित मष्तिष्को की उपज हो सकती है जिनमे से वह साहित्य उपजा है।

ऐसा तो कभी नही हुआ

आचार्यश्री के आदेश का विरोध करने वाले एक नारा बडे जोर से लगाते रहे हैं कि क्या हम अपने पूज्य आचार्यों द्वारा प्रणीत या प्राचीन विद्वानो द्वारा लिखित शास्त्रो का सिर्फ इस कारण बहिष्कार कर दे कि आज उनका प्रकाशन सोनगढ ट्रस्ट से, या टोडरमल-स्मारक ट्रस्ट से हुआ है?

यह सचमुच एक गम्भीर प्रश्न है, परन्तु वास्तविकता यह है कि आचार्य-प्रणीत मूल ग्रन्थो के बहिष्कार का कोई निर्देश कही किसी ने कभी नही दिया। मात्र कहानपथी जनों द्वारा रचित उस नवीन एकागी साहित्य को मन्दिरो से पृथक् करने की बात है जिसमे निश्चय-नय के सहारे पूरे व्यवहार-धर्म की उपेक्षा की गयी है, उसकी निन्दा की गयी और धर्म की साधक क्रियाओ को अधर्म और त्याज्य कहा गया है।

आचार्यो के मूल ग्रन्थो से किसी को विरोध हो भी कैसे सकता है। परन्तु अपनी बात को प्रामाणिक बनाने की जिद मे कहानपथी जनो ने उन मूल ग्रन्थो की टीकाओ मे, या प्रवचन किरणो में अपनी हठधर्मी पग-पग पर भरकर रख दी है। उस मिलावट को

पहचानना और निकालना सामान्य श्रावक के बस की बात नहीं है इसलिए उनके द्वारा प्रकाशित समस्त साहित्य को मन्दिरो से पृथक करने का और गादी पर उनके पठन-पाठन के निषेध का परामर्श देने के सिवाय कोई उपाय ही नही था। वही किया गया है।

यहा यह तथ्य ध्यान मे रखना होगा कि सोनगढ़ साहित्य के जल-विसर्जन की नैनवा की घटना को छोडकर अन्यत्र अब तक कही भी ऐसा कुछ नही किया गया है। पुस्तकें जलाने की तो कोई घटना कही हुई ही नही। इस तरह के झूठे और मनगढ़ंत समाचार फैलाकर समाज को गुमराह करने की कहानपथियो की पद्धति बहुत पुरानी है और साहित्य-बहिष्कार के संदर्भ मे उस पद्धति का भरपूर उपयोग उन्होने किया है। एक घटना मुझे याद आ रही है।

जब साहुजी ने स्पष्टीकरण दिया

यह 1976 की बात है। नैनवा की घटना के बाद सोनगढ़ वालो ने रोज अफवाहो का तांता लगा रखा था। गोहाटी में शास्त्र जला रहे हैं, अमुक जगह ऐसा हो गया, अमुक जगह वैसा हो गया। उस समय पूज्य आचार्य धर्मसागरजी महाराज बड़ौत मे विराजते थे। उन्होने यह चिन्ता व्यक्त की कि यदि मूल आचार्य-प्रणीत जिनवाणी की विराधना होती है तो यह उचित नही है। उनकी चिन्ता जानकर श्रावक-शिरोमणि साहु शान्तिप्रसादजी ने ऐसी हर सूचना के बारे मे अपने स्तर पर जाच-पडताल की फिर 5-11-76 को वे बडौत मे आचार्यश्री के चरण-सान्निध्य मे उपस्थित हुए।

साहुजी ने वहा आचार्यश्री को बताया कि ये सारी खबरे निराधार हैं। कही किसी भी आचार्य-प्रणीत ग्रन्थ की अविनय नही की गयी है। मात्र कानजीस्वामी आदि के स्वतत्र प्रवचनो-ट्रैक्टो आदि को, जो श्री कुदकुद आदि आचार्यों की परम्परा के

विपरीत थे, उनको नैनवा में सम्मानपूर्वक, खण्डित मूर्ति के समान, जल मे विसर्जित किया गया है। उन्होने महाराज को यह भी बताया कि—"मैने स्वय गोहाटी के श्री अमरचन्दजी पहाडिया और अन्य कुछ लागो से बात करके मालूम कर लिया है, गोहाटी मे कुछ हुआ ही नही है। व्यर्थ ही समाज को भडकाने वाली बाते फैलाई जा रही है। यह सारा प्रचार गलत है और समाज की एकता को खण्डित करने के लिए किया जा रहा है।"

जिनवाणी की परिभाषा क्या हो

आचार्य धर्मसागर महाराज के आदेश को लेकर बहुत गलत प्रचार किये गये। इन अफवाहो और भ्रान्तियो का एक कारण यह भी रहा कि जिस साहित्य का वहिष्कार करना है उसके बारे में स्पष्ट परिभाषा देने का काम किसी ओर से नही किया गया। महासभा ने तो शायद इसलिए इसकी आवश्यकता नही समझी कि महाराज के आदेश मे स्पष्ट ही था—" इस तरह के धर्म-विरुद्ध कार्यों को करने वाले व्यक्तियो को, तथा उनके द्वारा निर्मित साहित्य को अपने मन्दिर मे जगह न देवे।" यह इतना सीधा-सरल वाक्य है कि इसकी व्याख्या करने की कोई आवश्यकता ही नही समझी गयी। प्रस्ताव का विरोध करने वालों को अवश्य इस वाक्य की पेचीदी परिभाषा करने की आवश्यकता पडी।

'एक ही रास्ता' के प्रवर्तक डॉ हुकमचन्द भारिल्ल ने आचार्यश्री के इस सरल-सीधे आदेश को लेकर समझ लिया कि उनके द्वारा जबरन बिना मागे, बिना खरीदे ही मन्दिरो मे पहुचाया गया उनका साहित्य हटा दिया जाएगा और इसी प्रकार उनके गुरुदेव की प्रवचन माला और किरणे अब जिनायतनो मे नही रह सकेगी। इससे उनका आतकित या उत्तेजित हो उठना स्वाभाविक था।

इसी अवास्तविक मनस्थिति मे डॉ. भारिल्ल ने यह कल्पना

कर डाली कि आचार्य-प्रणीत शास्त्रों की अविनय की जायगी, जिनवाणी को जल मे विसर्जित कर देंगे या ग्रन्थो को जलाया जायगा। अब तक की घटनाए तथा वास्तविक स्थितिया स्वय इस बात को सिद्ध कर रही हैं कि डॉ, भारिल्ल की कल्पनाए कितनी आधारहीन और भ्रामक थीं।

कौन-सा साहित्य हटाना है

जिस आगम-विरोधी साहित्य को मदिरो मे स्थान न देने का या उसे मदिरो से हटा देने का आदेश पूज्य आचार्य धर्मसागरजी ने दिया था उसकी सही और सक्षिप्त परिभाषा पहली बार दिगम्बर जैन महासमिति को आशीर्वाद देते समय दिल्ली मे एलाचार्य—अब आचार्यश्री विद्यानन्दजी ने की थी। नव-निर्वाचित महामंत्री श्री बाबूलालजी पाटोदी को आशीर्वाद देते समय मुनिश्री ने कहा था—

—"आचार्यो द्वारा प्रणीत मूल-ग्रन्थो से तथा प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित साहित्य से हमारा कोई विरोध नही है, परन्तु उन ग्रन्थो की टीकाओ और प्रवचन मालाओ के नाम पर, एकान्त और मिथ्यात्व का पोषण करने वाली जो पुस्तके मदिरो मे रख दी गयी हैं उन्हे दिगम्बर जैन समाज कभी बर्दाश्त नही करेगा। आपका कोई मौलिक साहित्य हमे नही चाहिए।"

मै समझता हू कि आचार्यश्री के आदेश के अभिप्राय को परिभाषित करने वाली यह एक सम्पूर्ण और सही व्याख्या थी और समाज को उसकी परिपालना करना चाहिए।

क्या आदेश को तोडा-मरोड़ा गया

आज से दो-ढाई साल पहले आचार्य धर्मसागरजी ने जब अपना आदेश दिया और मुख्यत महासभा द्वारा उसका प्रचार-प्रसार किया गया, तब से आज 1987 की समाप्ति तक उस प्रस्ताव के समर्थन और विरोध मे बहुत-सी सामग्री पत्रो मे प्रकाशित हुई है। आमतौर पर दिगम्बर जैन समाज ने उस

आदेश को हितकर मानकर मान्यता दी है और उसके सुफल सामने आने लगे है। भले ही अधिक मदिरो मे से अभी सोनगढ़ साहित्य को निकाला नही जा सका है, वह काम धीरे-धीरे हो रहा है, परन्तु सोनगढ़ साहित्य की मान्यता मे इस बीच बड़ा ह्रास हुआ है। उनके प्रवचनकारो की शाख गिरी है। और कई जगह सोनगढ पद्धति के विद्वानो का अनादर हुआ है। डॉ हुक्मचन्द भारिल्ल जैसे दिग्गज विद्वानो को जबलपुर मे बोलने नही दिया गया। एक भी शब्द बोले बिना उन्हे मदिर की गादी से नीचे उतरकर प्रस्थान करना पड़ा। टीकमगढ से एक प्रवचनकार को पर्यूषण के बीच मे ही भागना पड़ा। यह इस बात के प्रमाण हैं कि आचार्यश्री के आदेश का प्रभाव समाज पर बराबर बढ़ रहा है और धीरे-धीरे लोग वास्तविकता को समझते जा रहे है।

प्रभाव की इस आधी को रोकने के लिए सोनगढ पक्ष के योजनाकारो ने अब छल पर आधारित एक नई चाल का सहारा लिया है। अब उन्होने यह प्रचारित करना प्रारम्भ किया है कि—"महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी ने, पूर्वआचार्य श्री धर्मसागरजी के सोधेपन का लाभ उठाते हुए, उनकी भावनाओ को तोड़-मरोडकर समाज के सामने रखा था।" यह आरोप अभी-अभी, अक्टोबर 87 के सन्मति-सन्देश मे पढ़ने को मिला है। हो सकता है कुछ दिनो मे यह भी लिख दिया जाये कि "आचार्यश्री ने कोई आदेश दिया ही नही था, यह तो पूरा ही कल्पित है।" यह आशका मैं इसलिए यहा दर्ज कर रहा हू कि, राजनीति की तर्ज पर इस विरोध के लिए जब झूठ का सहारा ले ही लिया गया है तब उसकी कोई सीमा कैसे हो सकती है?

सबसे अधिक खेद और शर्म की बात यह है कि आचार्यश्री के सामने यह बात कहने का किसी का साहस नही हुआ। दो साल तक जिस प्रस्ताव पर गहन चर्चा चलती रही, किसी ने उसकी वास्तविकता को चुनौती नही दी, उसे ही पूज्य आचार्यश्री की समाधि के उपरान्त 'तोड-मरोड़ वाला' कहा जा रहा है। यह

इस बात का प्रमाण है कि सोनगढ़ पक्ष के प्रवक्ताओ का मनोबल पूरी तरह टूट चुका है और उन्हे अब अपने स्वार्थ के लिए कैसी भी झूठ का सहारा लेने मे कोई परहेज नही रह गया है। फिर भी तथ्यो को झुठलाना इतना आसान नही है। इसके लिए हमे 1985 की जुलाई की एक घटना याद करनी पडेगी।

संयुक्त विज्ञप्ति जो प्रसारित न हो सकी

हम देख चुके हैं कि 1985 के प्रारम्भिक दिनो मे सूर्यकीर्ति की आंधी बडे वेग से चल रही थी। समस्त समाज इस पाखण्ड के प्रतिकार के लिए सक्रिय हो उठा था। महासभा द्वारा आचार्यश्री का आदेश उनके चित्र सहित बहुत बडी सख्या मे छपाकर घर-घर पहुचाया जा चुका था। महासमिति, विद्वत्परिषद् और तीर्थ-क्षेत्र कमेटी जैसी सामान्य सस्थायें इस विषय मे अपनी विरोध विज्ञप्तिया प्रकाशित कर चुकी थी। उधर जयपुर से 'एक ही रास्ता' सुझाकर समाज को सघर्ष की आग मे झोकने का प्रयास प्रारम्भ किया जा चुका था। ऐसी विस्फोटक स्थिति मे महासभा के अध्यक्ष ने महासमिति के अध्यक्ष श्रीमान् साहु श्रेयासप्रसाद जी से समाज के नाम एक सयुक्त विज्ञप्ति निकालने का अनुरोध करते हुए एक मजमून उनके पास भेजा था। इस अपील में आचार्यश्री का आदेश ज्यो-का-त्यो लिखकर समाज से उसके समर्थन और क्रियान्वयन का अनुरोध किया गया था।

श्रीयुत श्रेयासप्रसादजी ने उस अपील की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उसमे जिनवाणी के बारे में थोडा स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता समझी और श्री सेठीजी द्वारा प्रस्तावित अपील के प्रारम्भ मे दो नये पैराग्रॉफ जोडकर 18 जुलाई 85 को वह प्रारूप सेठ जी के पास भेज दिया।

उस समय जो समाजिक पृष्ठभूमि प्रवर्तमान थी उसका सिहा-वलोकन हम पहले कर चुके हैं। कुछ ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाये बीच में घट चुकी थी जिनसे महासभा और महासमिति के कार्यकर्ताओ

के सम्बन्ध सहज नही रह गये थे। उस माहौल मे दोनो सस्थाओ द्वारा प्रस्तावित सयुक्त अपील के मजमून मे श्रीयुत साहुजी द्वारा जोड़ी गयी पक्तियो पर श्री सेठीजी को अपने साथियो से विचार-विमर्श करना आवश्यक लगा। परतु प्रारूप प्राप्त होने के एक सप्ताह के भीतर ही महासमिति की तिजारा बैठक मे एक ऐसा प्रस्ताव पारित कर लिया गया जिसमे कोई कसौटी लगाये बिना, कही से भी प्रकाशित सारे ही साहित्य की अवहेलना को अनुचित बताते हुए उसकी रक्षा का सकल्प लिया गया था।

तिजारा बैठक मे पारित महासमिति का यह प्रस्ताव एकागी था और सीधे-सीधे आचार्यश्री के आदेश को निष्प्रभावी करने के लिए पारित किया गया था। जैसा कि बाद मे घटित हुआ, इसी प्रस्ताव की आड लेकर श्री टोडरमल स्मारक की ओर से अपना प्रस्तावित आन्दोलन वापस ले लिया गया। वह एक अलग प्रसग है और यथास्थान हमने उस पर विचार किया है। महासभा का पक्ष यह है कि महासमिति के इस ठहराव के बाद किसी सयुक्त विज्ञप्ति का कोई मूल्य ही नही था। इसीलिए वह विज्ञप्ति फिर कभी प्रसारित नही हो सकी, वह आज भी दोनो सस्थाओ की शोभा बढ़ा रही है। विज्ञप्ति का प्रस्तावित प्रारूप और स्वीकृत प्रारूप इस प्रकार था—

॥ श्री महावीर स्वामी नम ॥

दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियो से विनम्र अपील

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मदिर ट्रस्ट, सोनगढ की ओर से स्वर्गीय श्री कानजीभाई के भावी तीर्थंकर के कल्पित रूप मे सूर्य-कीर्ति या धातकी खण्ड के भावी तीर्थंकर के नाम से मूर्ति की स्थापना को लेकर समस्त दिगम्बर जैन समाज ने अपना तीव्र विरोध प्रकट किया है। इस प्रकार की मूर्ति की स्थापना आगम विरुद्ध, परम्परा और धर्म के सिद्धान्तो के विपरीत है।

सोनगढ़ी साहित्य के प्रकाशन और प्रचार की जहा तक बात

है, इसमे भी हमारा मत स्पष्ट है। दिगम्बर आचार्य प्रणीत हमारे जिन सास्त्रो को सोनगढ वालो ने भी अपनाया है, उन शास्त्रो का अनादर नही होना चाहिये। इसके बावजूद भी यदि सोनगढ से प्रकाशित किन्ही शास्त्रो मे दिगम्बर आगमो के विपरीत कथन या प्रतिपादन हुआ हो तो ऐसे शास्त्रो को हमारे शास्त्र भण्डारो मे स्थान नही दिया जाए।

इस सन्दर्भ मे परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती स्व० आचार्य 108 श्री शान्तिसागरजी महाराज के तृतीय पट्टाधीश परमपूज्य आचार्य 108 श्री धर्मसागर जी महाराज ने दिगम्बर जैन धर्म विरोधी तथाकथित कपोल-कल्पित भावी तीर्थंकर की मूर्ति के विरोध मे मूल दिगम्बर जैन आम्नाय की रक्षा हेतु जो आदेश दिया है उसके लिए उनके प्रति हम समस्त दिगम्बर जैन समाज की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

आदेश

"सोनगढ मे स्थित श्री दिगम्बर जैन मदिर मे स्वप्न या जातिस्मरण के आधार पर कानजीभाई को भावी तीर्थंकर के रूप मे मूर्ति बनाना या स्थापन करना दिगम्बर मूल आम्नाय के विरूद्ध है। इस तरह की धर्म-विरुद्ध मूर्ति को दिगम्बर जैन तीर्थो, मदिरो, गृहचैत्यालयो मे कदापि न रखा जाए और इस तरह से धर्म विरुद्ध कार्य करने वाले व्यक्तियो तथा उनके द्वारा निर्मित साहित्य को दिगम्बर जैन मदिरों मे जगह न दी जाये।

उपरोक्त आदेश का अनेको त्यागीवृ दगणो ने एव समाज की अनेको सस्थाओ ने समर्थन किया है।

हमारा समस्त दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियो से यह विनम्र निवेदन है कि वे इस आदेश का पूर्णतया पालन करे तथा दिगम्बर

जैन समाज की जिन संस्थाओं ने इस आदेश का अभी तक समर्थन नही किया है, वे भी अविलम्ब अपना समर्थन स्पष्ट रूप से व्यक्त कर विनम्रतापूर्वक इस आदेश को क्रियान्वयन करने हेतु आगे आवे।

भवदीय,

निर्मलकुमार जैन
अध्यक्ष
श्री भारतवर्षीय दि० जैन महासभा

साहू श्रेयासप्रसाद जैन
अध्यक्ष
दिगम्बर जैन महासमिति

बम्बई दिनांक 18 जुलाई 1985

नोट—इस विज्ञप्ति के प्रथम दो पैराग्रॉफ्स श्रीमान् साहुजी द्वारा जोड़े गये थे। बाकी पूरा मैटर वैसा ही है जैसा महासभाध्यक्ष द्वारा, प्रस्तावित किया गया था।

महासभा और महासमिति की यह संयुक्त विज्ञप्ति क्यो प्रसारित नही हो सकी इसके कारणो मे जाने का कोई लाभ नहीं है। महासभा का हेतु हम ऊपर लिख चुके हैं और महासमिति ने प्रारूप संशोधन करके भेज ही दिया था। मुझे मालूम है कि श्रीयुत साहुजी बाद मे भी यह संयुक्त अपील निकालने के लिए तैयार थे। फिर भी यदि मुझे इसका कारण यहा बताना ही पड़े तो मैं कहूगा—"दिगम्बर जैन समाज का दुर्भाग्य"। मेरी समझ मे यह समाज का दुर्भाग्य ही था जिसके कारण उसकी अखिल भारतीय स्तर की दोनो संस्थाए अत्यन्त महत्त्वहीन बातो को आधार बनाकर एक-दूसरे से विमुख होती चली गयी और अत्यन्त नाजुक लम्हो मे भी, समाज को मार्ग बताने वाली यह संयुक्त अपील प्रसारित करने का वातावरण उस समय नही बन सका।

यहा हमे यह देखना है कि महासभा के प्रस्तावित प्रारूप मे, और महासमिति द्वारा संशोधित प्रारूप मे पूज्य आचार्यश्री का आदेश अक्षरश, ज्यो-का-त्यो स्वीकार किया गया है। इसका

तात्पर्य यह है कि 28 जुलाई 1985 मे घटित तिजारा अधिवेशन तक आचार्यश्री के आदेश को, जैसा महासभा द्वारा प्रसारित किया गया था वैसा ही, अक्षरश· वास्तविक माना जाता रहा है। दोनो हो सस्थाओ ने निर्विवाद रूप से उसे आचार्यश्री का आदेश स्वीकार किया है, लिखा है, और प्रसारित करके समस्त दिगम्बर जैन समाज से उसके समर्थन और क्रियान्वयन को अपील पर महासमिति भो तैयार थी।

आज दो साल के बाद, खासकर आचार्यश्री के वियोग के बाद, उनके उस आदेश को अवास्तविक या 'तोडा मरोडा आदेश' कहना हमारे मित्रो की किस मनोवृत्ति का परिचायक है इसका निर्णय आपको करना है।

शुभ परिणाम अधर्म नहीं है—

"सुह-सुद्ध-परिणामेहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो।"

—आचार्य वीरसेन, जयधवला, पृ० 6

—"शुभ और शुद्ध दोनो प्रकार के भाव कर्मक्ष्य के हेतु है। यदि ऐसा नही माना जायेगा तो कर्मों का क्षय ही नही बन सकेगा।

झूठ बराबर गुण नहीं

आन्दोलन किसने स्थापित किया,

पूज्य आचार्य धर्मसागर जी के आदेश को निष्प्रभावी करने के लिए श्री टोडरमल स्मारक के प्रवक्ता डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल ने 'एक ही रास्ता' नाम से जिस आन्दोलन का आवाहन किया उसे पूरी समाज मे प्रचारित करने का प्रयास किया। 'वीतराग-विज्ञान' के सम्पादकीय मे आन्दोलन की पूरी योजना जून-जुलाई 1985 के अको मे प्रकाशित हुई। जैन-सदेश के 20-6-85 के अक मे भी उसे प्रकाशित किया गया और पुस्तकाकार अलग से छाप-कर सर्वत्र भेजा गया।

यदि इस योजना के अनुसार आन्दोलन की शुरुआत हो पाती तो इसमे कोई सदेह नही है कि समाज मे जगह-जगह विक्षोभ और वैमनष्य के नजारे दिखाई देते। इसीलिए योजना प्रकाशित होते ही समाज के कर्णधार चिन्तित हो उठे। आन्दोलन की सफलता सदेहास्पद थी और उसके माध्यम से समाज मे सीधे-सीधे शक्ति-परीक्षण की आजमाइश का अवसर आ सकता था। टोडरमल स्मारक के कर्ता-धर्ता स्वय भी इस शक्ति-परीक्षण के लिए तैयार नही थे। उन्हे आन्दोलन की असफलता सामने दिखायी दे रही

थी। प्रस्तावित आन्दोलन का यदि थोडे शब्दो मे मूल्याकन किया जाय तो उसमे मुख्यत. तीन उद्देश्य निहित दिखाई देते थे—

1 पूज्य आचार्य धर्मसागरजी के आदेश को कार्यान्वित नही होने देना।

2. सोनगढ से और जयपुर से प्रकाशित साहित्य को मदिरो से हटाए जाने से बचाना और उसके प्रचार-प्रसार को बरकरार रखना।

3. पूरे आन्दोलन मे सूर्यकीर्ति-स्थापना के विरोध से बचते रहना। जहा तक बने उस बारे मे कुछ नही कहना।

श्री टोडरमल स्मारक और श्री कुदकुद-कहान तीर्थ-सुरक्षा ट्रस्ट के पदाधिकारियो मे से, एक या दो को छोडकर, कोई भी उस आदोलन के पक्ष मे नही था। मुमुक्षु-मण्डलो के प्रमुख कार्य-कर्ता भी इसे एक अनावश्यक और अविचारित कदम मान रहे थे। योजना इतने जोर-शोर से प्रकाशित हो जाने के बाद भी, किसी मे उसे कार्यान्वित करने की हिम्मत नही जुट पा रही थी। सब लोग किसी-न-किसी प्रकार, अपनी इज्जत बचाते हुए, इस योजना से अपना पिण्ड छुडाना चाहते थे। इन अन्तर्विरोधो को लेकर सस्था के सचालको मे जो कुछ हुआ, और जो अप्रिय स्थितिया सामने आई, यहा उनका उल्लेख करना आवश्यक नही है। हमे तो केवल यह अकित करना है कि कैसे वह योजना टोडरमल स्मारक के लिए 'गले का साप' बन गयी और उसे उतार फेकने के लिए, अपने ही लोगो के बीच मे, श्री भारिल्ल द्वारा कैसा नाटक खेला गया।

महासमिति का प्रस्ताव

इसी समय, 28 जुलाई 85 को तिजारा मे दिगम्बर जैन महासमिति का अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया—

"दिगम्बर जैन महासमिति के सदस्यो की श्री दिगम्बर जैन

अतिशयक्षेत्र तिजारा पर हुई यह सभा वीतराग तीर्थंकर देव, निर्ग्रन्थ गुरु एव प्राचीन आचार्य-प्रणीत एव उनके मार्गानुसारी विद्वानो की वाणी पर पूर्ण आस्था प्रकट करती है और उसके प्रचार-प्रसार के लिए अपने को पूर्णतया समर्पित करती है।

यह भी निर्णय हुआ कि हमारे तीर्थंकर, निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु और आचार्यों के ग्रन्थो की, एव उनके मार्गानुसारी प्रणीत विद्वानो की वाणी की अविनय एव अवहेलना करना अनुचित है और उनकी रक्षा के लिए हम पूर्णतया प्रयास करेंगे।"

तिजारा दिनाक 28 जुलाई, 1985

जैसा कि महासमिति के इस प्रस्ताव की भाषा से स्पष्ट है, इसमे न तो विवादास्पद तथा-कथित जिनवाणी की स्पष्ट परिभाषा की गयी है और न ही समाज को कोई स्पष्ट निर्देश किया गया है। प्रस्ताव में जो कहा गया है वह वैसे भी प्रायः सभी दिगम्बर जैन सस्थाओ के उद्देश्यो मे निहित रहता है। महासमिति के मूल उद्देश्यो मे भी वह सब पहले से लिखा हुआ है। इस प्रकार उन्ही बातो को प्रस्ताव मे दोहराने का कोई अर्थ नही था परतु उस अधिवेशन मे कुछ ऐसी स्थिति सामने थी कि आचार्य श्री के आदेश का समर्थन महासमिति करना नही चाहती थी, और स्पष्ट विरोध करने का शायद उसमे साहस नही था। इसलिए ऐसी शब्दावली इस प्रस्ताव मे प्रयोग की गयी जिसका प्रकरण के साथ कोई अर्थ ही नही निकाला जा सकता था। परतु टोडरमल स्मारक को महासमिति का यह प्रस्ताव, 'मझधार मे पतवार' की तरह सहायक लगा। उन्होने इसी प्रस्ताव का सहारा लेकर अपना प्रस्तावित आदोलन वापिस ले लिया।

आदोलन की वापिसी मे भी एक विचित्र पद्धति अपनायी गयी। महासमिति का उपरोक्त प्रस्ताव 28-7-85 को पारित हुआ। उसके दस दिन बाद टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के उपाध्यक्ष श्री रतनलालजी गंगवाल ने, जो सयोगत महासमिति के कार्याध्यक्ष भी हैं, 7 अगस्त 85 को एक विज्ञप्ति प्रसारित करके

डॉ० भारिल्ल द्वारा प्रस्तावित आदोलन वापस ले लिया। श्रीगगवाल की वह विज्ञप्ति उनकी सामाजिक दूरदर्शिता की उपज थी और एक सक्षम अधिकारी के नाते उस आदोलन की वापिसी की अधिकारपूर्ण घोषणा थी। उनकी विज्ञप्ति का सदर्भित अश इस प्रकार है—

—"श्री प० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा हाल ही मे प्रकाशित 'एक ही रास्ता और जिनवाणी सुरक्षा एव सामाजिक एकता' आदोलन की सक्षिप्त रूपरेखा के बाबत हमारे पास समाज के कई विचारक एव चितक बधुओ के सुझाव एव प्रतिक्रियाए प्राप्त हुई हैं।

उन सबका गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् हम यह अनुभव करते हैं कि वर्तमान परिस्थितियो मे कोई भी नया आदोलन समाज के सगठन को दृष्टि मे रखते हुए प्रारम्भ करना उचित नही होगा। अत इस आदोलन को चालू करने की घोषणा को वापस लेते हुए हम समाज के सभी धार्मिक बधुओ तथा जिनवाणी भक्तो से यह सानुरोध अपील करते है कि "जिनवाणी सुरक्षा एव सामाजिक एकता आदोलन' की कार्यवाही स्थगित कर दी गयी है।"

आदोलन वापस लेने की यह विज्ञप्ति टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के उपाध्यक्ष द्वारा की गयी साधिकारिक घोषणा थी और श्रीरतनलाल गगवाल की सामाजिक दूरदर्शिता का प्रमाण थी। इस घोशणा को सीधे-साधे प्रसारित करके समाज को आदोलन वापिसी की सूचना दी जानी चाहिए थी। परतु आदोलन के शिल्पी डॉ० हुकमचद भारिल्ल को ऐसे सीधे रास्ते चलना कुछ कम ही पसद आता है। शायद उन्हे इस घोषणा के द्वारा आदोलन वापिस लेने मे अपनी पराजय और हेठी दिखाई देती थी। इसलिए उन्होने इस बडे नाटक के भीतर, पटाक्षेप करने के पहले एक प्रहसन और जोड लिया।

डॉ० भारिल्ल ने अपने पाठको को यह बताने का प्रयास

किया कि जैसे महासमिति का तिजारा का प्रस्ताव उनसे परामर्श करके और केवल उनके लिए ही पारित किया गया है, अत उस प्रस्ताव से निश्चिन्त होकर अब वे स्वयं अपना आंदोलन वापिस लेने का प्रस्ताव करते हैं। इस संबंध में डॉ० भारिल्ल की जो प्रामक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी उसे हम ज्यों का त्यों यहा उद्धृत कर रहे हैं—

—"हमें यह बताते हुए भी प्रसन्नता है कि दि० जैन महासमिति ने हमारी भावनाओं को गहराई से अनुभव किया और इस बात पर किंचित रोष भी व्यक्त किया कि जब महासमिति इस कार्य के लिए पहले से ही कृत-संकल्प है तो हम यह अलग अभियान क्यों आरंभ कर रहे हैं ? महासमिति की इस सजगता के प्रति हम उनके हृदय से आभारी हैं। महासमिति की सतर्कता एव वर्तमान शान्त स्थिति को देखते हुए सचालन समिति यह अनुभव करती है कि अभी इस अभियान को स्थगित कर दिया जाय।

अत. आज दि० 24-8-85 को टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में 'श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता स्मृति-समारोह' के अवसर पर आयोजित प्रवचनकार-सम्मेलन में सचालन समिति आंदोलन को स्थगित करने का प्रस्ताव करती है तथा दि० जैन महासमिति के तिजारा अधिवेशन में पारित किए गए तत्संबंधी प्रस्ताव एव भावना को हार्दिक समर्थन देते हुए इस कार्य में अपने संपूर्ण सहयोग का आश्वासन भी देती है।"

वीतराग-विज्ञान, सितम्बर 85, पृष्ठ 32

राजनीति का कवच

हमने पहले जैन-सदेश के एक सम्पादकीय का उद्धरण दिया है जिसका शीर्षक था 'राजनीति को धर्मनीति पर चढा रहे हैं।' उपरोक्त आंदोलन की वापिसी के नाटकीय तथ्यों का अवलोकन करने पर, जैन-सदेश के विद्वान सम्पादक की वह टिप्पणी, जैसी

सोनगढ के लिए सार्थक थी, वैसी ही जयपुर के लिए भी सार्थक उतरती है। अपने ही लोगो के साथ मायाचारी करने का, डॉ० भारिल्ल की प्रवृत्ति का यह एक स्पष्ट उदाहरण है। सस्था के उपाध्यक्ष 7 अगस्त को अधिकारपूर्वक आदोलन की वापिसी की घोषणा करते है जबकि उसी सस्था मे कार्यरत डॉ० भारिल्ल तीन सप्ताह के बाद नया प्रस्ताव करके उसी मृत आदोलन को पुनः वापस लेने का ढोग करते है। आश्चर्य की बात यह है कि इस घोषणा मे श्रीगगवाल की विज्ञप्ति का कोई उल्लेख तक नहीं है।

हम समझते हैं कि योजना प्रारम्भ करते समय डॉ० भारिल्ल ने यह उदाहरण प्रस्तुत किया था कि कैसे मनगढत और एकागी तथ्य सामने रखकर अपने ही लोगो को समाज विरोधी कार्यों के लिए उकसाया जा सकता है-फिर जब आदोलन स्थगित हुआ तब उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि अपने मिथ्यादभ की रक्षा के लिए वे अपने ही लोगो को किस प्रकार अधेरे मे रख सकते है और कितनी गलत सूचनाए देकर उन्हे दिग्भ्रमित कर सकते है।

हम पहले कह चुके है कि इस पुस्तक मे अपनी ओर से हमे कुछ अधिक नही कहना है। तथ्य ही बोलते चलेगे। यहा हम पुनः दो तथ्य आपकी दृष्टि मे लाना चाहते हैं। पहला यह कि डॉ० भारिल्ल का लखन, सोनगढ के प्रकाशनो को छोडकर, समाज के अन्य पत्रो मे प्राय कभी नही छपा। जैन-सदेश के तो पूरे जीवन भर, जब तक उसकी बागडोर श्रीमान् पण्डित कैलाशचद जी शास्त्री, पडित जगन्मोहनलाल जी शास्त्री और प्रो० खुशालचद्र गोरावाला जैसे मनीषियो के हाथ मे रही, तब तक कभी डॉ० भारिल्ल की एक पक्ति भी जैन-सदेश के पन्नो पर प्रकाशित नहीं हो पाई। अब जैन-सदेश की बागडोर दूसरे लोगो के हाथ मे जाते ही यह चमत्कार घटित हो गया कि उसमे भारिल्लजी के न सिर्फ पूर्व-प्रकाशित लेख छपने लगे बल्कि

'एक ही रास्ता' जैसा समाज विरोधी और अलगाववादी आलेख भी प्रकाशित हुआ।

दूसरा तथ्य जो यहां आपको दृष्टि में लाना है, वह यह है कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासमिति दस-ग्यारह सालों से समाज में सक्रिय है। उसने अब तक अपने अधिवेशनों में सौ से अधिक प्रस्ताव पारित किये हैं, परन्तु महासमिति की गतिविधियों का टोडरमल स्मारक ने या डॉ० भारिल्ल ने, कभी समर्थन नहीं किया। यहां तक कि जब महासमिति ने सूर्यकीर्ति के विरोध में प्रस्ताव पारित किया और उसके अध्यक्ष साहू श्रेयांसप्रसादजी ने इस बारे में विज्ञप्ति प्रसारित की, तब भी वीतराग-विज्ञान में महासमिति के वे प्रस्ताव और विज्ञप्तियां स्थान नहीं पा सकी। परन्तु निजारा का प्रस्ताव पारित होते ही महासमिति डॉ० भारिल्ल को अत्यंत प्रिय लगने लगी। यदि उनके माया-मण्डित वक्तव्य को सही मानें तो मानना होगा कि उन्होंने अपना आंदोलन महासमिति के बलबूते पर ही वापस लिया है।

एक घटना यहां हमें और याद आ रही है। हस्तिनापुर में 3-2-85 को महासमिति का अधिवेशन हुआ। महासमिति ने सूर्यकीर्ति के विरोध का पहला प्रस्ताव उसी अधिवेशन में पारित किया। उसी समय साहू श्रेयांसप्रसादजी के द्वारा डॉ० भारिल्ल की 'बारह भावना' के कैसिट्स का विमोचन भी हुआ था। वीतराग-विज्ञान के मार्च85 के अंक में कैसिट्स के विमोचन का समाचार तो प्रकाशित हुआ, परंतु उन्हीं साहुजी की अध्यक्षता में, उसी मंच पर पारित, सूर्यकीर्ति के विरोध के प्रस्ताव की चर्चा तक नहीं की गई। ये दो तथ्य सोनगढ पंथ की कार्य पद्धति के बारे में जैन-संदेश की उस सम्पादकीय टिप्पणी की पुनः पुष्टि करते है कि वे लोग बडी कुशलता के साथ 'राजनीति 'को धर्म-नीति पर चढ़ा रहे है।'

कैसा है आपका धर्म ?

इसे दिनो का फेर कहे या समय की महिमा कहे परन्तु कुछ ऐसा सयोग बनता रहा है कि जब से श्रीकानजी की छाया सिर से उठी है, तब से सोनगढ़ पंथ की एक पर एक परते उधड़ती चली जा रही हैं और उसका असली रूप सामने आ रहा है।

वास्तव मे सोनगढ के ताश के महल को पहला धक्का तो श्रीकहानजी के दयनीय मरण से ही लग गया था। 'धन्य अवतार' के प्रकाशन ने उसे दूसरा आघात दिया और फिर सूर्यकीर्ति की स्थापना का हठाग्रह उस कल्पित-पथ की सारी पोल खोल गया। पथ का सारा सगठन तीन-तेरह होकर बिखरता और बटता गया। इस बीच उनके आपसी कलह के कई नजारे समाज के सामने आये और यह बात उजागर हो गयी कि हमारे महान् आचार्य भगवन्तो के नाम का सहारा लेकर वहा व्यक्ति-पूजा का एक अनोखा समारम्भ किया जा रहा था।

जयपुर के टोडरमल स्मारक ने इस सक्रान्तिकाल मे बात को सम्हालने के अनेक प्रयास किये और कई बार ऐसा लगा कि कुछ लोग निश्छल भाव से वीतराग पथ की ओर यात्रा करना चाहते हैं। परन्तु इधर जो आख खोलने वाले तथ्य हमारे सामने आये हैं

उनसे यह स्पष्ट होता है कि वह मात्र एक छलना थी। आज जो वास्तविकता सामने आयी है वह यह है कि वीतराग दिगम्बर जैन धर्म को जैसा श्रीकहानजी ने प्रतिपादित किया है, मात्र वैसा ही प्रचारित करना टोडरमल स्मारक का लक्ष्य है। उनके उद्देश्यो मे या ट्रस्टडीड मे, भगवान महावीर, आचार्य कुदकुद अथवा अन्य किन्ही भी आचार्यो का कही नाम भी नही लिया गया। बडे स्पष्ट शब्दो मे उस ट्रस्टडीड मे यह परिभाषा अकित है कि 'जैन धर्म' वैसा ही है जैसा श्रीकहानजी ने प्रतिपादित किया है।

स्वयभू सम्पादक की खोखली चुनौती

इधर कुछ समय से जैन-सन्देश के सम्पादक मण्डल मे एक नाम जाता है श्री रतनलालजी कटारिया का। उनकी अपनी लेखन पद्धति है और उनके पास सबसे बडी सुविधा यह है कि उन्हे जो कुछ भी लिखना होता है उसे वे किसी अज्ञात आदमी के सन्दर्भ मे लिख देते है। 'एक आदमी वहा मिला, उसने ऐसा कहा' बस इसी प्रकार उनके आख्यान प्रारम्भ होते है और इस बहाने अपने आलेख मे कुछ भी लिख मारने का उन्हें सुभीता मिल जाता है। अभी उनकी एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित हुई है जिसका नाम है 'वीतराग पथ अमर रहे।'

इस पुस्तक का आलेख पूर्व मे जैन-सन्देश मे प्रकाशित हो चुका है। इसके पाचवे पृष्ठ पर एक घटना अकित है जिसे हम यहा उद्दृत करके फिर उसकी समीक्षा करेगे और यह बताना चाहेगे कि पथ-व्यामोह के वशीभूत कुछ तथाकथित विद्वान् शब्दों के व्यूह मे बाधकर कितना बड़ा झूठ अपनी लेखनी से समाज को पिलाना चाहते है। वह उद्धरण इस प्रकार है—

—"गत मगसर मे मारोठ बारात मे गया था। वापस आते वक्त लूणवां ठहरे तो एक सेठ साहब मिले। मुझसे बोले कि— "आपने सोनगढ या टोडरमल स्मारक को ट्रस्टडीड पढ़ा है या

नही ? उसका उद्देश्य दिगम्बर जैन धर्म विरोध और श्वेताम्बर धर्म का पोषण है। कानजीस्वामी कभी दिगम्बर धर्मानुयायी नहीं थे।"

—"जब मैंने सेठ साहब के कथन को गलत बताते हुए कहा कि—"ट्रस्टडीड में ऐसा कही नही लिखा है।" तो उन्होने ट्रस्ट-डीड लाकर बताने को कही, किन्तु कहकर भी वे लाये नही। लाते तो सच-झूठ का फैसला हो जाता। पर ऐसा इन्हे कहा इष्ट है ? इन लोगो का तो उद्देश्य है—किसी भी तरह स्वामीजी को जनता की नजरो मे गिराना। उस युग-पुरुष ने गुजरात मे जितना दिगम्बर धर्म का उत्कर्ष किया उतना आज तक के अनेक मुनि-सघो ने भी नही किया। कृतज्ञता-ज्ञापन तो दूर, उल्टा उस महा-पुरुष के विरुद्ध हवा बाधना, यह हमारे अविवेक का ही सूचक है। उक्त ट्रस्टडीड का उद्देश्य भी नीचे अकित करता हूं ताकि वास्तविकता से लोग परिचित हो सके। सोनगढ ट्रस्टडीड के प्रारम्भ मे लिखा है—"श्री दिगम्र जैन धर्म की आम्नाय अनुसार भगवत् कुदकुद आचार्यादि प्रणीत सत्य उपदेश, जो पूज्य सद्-गुरुदेव कानजीस्वामी दे रहे हैं, उस धर्मोपदेश का प्रचार-प्रसार करना-कराना एव तदन्तर्गत योग्य कार्य करना।"

इस बारे मे ध्यान देने की बात है कि आक्षेप करने वाले सेठ साहब ने सोनगढ और टोडरमल स्मारक के ट्रस्टडीड की बात कही थी, परन्तु सफाई देते समय श्री कटारियाजी ने सोनगढ के ट्रस्टडीड का उद्धरण देकर उन्हे झूठा ठहरा दिया है। टोडरमल स्मारक के ट्रस्टडीड की बात ही उन्होने अपनी सफाई देते समय सफाई से गोल कर दी है।

श्रीकहानजी का नया सम्प्रदाय

मैं यह कहना चाहता हू कि कटारियाजी की यह सफाई एक-दम खोखली और वास्तविकता को छिपाकर उस पर लीपापोती करने वाली है। टोडरमल स्मारक के ट्रस्टडीड मे ट्रस्ट का जो

उद्देश्य लिखा गया है वह समूची दिगम्बर जैन समाज की आंख खोल देने के लिए पर्याप्त है। उसमे किसी आचार्य का अथवा किसी परम्परा का नाम नही है। इसके विपरीत बड़े स्पष्ट शब्दो मे केवल उसी धर्म को दिगम्बर जैन धर्म माना गया है जिसका प्रतिपादन श्रीकहानजी ने किया है। मात्र उसी का प्रचार-प्रसार उनका उद्देश्य है और मात्र उसी प्रतिपादन पर आस्था रखने वाले को उनके मन्दिर मे प्रवेश का पात्र माना गया है। पूरे ट्रस्टडीड मे कही भी भगवान् महावीर, या कुन्दकुन्दाचार्य या अन्य किसी आचार्य का नाम तक नही है। डीड की सदर्भित धाराओ के विचारणीय अश इस प्रकार हैं—

ट्रस्टडीड की धारायें

5 Object of the Trust shall be.

To propagate "The tenets of vitrag Digamber Jain Religion as propounded by Parampujya Sadgurudev Shri Kanjiswamy" (hereinafter referred to as "Digamber Jain Religion" for the sake of bravity but it shall always mean religion as propounded by Parampujya Sadgurudev Shri Kanjiswamy) in general and to carry out any activity in any manner for the purpose

28 Right of worship:

"Every person who is following the tenets of the Digamber Jain Religion as propounded by Parmpujya Sadgurudev ShriKanjiswamy shall be at liberty to attend and to worship in the tample at such time or times of the day as may be prescribed by the trustees"

टोडरमल स्मारक की उपरोक्त दोनो धाराओ का वैधानिक हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

ट्रस्ट के उद्देश्य

धारा—5 ट्रस्ट के निम्नांकित उद्देश्य होगे—

1 वीतराग दिगम्बर जैन धर्म के सिद्धान्तो को, जैसा परम पूज्य सद्गुरुदेव श्रीकानजीस्वामी द्वारा प्रतिपादित है वैसा ही, प्रचारित करना एव तदन्तर्गत अन्य योग्य कार्य करना। (संक्षेप मे आगे इसे 'दिगम्बर जैन धर्म कहा जायेगा, परन्तु सदैव इसका तात्पर्य परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रतिपादित धर्म से ही होगा।")

पूजन का अधिकार

धारा—28, वह हर व्यक्ति जो दिगम्बर जैन धर्म को, जैसा परमपूज्य श्रीकानजीस्वामी द्वारा प्रतिपादित किया गया है वैसा ही, स्वीकार करता है, ट्रस्टियो द्वारा निर्धारित समय या अवसरो पर इस मन्दिर मे प्रवेश करने और पूजादि करने का अधिकारी होगा।

इन दो धाराओ में टोडरमल स्मारक के सयोजको की भावना बहुत स्पष्ट रूप से दर्ज है। उनके उद्देश्य अत्यन्त स्पष्ट तथा साफ हैं। उनके लिए दिगम्बर जैन धर्म वही, और उतना ही है; जो जितना, और जैसा, श्रीकहानजी ने प्रतिपादित किया है। वीर मुखारविन्द ते निकली जिनवाणी, जहा तक उनके अनुकूल होगी वहा तक वह उनके अपने दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार के साधन के रूप मे छापी और पढी जायेगी, परन्तु जहां वह श्रीकहानजी के प्रतिपादन से मेल नही खाती होगी वहा उस परम्परा से या उस जिनवाणी से उन्हे कोई सरोकार नहीं होगा।

यदि सोनगढ़ के डीड मे—"श्री दिगम्बर जैन धम का आम्नाय के अनुसार भगवत् कुंदकुंद आचार्यादि प्रणीत तत्त्व उपदेश" यह वाक्य सचमुच लिखा है तो पाठको को बताने की आवश्यकता नही कि जयपुर के डीड की मशा सोनगढ के डीड से ठीक विपरीत और बहुत सकुचित है। यदि अपने स्तुति-गान मे श्री कटारियाजी जयपुर के डीड के सदर्भित अशो का भो समावेश कर लेते तो आक्षेप का पूरा निराकरण हो जाता और सचमुच वही सच-झूठ का फैसला हो जाता। पर उन्होने ऐसा नही किया।

सोनगढ़ का ट्रस्टडीड यह आलेख लिखते समय मेरे समक्ष नही है इसलिए मैं उस पेराग्रॉफ की समीक्षा नही कर पा रहा हू जो कटारियाजी ने अपने आलेख मे उद्धृत किया है, परन्तु मुझ ऐसा लगता है कि अपने सहज-स्वभाव के कारण कटारियाजी ने उसमे कोई कलाकारी कर ली हो तो आश्चर्य की बात नही होगी। इसलिए मैं श्री कटारियाजी से तथा सोनगढ पथ क अन्य प्रवक्ताओ से निवेदन करता हू कि वे साहस करके सोनगढ ट्रस्ट-डीड की सही और सम्पूर्ण शब्दावली प्रकाशित करे ताकि समाज को वास्तविकता का ज्ञान हो सके। मूल डीड जिस भाषा मे हो उसे हिन्दी अनुवाद सहित सामने लाना चाहिये।

कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल

जब तक अन्यथा साबित नही होता तब तक मै यह स्वीकार करक चलता हू कि सोनगढ के डोड मे वही लिखा होगा जो श्री कटारियाजी न प्रकाशित किया है। परन्तु ऐसा मान लेने पर अनायास कुछ प्रश्न उठते है जिन्हे मै समाधान की आकाक्षा से यहा अकित करता हू। वे प्रश्न इस प्रकार है—

1. यदि सोनगढ के डीड मे परम्परा आचार्यो का उल्लेख है तो बाद मे गठित जयपुर के डीड मे उन नामो को निकालने का अभिप्राय क्या था ?

2 कल्पित सेठ साहब के मनगढत आक्षप का अपने आलेख मे कुटिल समाधान करते समय दोनो इबारतो की भिन्नता श्री कटारियाजी को ज्ञात नही थी गा उन्होने अभिप्राय पूर्वक उसे छिपाने का यत्न किया है ?

3 जब श्रीकहानजी द्वारा प्रतिपादित धर्म को स्वीकार नही करने वाले दिगम्बर जैन व्यक्ति को कहान पथ के मन्दिर मे प्रवेश का भी अधिकार नही है तब सोनगढ पथ के अनुयायो बन्धुओ को क्या नैतिक अधिकार है कि उनके प्रकाशित ग्रन्थ परम्परावादी जिन मन्दिरो मे विराजमान किये जाये और उनके विद्वानो को पारम्परिक गद्दियो पर बैठकर प्रवचन करने का अवसर दिया जाये ?

ये प्रश्न मात्र मेरे मन मे उठे हो ऐसा नही है । आज दिगम्बर जन समाज का पूरा प्रबुद्ध समुदाय, स्पष्ट रूप से यह जानना चाहता है कि श्रीकहानजी के अनुयायियो की आस्था आगम प्रणीत देव-शास्त्र-गुरु के प्रति है या उनके अपने देव-शास्त्र-गुरु अलग है ? क्या इन प्रश्नो को कोई उत्तर मिलेगा ?

अब तो आंखे खुलनी चाहिये

श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर के ट्रस्टडोड की उपरोक्त धारा (5) और धारा (28) पढ लेने पर कोई सन्देह शेष नही रह जाता कि भले ही बातो का मुलम्मा चढाकर तर्कों के ताम-झाम मे वास्तविकता को छिपाने को कितनी ही कोशिश की जाय परन्तु सोनगढ-पथियो की आस्था शायद सिर्फ तत्व पर है, हमारे देव-शास्त्र-गुरु से उन्हे कोई मतलब नही है। यह ठाक भी है क्योकि दर्शन और ज्ञान को साधना मे गुरु के मार्ग-दर्शन का बड़ा महत्त्व होता है । जिन्हे कोई गुरु मिला हो न हो, गुरु के नाम पर एक विमोहित और वचित व्यक्ति के परामर्श के सहारे जिनकी आस्था की बेल टिकी हो, उन्हे आर्ष-मार्ग मिल ही कंसे सकता

है ? श्री कहानजी का कोई गुरु था ही नही । अब उनके प्रस्थान के पश्चात उनके अनुयायी भी निगुरे हो गये हैं क्योकि मुनियो को वे मानते नही, और आचार्यों की परम्परा के प्रति उनकी कोई भक्ति है नही। देव के नाम पर सूर्यकीर्ति का समोशरण मिल गया है, और शास्त्र अपने लिए उन्होने रच ही लिए हैं। हो गये न देव-शास्त्र-गुरु।

हमारी प्राचीन परम्परा मे देव-शास्त्र-गुरु को सम्यग्दर्शन-सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का तात्कालिक उपादेय निमित्त माना गया है। मोक्षमार्ग मे इसी प्रकार उपादेयता कही गयी है। परन्तु हमारे मित्रो के लिए देव तो नकल करके नकली देव के निर्माण में साधक हुआ है। शास्त्र मात्र एकान्त-पोषण के काम आ रहा है और गुरु का स्मरण वे केवल निन्दा करने के लिए, निराधार आलोचना के लिए और झूठी बदनामिया करने के लिए करते आये हैं। इस अलगाववादी विचारधारा ने समूचे दिगम्बर जैन समाज को क्षुब्ध और विश्रृंखलित कर दिया है। आज सूर्य-कीर्ति से लेकर 'एक ही रास्ता' तक सारे उपद्रव उसी एकागी विचारधारा के कुफल है। क्या अब भी हमारी आखे नही खुलेगी।

क्या मिला है समाज को ?

सोनगढ-पथ के प्रारभ 'से लेकर अब तक के, लगभग आधी शताब्दी के इतिहास पर यदि विचार किया जाय, उसकी उपलब्धियो का यदि तटस्थ मूल्याकन किया जाय तो सहज ही यह निष्कर्ष निकलेगा कि उसके द्वारा कुल मिलाकर दिगम्बर जैन समाज का उपकार नही, अपकार ही हुआ है। जिन हजारो श्वेताम्बरो द्वारा दिगम्बर धर्म स्वीकार किए जाने का वर्षों तक हर्ष मनाया गया, उन्होने पॉच ही वर्ष के भीतर, स्वय अपनी करनी से, यह सिद्ध कर दिया है कि उनके द्वारा दिगम्बरत्व पग-पग पर लाछित ही होने जा रहा है। उनकी जन्मजात धारणाएं जरा भी दुर्बल नही हुई हैं और दिगम्बर के प्रति उनके मन में कोई आस्था, कोई आदर नही है ।

सूर्यकीर्ति की स्थापना का निषेध करने के लिए सोनगढ गये प्रतिनिधिमण्डल से वहा के जिस प्रवक्ता ने यह कहा कि—"हमने दिगम्बरो से केवल तत्त्व ग्रहण किया है, दिगम्बरत्व से हमे कोई सरोकार नही है।" उसने अनजाने एक ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन कर दिया था। बाद मे भले ही श्री भारिल्ल ने यह कहकर उस कथन पर लीपापोती का प्रयास किया हो कि, "वह व्यक्ति

मूलत. अजैन है और उसका परिवार आज भी अजैन है।" परतु यह भारिल्लीजी का एक हास्यास्पद प्रयास है। वस्तुत तो उस अजैन भाई की 'बेसिर पैर की' बातो मे सोनगढ की सम्पूर्ण सरचना के भीतर छिपा हुआ एक आर्य-सत्य ही सहसा उस दिन प्रगट हो गया था।

गाव-गाव, और घर-घर मे स्वाध्याय का प्रचलन होने का जो गर्व जागृत हुआ था उस पर समाज अधिक दिनो तक अपने आप को गौरवान्वित महसूस नही कर पाया। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि स्वाध्याय की वह परिपाटी विवक्षा-विहीन और एकान्त-मूलक होने के कारण समाज मे नया सन्निपात उत्पन्न कर रही है। व्यवहार को सर्वथा त्याज्य और ससार-परिभ्रमण का कारण बताए जाने से व्यवहार-धर्म का प्राय लोप होता जा रहा है। लोगो ने धारण किये हुए व्रत और नियम छोड दिए है। मुनियो और त्यागियो की उपेक्षा और अविनय अपनी चरम सीमा पर पहुच रही है और पूजा, प्रभावना आदि को भी धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है।

प्रवचन और प्रवचनकार

शायद पठन-पाठन का ही यह फल भी हुआ कि समाज मे जहा पचास प्रवचनकार विद्वान् भी दिखाई नहा देते थे, वहा दो-ढाई सौ प्रवचनकारो की सूचिया पत्रो मे छपने लगी और गाव-गाव में, बुलाए या बिन बुलाए, ऐसे प्रवचनकार समय-समय पर पहुचने लगे। तीन सप्ताहो के शिविरो से बटोरी हुई विद्वता के बल पर, दो किताबे हाथ मे लिए, ये अपरिपक्व और हठाग्रही तथा-कथित प्रचवनकार अपने साथ आगम का कितना ज्ञान लेकर जाते हैं, और भोली समाज के सामन कसे अनर्गल परामर्श परोसते है, यह बात अब किसी से छिपी नही रह गई है।

जिनवाणी की गादी पर बैठकर जिनवाणी का मखौल

उड़ाना, चारित्र का अवमूल्यन करके कहना, गर्हित वचनो का प्रयोग करना, और आश्रव-बध का भय दिखाकर लोगो को पूजा-आरती जेसे आवश्यको से विमुख करना, तथा अपने पथ के लिए पुस्तक विक्रेता और कैसिट्स-सप्लायर का कार्य करना इन प्रवचनकारो का एकमात्र अभिप्राय रह गया है। जिनवाणी व्यापार की जिस बन गई है और उसके साथ गादी पर बठकर 'घटाया हुआ मूल्य', 'भारी कमीशन' या 'छूट' के प्रलोभनो का विज्ञापन कराकर 'प्रवचनकार' शब्द की गरिमा गिराई जा रही है।

निगुरो का नया सम्प्रदाय

इस एकागी समझ का ही परिणाम है कि साधना के पथ बदल गए है। कोई अभिषेक मे मिथ्यात्व देख रहा है, कोई अष्ट-द्रव्य से पूजा करने मे हिसा का बाहुल्य पा रहा है। देव-शास्त्र और गुरु, साधना के तीन निमित्तो मे से देव की आस्था श्रीकहान जी की भावी पर्याय के साथ जुड गई और गुरु कोई रहा ही नही। केवल शास्त्र रह गया सो उसकी किसी भी गाथा या पैराग्राफ का कैसा भी अर्थ करने की सुविधा सबको उपलब्ध है। कोन किसे रोकनेवाला है ? श्रीकहानजी का कोई गुरु था नही, और उनके मरणोपरात आपका कोइ गुरु रहा नही। तब निगुरो का सम्प्रदाय जैसा चलना चाहिये, वेसा ही सब चल रहा है, चलेगा।

पचपरमेष्ठी, जो सदा वदनीय रहे है, उनमे से साधु, उपाध्याय और आचार्य तो इसलिए निष्काषित हो गए कि वे सरागी, शुभ-उपयोग वाले जीव हैं। अर्हन्त भगवान् इसलिए उपेक्षित हो गए कि वे भी 'अशुद्ध-द्रव्य' है। अब केवल सिद्ध भगवान् रहे, सो उनके अभिषेक-पूजन-प्रक्षाल का कोई प्रश्न हो नही उठता। यही कारण है कि परस्पर अभिवादन मे से 'जुहार"

'जयवीर' और 'जय-जिनेन्द्र' निकाल दिये गये हैं। उनकी जगह 'शुद्धात्म वन्दन' और 'शुद्धात्म-सत्कार' जैसे नये सम्बोधन गढ लिये गये है। पांचो परमेष्ठियों को नमस्कार करने वाला महा-मन्त्र णमोकार भी इसी कारण कट-पिट-कर मात्र 'णमो-सिद्धाणम्' ही शेष रह गया है। आचार्यों की परम्परा स्वीकार न करना पडे इसलिए भगवान् महावीर को एक तरफ रखकर, अपने विशेष अभिप्राय की पूर्ति के लिए, सीमधरस्वामी का सहारा लिया गया है। इसीलिए 'वीर निर्वाण सवत्' का तिरस्कार करके अब उसकी जगह कहान सवत लिखना प्रारम्भ किया गया है और महावीर जयंती की तरह बैशाख शक्ला दूज के दिन कहान-जयती मनाना प्रारम्भ कर दिया गया है। प्रवचन मे से करणानुयोग पहले से ही तिरष्कृत है क्योकि वह बध-भोग की कथा है। पर्यूषण मे भी सोनगढ-पद्धति के कोई प्रवचनकार 'तत्वार्त-सूत्र' की वाचना नही करते।

कुल मिलाकर श्री कहानजी की विचारधारा के कारण, जैसा श्री युगलकिशोर मुख्त्यार ने तीस-पैतीस साल पूर्व अनुमान किया था, जैन समाज मे एक चौथा सम्प्रदाय अस्तित्व मे आ गया है। इनके द्वारा बडी मात्रा मे साहित्य प्रकाशित और प्रचारित हो रहा है, यह बात भी हमारे लिए अधिक समय तक प्रसन्नता की बात बनकर नही रह सकी। कारण वही है कि मान कषाय के वशीभूत अपनी एकागी विचार धारा टीकाओ और प्रवचनो के रूप मे प्रकाशित करके, उसे घर-घर तक पहुचाने का प्रयास किया जा रहा है। यह वही जहरीली, मिथ्यात्व पोषक व्याख्याए है जिन्हे स्व० पडित महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने 'कालकूट-दृष्टि-विष' कहा था। नव-प्रकाशित साहित्य मे से इस दृष्टि-विष को निकालना, या पहचानना भी, सहज सभव नहीं था, इसोलिए समूचे सोनगढ-साहित्य का बहिष्कार उस विष से

बचने-बचाने का एकमात्र मार्ग रह गया था। समाज अब वही मार्ग अपना रही है।

समाज का सक्लेश समझना चाहिये,

यह भी समझा जाना चाहिये कि आपने जिस प्रकार धर्म पर राजनीति का मुलम्मा चढाकर छल-कपट, कानून और पुलिस का सहारा अपनी लक्ष्यपूर्ति के लिए लेना प्रारम्भ कर दिया है, उससे किस प्रकार की नई परेशानिया सामने आ रही है। आपकी घुस-पैठ मार्का योजनाए किस प्रकार समाज मे आपस मे कडवाहट घोल रही है और पूरी समाज के लिए कैसे सकलेश का वातावरण निर्मित हो रहा है। इसके दो ताजे उदाहरण हमारे सामने है।

जबलपुर मे दो साल पहले समाज ने बहुमत से यह प्रस्ताव कर लिया था कि सोनगढ पद्धति का कोई प्रवचन मदिरो मे नही होने दिया जायेगा। इस साल पर्युषण पर्व के बाद स्वय श्री भारिल्लजी, समाज के निमत्रण के बिना ही, वहा पहुच गये। जब उन्हे जवाहरगज मदिर मे प्रवचन नही करने दिया गया, तब उनके सयोजको ने बोर्डिंग के मदिर मे प्रयास किया। वहा भी मना हो जाने पर एक सार्वजनिक हॉल मे उनका व्याख्यान रखा गया। परन्तु शाम को बोर्डिंग के मदिर मे, लगभग जबरदस्ती इतजाम कराया जाने लगा। अध्यक्षता के लिए उच्च न्यायालय के एक माननोय न्यायाधीश को आमन्त्रित कर दिया और अशान्ति की आशका लिखकर पुलिस बुलवा ली। यह सब महज इसलिये कि किसी प्रकार एक प्रवचन मदिर मे हो जाये तो समाज के ठहराव के विरूद्ध एक नजीर बन सके।

जबलपुर की समाज सुसगठित और विवेकवान समाज है। उसने आपकी इस घुसपैठ को असफल करने का सकल्प किया और वैसा करके बता दिया। आपका सारा ताम-झाम न्यायाधिपति और पुलिस इसमे आपकी कोई सहायता नही कर सके।

आपने भले ही अपनी लेखनी से 'वीतराग-विज्ञान' मे लिख दिया है कि—"दस-बीस गुमराह युवको के उत्तेजित व्यवहार के कारण जबलपुर मे आपका प्रवचन नही हो सका।" परन्तु आप स्वय जानते है कि वास्तविकता क्या थी। आपने उस नगर की आस्थावान समाज को दस-बीस गुमराह युवको द्वारा सचालित समाज माना है, यह आपका अपना मूल्यांकन है, परन्तु एक बात तो आप भी मानेंगे कि ऐसा सम्मान अन्यत्र कहीं आपको प्राप्त नहीं हुआ न, जैसा उस दिन जबलपुर में आपने पाया।

इससे मिलती-जुलती एक घटना पर्व के बीच टीकमगढ मे हुई है। उस समय श्रीक्षेत्र थूबौन मे परमपूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी अस्वस्थ थे। उनकी स्वास्थ्य कामना के लिए सर्वत्र लोग महामन्त्र की मालाये फेर रहे थे और अखण्ड पाठ कर रहे थे। आपके प्रवचनकार श्री झाँझरीजी ने कह दिया—"इन उपायों से महाराज का रोग दूर होगा, यह मान्यता मिथ्यात्व है। विद्यासागरजी को अस्पताल मे इलाज कराना चाहिए।" उनके इस परामर्श पर समाज ने उनका जो अभिनन्दन (?) किया और पर्व के बीच मे ही जिस गति से उन्हे घर की ओर भागना पडा वह अखबारो मे आ चुका है। ये अप्रिय प्रसग अब हर जगह होगे, क्योकि समाज आपकी कार्य-पद्धति को पहिचान चुकी है।

प्रश्न यह है कि शान्ति-प्रिय दिगम्बर जैन समाज मे अशान्ति और सक्लेश का वातावरण बनाने का यह गर्हित काम आप क्यो कर रहे है? कब तक करते रहेगे?

समाज टूट रहा है

यदि इस विचारधारा की उपलब्धियो को सामाजिक सगठन और पारिवारिक एकता की कसौटी पर कसा जाय तो और भी भयकर तथ्य सामने आते है। बड़े शहरो से लगाकर छोटे-छोटे ग्रामो तक निश्चय व्यवहार की लड़ाई से, समाज मे ऐसा विख-

राव आया है कि कई जगह लोग एक ही नगर मे दो अलग जातियो की तरह रह रहे है। उनका परस्पर मिलना-जुलना, उठना-बैठना, स्वाध्याय और गोष्ठी करना, और यहा तक कि कही-कही बोलना-चालना भी बन्द हो गया है। निश्चय और व्यवहार के विभाजन पर ही एक-दूसरे के यहा विवाह-शादिया करना भी लोग जोड रहे है और छोड रहे हैं। पुराने रिश्ते और सम्बन्ध तोडे जा रहे हैं या छूट रहे है। उनमे कोई रस नही रह गया है। हमने देखा है कि मा के मरने पर बेटी अपने भाइयो को सान्त्वना देने अपने पीहर नही पहुच पा रही है। उसका पति कहता है कि जाना नही, और जाना तो लौटना नही। ससुर और दामाद, साले और बहनोई, तथा ननद और भावज केवल इसलिए एक-दूसरे से वर्षों तक बोल नही पाते क्योकि उनमे से एक व्यवहार धर्म का हामी है और दूसरे ने निश्चय की जडी घोट कर पी ली है। देव अपना कल्पित, शास्त्र श्रीकहानजी द्वारा प्रतिपादित और गुरु की मान्यता समाप्त। तब जो होना चाहिये वही हो रहा है।

व्यवहार-धर्म की पद्धतिया और परम्पराय शास्त्र-समर्थित हैं और प्राचीन है। उन्हे द्रव्यानुयोग की कसौटी पर कसा ही नही जा सकता। चरणानुयोग से ही उनकी उपयोगिता समझी जा सकती है। उस आचरण मे निश्चयनय का बैरोमीटर लगा कर मापने से ही ये सारी विसगतिया समाज मे उत्पन्न हुई हैं। मैं सोनगढ पथ अथवा श्रीकहानजी की विचार-धारा के पोषक प्रचारक और प्रवक्ता महानुभावो से बडी गभीरतापूर्वक यह निवेदन करता हू कि वे माध्यस्थ भाव का सहारा लेकर कभी यह मूल्याकन करे कि उन्होने समाज को क्या दिया है, नियामत या मुसीबत ? उनका यह नवोदित अनोखा पथ समाज के लिए क्या सिद्ध हो रहा है, वरदान या अभिशाप ?

भगवान् महावीर का दिया हुआ अनेकान्त और स्याद्वाद और स्याद्वाद जैसा विषाहार मन्त्र हमारे पास है। उसे कण्ठ मे रखकर भी एकान्त को विष-वेदना सहते रहना बुद्धिमानी नही है। उसके आगे सारे हठाग्रह, सारे पूर्वाग्रह छणमात्र मे निरस्त हो जाते है। उसका सहारा लेने पर ही स्थितिकरण, उपगूहन, वात्सल्य और प्रभावना का अमृत चखा जा सकता है, और समाज मे बाटा जा सकता है। यदि हमने वह जगोत्तम समझ और सुबुद्धि पायी है तो आइये, अपना अहं भाव त्यागकर उसका स्वाद ले। मनुष्य पर्याय की सार्थकता इसी मे हैं।

—०—